http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

श्री सहजानन्द-डायरी

सन्-1956

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्वाधिकार सुरक्षित

श्री सहजानन्द-शास्त्रमाला

(७४)

श्री सहजानन्द-डायरी

सन् १९५६ ई०

रचयिता:—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य मनोहरजी वर्णी

सम्पादक—

पं० बिहारीलाल जैन शास्त्री

प्रकाशक:—

आनन्द प्रकाश जैन वकील

मन्त्री श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

२०१, पुलिस स्ट्रीट सदर मेरठ।

मूल्य २)

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सहजानन्द डायरी सन् १९५६

चित्संस्तवनम् — (१५-१२-५५ की भक्ति) स्थान जबलपुर (तोटकवृत्ते)। प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम्।

शिवसाधनमूलमजं शिवदं, निजकार्यसुकारण-रूपमिदम्। भवकानन-दाहविदाहहरं, प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ॥१॥ भवसृष्टिकरं शिव-सृष्टिहरं, शिवसृष्टिकरं भवसृष्टिहरम्। गतसर्वविधानविकल्पनयं, प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ॥२॥ शिवसृष्टयकरं भवसृष्टयहरं, भवसृष्टयकरं शिवसृष्टयहरम्। गतसर्वनिषेधविकल्पनयं, प्रभजामि शिवं० ॥३॥ परिणाम-गतं परिणामरहं, परिणामभवं परिणामयुतम्। उपपादविनाशविकल्परहं, प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ॥४॥ स्वचतुष्टयमूलमभिन्नगुणं, मतिदर्शन-शक्तिसुशर्ममयम्। अचलं शिवशंकरदृष्टिपथं, प्रभजामि शिवं० ॥५॥

—:०:—:०:—

ता० १-१-५६

आज शाहपुर (सागर) आया। आत्मस्वरूपका बोध न होनेसे बाह्यमें धर्माचरण भी किया जावे तो भी अनंतानुबंधी बिकारके होने से आचरणमें कभी इतनी विषमता हो जाती है कि बाह्य प्रवृत्तिमें भी जमीन आसमान जैसा अन्तर हो जाता है। इस ग्रामके बंधु बड़े ही धर्मात्मा सज्जन हैं। सारी जनता इस समाजको धर्मात्मा जानती है।

ता० २-१-५६

आज शामको शाहपुरसे बमाना पहुंचे। यह ग्राम जंगली रास्तासे १३ मील दूरीपर है। यहांकी समाजके बालक यद्यपि शहरी सभ्यतासे शून्य है तथापि नैसर्गिक विनयशील हैं। इन अज्ञानी बालकोंको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धर्मसंस्कृत पढ़नेका यदि साधन प्राप्त हो तो इनमें से विरले ऐसे बालक निकलेंगे जो समाजके सत्पथदर्शक होकर अपना कल्याण करेंगे।

आत्मकल्याणार्थी यदि बहुसंगमें रहे तो बहुविकल्पता होती है और यदि एकाकी रहे तो कुछ अन्य प्रकारके विकल्प या आपत्ति हो सकती है, अतः आज कल कल्याणेच्छुवोंको न बहुसंग बनाना चाहिये और न एकाकी रहना चाहिये।

ता० ३-१-५६

आज सायं ३॥। बजे रेशंदीगिर पहुंचे, सायं ४ बजेसे ५ बजे तक बंदना की। पुनः सामायिकके बाद छात्रगण, अध्यापकगण आदि की सभा हुई। विद्यार्थीके कर्तव्य इस समय ३ हैं—विनय, विद्याभ्यास व ब्रह्मचर्य। गुरु शिष्य का सम्बन्ध ही हितकारी सम्बन्ध है, अन्य सम्बन्धोंसे चित्त चैन में नहीं रहता इसका कारण विकल्प है, विकल्प दुःख स्वरूप होने से वस्तुतः शत्रु होकर भी बने रहते हैं इसका मूल संकल्प है। संकल्प अवास्तविक होनेसे आत्मामें टिकना नहीं चाहिये था, फिर भी टिकता रहता है इसकी जड अविद्या है अतः अविद्या को दूर किये बिना चैन नहीं हो सकती।

मैं ज्ञान स्वरूप हूं, चैतन्य मात्र हूं, ध्रुव हूं सबसे अपरिचित हूं, ज्ञान व आनन्दका पिण्ड हूं, अपनी सृष्टि करनेवाला हूं, असृष्टिरूप हूं, स्वतःसिद्ध हूं, अविनाशी हूँ, प्रतिभास मात्र वृत्तिसे गम्य हूँ, निजकी सब पर्यायोमें गत हूँ, पर्यायोंसे भिन्न स्वरूप हूँ, अमूर्त हूँ, कर्मसे अत्यन्ताभाव वाला हूँ, ज्ञायक स्वरूप हूं। बार बार ऐसे निजतत्त्वकी भावनासे बादमें निर्विकल्प समाधि परिणामसे अविद्याका उच्छेद हो जाता है।

ता० ४-१-५६

प्रातःकाल ८॥ बजे से ६॥ बजे तक बंदना की। पहिला मन्दिर जिसमें बड़ी मूर्ति है व मन्दिर बन रहा है, उसका ताला बन्द था व आगे के ताले खुल रहे थे, एक बाबाने जो धूनि रमाये वहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहता है ताला खुलवाया/वह रोज दर्शन करता है, कैसा दर्शन करता है, सो विशिष्ट ज्ञानी स्पष्ट जानें। मुझे यह भ्रम है कि वह इस लिये रोज दर्शन करता है कि कभी अवसर पाकर मूर्तिको खंडित करदिया जावे।

मनुष्यके मानकषायकी मुख्यता है अतः मान सन्मान कीर्ति प्रतिष्ठा-के चक्करमें विकल्पक रहता है सो विकल्प भार हटाना भी नहीं चाहता है। आत्मज्ञानीको ये सब विकार उपसर्ग मालूम होते हैं।

आज शामको दलपतपुर पहुंचा। यहां रात्रिको एक पाठशाला चलती थी वह बन्द है। धार्मिक अभ्युत्थानकेलिये सर्वत्र इसकी आवश्यकता है कि २ घन्टे धर्मशिक्षाका कार्यक्रम रहे। जैन धर्मसा श्रेष्ठ धर्म तृष्णावाली समाजके पल्ले पड़ गया है, कलिकालके अन्तमें धर्म व्यवहार भी नष्ट हो जायगा इसका यह सूत्रपातसा मालूम होता है। जो धर्म एक ही जातिमें सीमित हो जाता है वह प्रस्तुत नहीं हो सकता और उसके माननेवाले भी संकुचितचित्तताकी प्रकृतिकी अनिवार्यता होनेसे इस संस्कारके कारण इन्द्रियनिग्रहकी तपस्या करलेनेपर भी आत्मसंस्पर्शसे प्रायः वञ्चित हो सकते हैं।

ब्राह्मण क्षत्रिय आदि सभी जैनधर्मको पालते होते तो श्रावक और त्यागियोंमें संकुचितचित्तता का आवरण नहीं रहता। अस्तु! आजके जैन कहते तो जरूर हैं कि जैन धर्म सबका धर्म है परन्तु ऐसा रूप देनेकी उनकी कोई नीति नहीं है। इस बातका अनेकोंको खेद है। जो जैन नहीं थे ऐसे विद्वानों को येन केन प्रकारेण जैन साहित्य मिलता तो उन्हें यह बड़ा आश्चर्य होता कि इतनी अमूल्य निधिका विश्वके विद्वानोंको परिचय नहीं हो सका जबकि पच्चीस पचास रु० का साहित्य देना और कुछ जनरल व्यवहार होना ही पर्याप्त साधन था।

ता० ५–१–५६

आज प्रातः ६॥। बजे बंडा पहुंचे। रास्तेमें अजैन विद्यार्थी मिले। विद्यावार्ताके पश्चात् उनके चरित्र-विषयक प्रश्न हुए, तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मांसभक्षणकी हानियां सुनकर तीनोंने आजन्म मांसभक्षणका त्याग किया। संसारका विजय आत्मज्ञानके बिना कठिन ही नहीं किन्तु असंभव है। विषयोंकी इच्छा और कषायोंकी वृत्ति ही संसार है। ज्ञानस्वरूप निज आत्मतत्त्वकी झलक बिना हाय बेरोकटोक बेलगाम बाह्य अर्थोंमें परभावोंमें एकदम उपयोग जुड़ बैठा है, हितके सम्बन्धमें कहां कहां बुद्धि दौड़ाई जाती है। सब दुःखोंका मूल मिथ्यात्व है।

चित्त चैनमें नहीं रहता इसका कारण विकल्प है। विकल्प दुःख स्वरूप होनेसे वस्तुतः शत्रु होकर भी बने रहते हैं इसका मूल संकल्प है। यह अवास्तविक होनेसे आत्मामें टिकना नहीं चाहिये था, फिर भी टिकता रहता है इसकी जड़ अविद्या है। अतः अविद्याको दूर किये बिना चैन नहीं हो सकता।

मैं ज्ञानस्वरूप हूं, चैतन्यमात्र हूं, ध्रुव हूँ, सबसे अपरिचित हूँ, ज्ञान व आनन्दका पिण्ड हूँ, ज्ञानगम्य हूँ, अपनी सृष्टि करनेवाला हूँ, असृष्टिरूप हूँ, स्वतः सिद्ध हूँ, अविनाशी हूँ, प्रतिभासमात्रवृत्तिसे गम्य हूं, निजकी सब पर्यायमें गत हूं, पर्यायोंसे भिन्नस्वरूप हूँ, अमूर्त हूं, कर्म नोकर्मसे अत्यन्ताभाव वाला हूं, ज्ञायकस्वरूप हूँ। बार बार ऐसे निजतत्त्वकी भावनासे बादमें निर्विकल्प समाधि परिणामसे अविद्याका उच्छेद हो जाता है।

ता० ६-१-५६

आज १०॥। बजे बंडासे चले सोरईके पास जंगल में ११॥। बजे सामायिक प्रारम्भ की। बंडा व सोरईके बीचमें एक मिलिटरी मोटरसे एक महिलाका एक्सीडेन्ट हुआ सो कुछ लोग अपनेको निरपराध प्रमाणित करनेके यत्नमें थाने को गये। जगत विचित्र है होना भी चाहिये, क्योंकि यह साहजिक परिणमन नहीं। अद्वैतवादी कहते हैं कि ब्रह्म एक है नाना उपाधिके आश्रयसे वह ब्रह्म नानारूप दीखता है। इस विषय को ऊर्द्धवता सामान्य और ऊर्द्धवता विशेष' पर दृष्टि रख कर सोचिये। जैसे मैं यह आत्मा (ब्रह्म) एक हूं नाना कर्मरूप उपाधिका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निमित पाकर जब तक इसका परिणाम है नाना रूप है वह ! यहां यदि उस नानात्व पर दृष्टि न दें और स्रोतरूप अद्वैतपर दृष्टि दें तो उसके अविद्याका उच्छेद हो जाता है।

लोकमें आराम प्रतिष्ठा चाहना सबसे अधिक गजबका चक्कर है। वाह्य दृष्टि ही अन्तस्तत्त्व, दर्शनकी बाधिका है। खुदकी क्षणिक पर्यायकी बुद्धि ध्रुव स्वभावके दर्शन नहीं होने देती। तिलकी ओट पहाड़ ढक जाता है। क्षणिक परिस्थितिकी दृष्टिकी ओटमें चैतन्य महाप्रभु ढक जाता ।

आज शामके ४। बजे कर्रापुर पहुंचे। अंतरंगकी पहुँच बिना कल्पित वाह्यकी पहुँच आत्मलाभसाधक नहीं है। मैं ज्ञायक स्वरूप हूँ इसका बार बार प्रतिभास करना अंतरंगकी पहुँचका साधन है। हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम।

ता० ७-१-५६

सत्संगति अथवा अत्यंत एकान्त निवास सर्वोपरि वाह्य साधन है। अत्यंत एकान्त निवासकी सफलताका लक्ष्य अध्यात्मयोगपर निर्भर है। सत्संगतिकी सफलता सनम्र मुमुक्षु बन कर रहनेमें है।

एकस्थाननिवास व पर्यटन दोनों मुमुक्षुके अच्छे साधन हैं। एकस्थान-निवास तो तब अच्छा है जब संस्थाओंकी झंझट न रह कर ज्ञानोपासना का प्रचुर साधन बना रहे। पर्यटन तब अच्छा है जब बहुत दूर पर शीघ्र पहुँचनेका प्रोग्राम न रख कर आरामसे ५=५ मील करीबका आवास रक्खे और साथ ही ज्ञानियों का सत्संग रहे जिनका आरम्भ व परिग्रह स्वल्प हो।

किसी जातिविशेषमें अपना आवास संकुचित कर लेना प्रायः आत्म-शोधन व उदारतामें विघ्न कर लेना है। आत्मन ! कहीं कुछ सार नहीं है सर्व विकल्प छोड़ अपने निर्विकल्प स्वभावकी ओर आ और उसीमें लीन रह। तेरा साथी कोई नहीं, जगत तेरा कुछ नहीं। कोई भी तुझे जानता नहीं, जिसे जानते वह तू नहीं। तेरा न नाम है न मूरत है। तेरा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न यहां काम है न कीरत है। तू तू ही है अन्य नहीं। अन्य अन्य ही है तू नहीं। किसीके परिणमनोंमे न रंच सुधार है न रंच विगार है।

तू अपनी लेखनी चलाये जा अशुभोपयोगसे बचनेकेलिये। यहां भी तू लेखनी नहीं चला रहा है, मात्र हितका अनुराग कर रहा है, इस अनुराग से इच्छा हुई, इच्छासे आत्मपरिस्पंद हुआ, उसको निमित्त पाकर शरीर वायुका संचार हुआ इससे इच्छानुसार हाथ चला; क्योंकि मूल इच्छासे सबका प्रारंभ हुआ था, हाथ चलनेके निमित्तसे संयुक्ता लेखनीकी क्रिया हुई उससे संयुक्त पेन्सिल चली और जिस प्रकार चली इस प्रकार यह रंग फैला।

ता० ८-१-५६

तू सद्वचन बोले जा अशुभोपयोगसे बचनेकेलिये। यहां भी तू शब्द नहीं बना रहा, मात्र हितका अनुराग कररहा है, उस अनुरागसे इच्छा हुई, इच्छासे आत्मपरिस्पन्द हुआ, उसको निमित्त पाकर शरीरवायुका संचार हुआ उससे इच्छानुसार कंठादि स्थानोंकी क्रिया हुई, क्योंकि सबसे मूलमें इच्छा थी, उसको निमित्त पाकर भिन्न जातिकी भाषावर्गणाके स्कंधोंका शब्दरूप परिणमन हुआ। तू दया, भक्ति, ज्ञान-प्रचार आदिके शुभोपयोग किये जा अशुभोपयोगसे बचनेकेलिये यहां भी तू दूसरेकी भक्ति, दया नहीं कर रहा है और न दूसरोंको ज्ञान दे रहा है। निश्चयतः तू सनातन ध्रुव ज्ञायकस्वभाव है, परम पारिणामिक भावरूप है, कर्तृत्व भोक्तृत्वसे रहित है तथापि वस्तुगत व्यवहारतः निजयोग्यतायुक्त अपने आपमें शुभ रागके विपाकका उपयोग कर रहा है। अन्य वार्ता द्वैतावमत व्यवहारमात्र है।

आज शाम को ३॥। बजे सागर पहुंचे। समागत जनसमुदायमें परिचित बन्धुओंका व बाल्य शिक्षा गुरुद्वय (श्री पं० दयाचन्द जी स्याद्वा-दवाचस्पति बांदरी वाले व श्री पं० माणिक्य चन्द्र जी न्यायतीर्थ शाहपुर वाले) का मिलन पाकर हर्ष हुआ। विद्यार्थीकालके अनेक स्मरण हुए।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विद्यार्थी जीवन एक बहुत अच्छा जीवन है, यदि स्वहितकामना भी हो जावे तो अनुपम ही है।

ता० ९-१-५६ कर्तव्यसमयविभाग

४॥ बजे से ५॥ तक समयसार या प्रवचनसार का पाठ
५॥ बजे से ७ बजे तक सामायिक, प्रतिक्रमण
७ से ८। तक पर्यटन, शुद्धि वन्दना
८। से ९ तक प्रवचन
९ से ९।। तक पाठन
९।। से १० तक शुद्धि स्नान
१० से ११॥ तक संभावित भुक्तिपान, आवास, विश्राम
११॥ से १२॥ तक सामायिक
१२॥ से २ तक लेखन
२ से ३॥ तक स्वाध्याय अष्ट सहस्त्री, धवला
३॥ से ४। तक पाठन
४। से ५ तक शंका समाधान
५ से ५।। तक सेवा
५।। से ६।। तक सामायिक
६।। से ७। तक विश्राम, चिन्तन
७। से ८ तक स्वाध्याय
८ से ८।।। तक प्रवचन या चर्चा
८।।। से ९। तक धार्मिक वार्तालाप
९। से ४॥ तक विश्राम, भावना, शयन

ता० १०-१-५६

आज कोमलचन्द जौहरीके आहार हुआ, यह सरल स्वभावी बालक है। आहार पश्चात् मोराजी विद्यालयके छात्रोंको फलाहार करानेकी भावना प्रकट की। विद्यालयमें छात्र इस समय २०० से

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुछ ऊपर हैं। सागर धर्मका अच्छा क्षेत्र है। सागरकी महिलावोंका भी धार्मिक ज्ञान विशेष है। इस प्रांतमें जो बचपनमें धार्मिक विद्या पढ़ लेते वे तो ठीक हैं। परन्तु अन्य युवक धर्मश्रद्धासे तो दूर है किन्तु धार्मिक ज्ञानवृद्धिकी ओर प्रयत्न भी नहीं करते। इस प्रांतके विद्वान पंडित अधिक संख्यामें है। मेरे ख्यालसे वर्तमानमें भारतमें जितने पंडित हैं उनमें आधे या इससे अधिक बुन्देलखंड प्रांतके पंडित हैं।

प्रश्न—अनादि मिथ्यादृष्टि जीवको सबसे पहिले सम्यकत्व किस गतिमें होता है? उत्तर-किसी भी गतिमें हो सकता है।

आत्मा आत्मा ही है, अन्य अन्य ही है। आत्माका आत्मा ही है, खुदका खुद ही है। ज्ञायकका ज्ञायक ही है। दर्शकका दर्शक ही है। ज्ञायक ज्ञायकका ही है। दर्शक दर्शकका ही है। अपोहक अपोहकका ही है। अपोहकका अपोहक ही है। त्यागीका वही त्यागी है। त्यागी उसी त्यागीका ही हैं। त्याग भावका ही त्यागी है। त्यागीका ही त्यागभाव है। त्यागी और त्याग उस कालमें अभिन्न हैं। त्यागी और त्याज्य अनादिसे ही इसी रूपमें अवस्थित है। जिसका त्याग है उसका त्रिकालमें भी ग्रहण नहीं। जिसका ग्रहण है उसका त्रिकालमें त्याग नहीं।

ता० ११–१–५६

मनुष्यभव पानेका लाभ यह है कि योग्य ज्ञान प्राप्त करके आध्यात्मविद्याद्वारा निज शुद्ध तत्त्वका अनुभव कर लेना। सभी आत्मा स्वयं कारण परमात्मा है। इसही निजकारण परमात्माको उपादान करके जो सहज परिणमन होता है वह धर्मका विकास है और धर्मका फल है। यह अनुपम शांतिकी अवस्था होती है।

आत्मन्! तेरा स्वभाव चैतन्य है, ज्ञान दर्शन है। दर्शनका परिचय सम्यग्दर्शन है। ज्ञानकी निश्चलवृत्ति सम्यक्चारित्र है। विपरीत अभिप्राय व कषाय तेरे स्वभावसे उठकर नहीं होते मात्र विकार है। दर्शनके विषय की प्रतीति होना या न होना आत्मामें होता है सो उस शक्तिका नाम श्रद्धा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। ज्ञानकी निश्चलवृत्ति होना या न होना आत्मामें होता है सो उस शक्तिका नाम चरित्र है। ज्ञानकी अनिश्चलतामें अनेक रूप प्रकट होते हैं उनका नाम कषाय है। दर्शनके लक्ष्यके अपरिचयमें अनेक आशय प्रकट होते हैं उनका नाम मिथ्यात्व है। दर्शनके लक्ष्यके अपरिचयमें मोक्षमार्गका कुछ भी पुरुषार्थ नहीं बन सकता। दर्शनके लक्ष्यका परिचय होनेपर ज्ञानकी अनिश्चलता भी रही आवे तथापि ज्ञान जाननपनेका काम करता है। ज्ञानकी अनिश्चलतारूप अनेक विभाव होते हैं उनका तू कर्त्ता नहीं, क्योंकि तू चैतन्य है। हां उन विभावोंको तू उपयोगभूमिमें आश्रय देगा तो तू कर्त्ता होवेगा। साधारणतया तू अपनेमें होने वाली सभी परिणतियोंका कर्त्ता है। लाक्षणिकतया मिथ्यात्वमें तू विभावका कर्त्ता है। मिथ्यात्वके ध्वंसके पश्चात् अकर्ता है। अथवा आत्मा कषायका कर्ता नहीं, कषायपर उपयोग लगानेका कर्ता है। जो कषाय पर उपयोग लगाते हैं वे कर्ता है जो कषाय-पर उपयोग नहीं लगाते वे अकर्ता है।

ता० १२–१–५६

उपयोग ज्ञानकी परिणति है अतः उपयोगका कर्ता आत्मा होता है। जो बात बुद्धिपूर्वक होती है उसका कर्ता आत्मा है, जो बुद्धि-पूर्वक नहीं होती उसका कर्ता आत्मा नहीं। इस अन्यायसे मिथ्यादृष्टि कर्ता है और वह भी विपरीत अभिप्राय करनेका और कषायपर उपयोग देनेका। योगका भी कर्ता आत्माको उपचारसे कहा है क्योंकि योग चैतन्य की वृत्ति नहीं है। जब जीव योगपर उपयोग देता है तब वह योगका कर्ता है। अबुद्धिपूर्वक योग होते हैं उनका कर्ता आत्मा नहीं। साधारणदृष्टिसे तो जो कुछ आत्मा में होता है सभी का कर्ता आत्मा है जैसी कि व्यवस्था जड़ पदार्थमें भी है कि घड़ेका कर्ता मिट्टी है कड़ेका कर्ता सुवर्ण है आदि।

१–जो लड़कोंकी तारीफके रूपसे पिताकी प्रशंसा करता है उसका अर्थ है कि लड़के ही अच्छे हैं बाप तो पूरा बुद्धू है। २–जो धनकी बात कहकर कल्पित धनीकी प्रशंसा करता है उसका अर्थ है कि धनकी ही पूंछ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है यह तो बेकाम है। ३–जो प्रासादों (मकानों) की कल्पनावोंके वर्णनसे मालिककी प्रशंसा करता है उसका अर्थ है कि जड़ पदार्थोंमें भी कला है किन्तु यह तो कलाशून्य बुद्धिशून्य ही है। ४–जो पुरखोंकी प्रशंसा द्वारा ही किसीकी प्रशंसा करता है उसका अर्थ है यह इस कुलमें कुपूत हुआ है।

प्रश्न-स्थितिकाण्डकघात व अनुभागकाण्डकघात मिथ्यादृष्टिके होते हैं कि नहीं ? उत्तर-अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरणवर्ती सातिशयमिथ्यादृष्टिके अतिरिक्त किसी भी मिथ्यादृष्टिके स्थितिकाण्डकघात व अनुभागकाण्डकघात नहीं होते।

ता० १३–१–५६

लोकमें गालीके शब्दोंका प्रादुर्भाव हुआ ही नहीं। किन्तु प्रशंसाकारक शब्दोंको जब अति अयोग्य पुरुषोंसे कहा गया तो अयोग्य पुरुषोंने व अन्य लोकोंने उसे गाली समझी। जिसे लोक गाली समझते हैं उन शब्दोंके अर्थपर ध्यान दें तो वह प्रशंसाका शब्द ही ज्ञात होगा।

गाली–कीर्ति या स्तुति गाली

नंगा–नग्नः—निष्परिग्रह निर्ग्रन्थसाधु

लुच्चा-लुञ्चः–केशोंका लौंच करनेवाला (साधु)

पुंगा–पुंगवः—श्रेष्ठ, अतिश्रेष्ठ

लफंगा–लफ गये–नम्र हुए हैं अंग जिसके याने विनयशील

पट्ठा–पट्टः—प्रधान पुरुष

घंटाल–घण्टालुः घण्टयति प्रेरयति हिते इति घण्टालुः; जो हितकार्यमें प्रेरणा करे (गुरु–घंटाल)

मंतर–महतर–बड़ों (महान्) में भी बड़ा

निर्लज्ज–लज्जा कषाय रहित–योगी

भगत–भक्त–प्रभुका भक्त

निपोरा–पोर (खण्ड) रहित याने अखंड

निपोचिया–स्वयंमें जिसकी अच्छी पहुंच हो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धीठ–धीष्ठ–बुद्धिमें ठहरा हुआ (बुद्धिमान्)।

उचक्का–उच्चकः–ऊंचा महा पुरुष।

ऊधमी–उद्धर्मी–उत्कृष्ट धर्मवाला।

साला–शालः–अपनी रक्षा के लिए स्वयं कोट स्वरूप जहांकि आत्मा सुरक्षित है।

ससुरा–सस्वरः—उत्तम स्वर वाला।

पाजी–पापको जीतने वाला (पापको नष्ट करने वाला)।

गँवार–ग्रामारि–इन्द्रियग्रामका वैरी (इन्द्रियविजयी)।

वरेदी–वरेन्द्र–श्रेष्ट इन्द्र (स्वामी)।

गधा–गदहः गदं हंतीति गदहः जो गद-रोग-संसार रूपी रोगको हने याने नष्ट करे।

सोधिया–शुद्धिपूर्वक रहने वाला (पवित्र)।

कंगीरा–कं गिरति, क-आत्माको जो बतावे।

कंगला–क अंग-ल, क याने आत्माके अङ्ग याने उपायको जो करे।

निटल्ला–निष्ठालः–निष्ठा (श्रद्धा) को लानेवाला।

पागल–पा याने पापको गलाने वाला (नष्ट करने वाला)।

धन्नासेठ–धन्यःश्रेष्ठः, जो धन्य है व श्रेष्ठ है।

वेकार–जिसको कोई कार्य करनेको नहीं पड़ा (कृतकृत्य)।

भुक्कड़ा–भिक्षक,–भिक्षावृत्तिसे आहार लेनेवाला साधू।

धमगा–धर्मांगः–धर्मही जिसका शरीर है।

नालायक–संसार जालके जो अयोग्य हो (सम्यग्दृष्टि)।

उल्लू–उत्कर्षेण कर्म लुनाति, जो कर्मकी निर्जरा करे।

चुगला–जिसके चार गले या मुख हों (प्रभु)।

जानवर–जान याने ज्ञानमें वर याने श्रेष्ठ (विद्वान)।

ढोकीआंख–धीकैकाक्ष–बुद्धिही जिसकी एक आंख है।

ऐसीकी तैसी–आत्माकी शुद्ध प्रकृति ऐसी है सो उसकी वैसी ही परिणति हो जावे ऐसी भावना बनना।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चालो–परिणमनशील ।

शूकर–शूक (दया) से राजमान अर्थात् शोभायमान ।

दाँतो–दांतो-जिसका आत्मा दांत है याने इन्द्रिय दमन करने वाला ।

मानधाता–सन्मानकी पालना करने वाला

देहाती–देहान्ती-देहका अंत (अभाव) करने वाला, सिद्ध ।

खशम–ख-इन्द्रियका शमन करनेवाला ।

कायर–कस्य आयेन राजते इति कायरः । क आत्माकी उपलब्धिसे । राजमान याने शोभायमान ।

लुक्का—लोककः–लोक (प्रजा) के क (ब्रह्मा) अर्थात् प्रजा का सुधारने वाला आदर्श नेता ।

षंडा–षंड–इन्द्र ।

मुसंडा–मषंड-म (शिव-मोक्ष) के षंड याने इन्द्र (स्वामी) ।

चंगा–चंगः–सुन्दर, चतुर ।

पिंदोला–प्रेमदोला-प्रेम की डोली याने प्रेमी ।

चटू–चटु–प्रिय बोलने वाला ।

पटू–पटु–चतुर ।

बुझक्कड़–बुद्ध्याकर-बुद्धिकी खान (बुद्धिमान पुरुष) ।

दडी–इन्द्रियोंका दमन-दंड करने वाला ।

कुलच्छी–कुलं अच्छं यस्य सः कुलच्छी, अच्छे कुलवाला ।

निकम्मा–निष्कर्मा-कर्म रहित-सिद्ध

बदमास–स इति मा वद-अन्यकी चर्चा मत करो ।

जनखा–जनि-जन्मसे ख-शून्य-जन्मरहित

पाखंडी–पापका खंडन करने वाला (मुनि) ।

भजन

मेरा शरण समयसार दूसरा न कोई ।

जा प्रसाद कार्य समयसार सिद्धि होई ॥टेक॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अविनाशी ब्रह्मरूप अविचल अज चित्स्वरूप ।
शुद्ध बुद्ध स्वतःसिद्ध जो प्रभु मैं सोई ॥१॥
प्रगटरूपका अधार निश्चयतः निराधार ।
ये ही गुरू ये ही शिष्य भक्त प्रभु दोई ॥२॥
सहजानन्द सहजज्ञान, निजपरिणतिका निधान ।
जिन चीन्हा उन परिणति निर्विकल्प जोई ॥३॥

जबतक शरीरमें अहंबुद्धि, ममबुद्धि रहती तबतक प्राणी कल्याणका पात्र नहीं होता। जबतक शरीरकी पवित्रता, स्नान, निर्मलता बनानेका यत्न होता तबतक समाधिका पात्र नहीं होगा। जब तक शरीरका भान रहता तब तक समाधिस्थ नहीं हो सकता।

शरीर शरीर (चालाक, उद्दंड) है शरीफ नहीं। गेह देहका नेह प्रलयका मेह है। जो यशके रसमें विवश है वह फसता है जग हँसता है। जो दुःखको सन्मुख नहीं कर सकता वह सुखको भी सन्मुख नहीं कर सकता। टीमटाम चामधाम दाम नामका ही जिन्हें काम है उनका राम वेठाम है।

ता० १५-१-५६

जीवनके क्षण दमादम गुजर रहे हैं, वह समय नजदीक है जब कि अभीके प्रेमी लोक इस अजीब कायकी राख कर देंगे। अजीव काय का कुछ भी बने इसपर विचार नहीं है किन्तु मनुष्यके सुन्दर क्षण आगे न मिल सके तो अपने आपपर बड़ा अत्याचार है।

दुःख आए तो आने दो, इनसे डरकर यदि संक्लेश किया तो ये कई गुण होकर और आवेंगे। सुख जाए तो जाने दो, इनमें रमकर यदि गृद्धि की तो ये लेश भी न मिलेंगे।

अपमान होवे तो समतासे सहलो तो यथाशीघ्र तेरा उत्कृष्ट सन्मान (उत्कृष्ट मान प्रमाण सम्यग्ज्ञान—केवल ज्ञान) होगा। सन्मान होवे तो उससे दूर रह लो अन्यथा दोनों भवमें अपमान ही होगा। टाट ठाठकी डाट मोक्ष वाटकी काट है आत्म-धर्म का मर्म जाननेवाला ही भर्म दूर कर परम शर्मको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्राप्त करता है।

ता० १७-१-५६

आज मथुरादास जी के यहां आहार हुआ—उनकी यह बलवती प्रेरणा है कि मैं सागर रहूं, एतदर्थ वे अन्य मुमुक्षुओंके लाभके अर्थ अपने बगीचे और कुछ जायदादको प्रदान भी करना चाहते हैं, अस्तु किन्तु मेरा रहना मेरी शांति के आधार पर है। सभीकी भी यही बात है। जीवका हित सम्यग्ज्ञान है, वह ज्ञानस्वभावके लक्ष्यसे प्रगट होता है। ज्ञानस्वभावके अतिरिक्त अन्यके लक्ष्य से सम्यग्ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। वे अन्य चाहे धनादि हो, शरीर हो, शास्त्र हो, वाणी हो, देव हो, गुरु हो, देवशास्त्र गुरुके लक्ष्यसे प्रकट होने वाला ज्ञान हो, निज जीवका क्षेत्र हो, निज जीवकी पर्याय हो या समस्त गुणोंका पिण्ड-निज हो आदि। हां अखण्ड निजका अनुभव सम्यग्ज्ञान है।

उक्त सब ज्ञानस्वभाव नहीं है, अतः उन सबोंके लक्ष्यसे सम्यग्ज्ञान नहीं होता किन्तु अशुभ राग या शुभ राग होता। समस्त गुणोंके पिण्डरूप निजगुणीमें ज्ञान दर्शनरूप चेतन गुण है व प्रमेयत्व आदि अचेतन गुण है सो चित्स्वरूपकी मुख्यतासे जब निज गुणीका लक्ष्य होता है तो उसके लक्ष्यसे भी सम्यग्ज्ञान होता है। वह यह दोनों ज्ञानमात्र हो जाते हैं। गुण और गुणी दोनों ज्ञानानुभवके कालमें अभेद हैं।

ता० १८-१-५६

चेतन अचेतनका जब यह अर्थ किया जावे कि जो चेतने प्रतिभासने रूप काम करे सो चेतन और जो प्रतिभासने का काम न करे सो अचेतन। इस व्याख्यासे यह नियम ठीक ही है कि चेतन याने ज्ञानस्वभावके लक्ष्यसे सम्यग्ज्ञान होता है। उसमें भी जो स्वयंको चेते उस ज्ञानस्वभावके लक्ष्यसे सम्यग्ज्ञान होता है वहां भी क्रियाशून्य अपरिणामी चैतन्यके लक्ष्यसे सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है। अज्ञानभावके लक्ष्यसे सम्यग्ज्ञान नहीं होता है।

असंबंधकी दृष्टिसे निमित्त २ प्रकार के हैं—१ अत्यंताभाव वाला, १ स्वरूपाभाव वाला। अत्यंताभाव वाले निमित्त पर द्रव्य है। स्वरूपाभाव वाले निमित्त एक शक्तिके परिणमनमें अन्य शक्तियोंके परिणमन भी हैं।

Report any errors at vikashd@gmail.com

ये उपादान व निमित्त एक ही द्रव्यमें है। प्रथम निमित्तमें द्रव्यादिचतुष्टयकी पृथक्ता है तो द्वितीय प्रकारके निमित्तमें मात्र काल भावका असंबंध है।

उदापान निमित्तको पाकर अपनी शक्तिसे परिमणता है। निमित्तको पाकर परिणमता है तो भी यह विशेषता निमित्तकी नहीं है किन्तु परिणमने वाले पदार्थकी है। इसही विशेषतासे परिणामनेवाले भावको विभाव कहते हैं। इसके लक्ष्यसे सांसारिक बुद्धि है। निज ज्ञानस्वभावकी आराधनासे सम्यग्ज्ञान एवं हित है। इसमें परकी अपेक्षा नहीं है।

ता० १६–१–५६

जैसे चौकीको निमित्त पाकर पुरुष बैठ गया सो यह विशेषता पुरुषकी है चौकीकी नहीं। चौकीमें निमित्तत्त्वके अविभाग प्रतिच्छेद नहीं, इसलिये निमित्तत्त्व चौकीका गुण नहीं। पुरुषने कैसे पदार्थको निमित्त बना कर याने आश्रय कर बैठनेकी अवस्था बनाई इस बातको बतानेके लिये निमित्त शब्दका यहां प्रयोग है। आज नैनागिरके रथ-प्रबन्धक आये, माघ सुदी १२ से फागुन बदी १ तक पञ्चकल्याणक होंगे। आनेकी स्वीकृति दे दी, यदि यह कायदा हो जावे कि जितनी रकम धार्मिक उत्सवमें लगाई जावे उतनी रकम शिक्षा-संस्थावोंको भी दी जावे तो बड़ा हित हो। ज्ञानकी प्रभावनासे धर्मप्रभावना है।

आत्माके रागादिविभाव होनेमें कर्म निमित्त है शेष पदार्थ आश्रयमात्र या नोकर्म है। नोकर्म २ प्रकार के हैं:— १. स्पृष्ट नोकर्म (देह) २, अस्पृष्ट नोकर्म (धनादि)। कर्ममें निमित्त अथवा अनुभागके अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं इस हेतु कर्ममें निमित्तत्वकी विशेषता है सो रागादिमें कर्मका उदय निमित्त कहा गया है अन्य स्कंधोंको नहीं। इन अविभागप्रतिच्छेदोंका निर्माण जीवके कषायभावोंको निमित्त पाकर हुवा है। निज स्वभावके अवलंबनसे हुई जीवकी निर्मलताको निमित्त पाकर थे अनुभाग नष्ट भी हो जाते हैं, इनका उदय ही नहीं हो पाता।

जीवके विभावकी उत्पत्तिमें कर्मोदय समकालभावी निमित्त है। परके लक्ष्यसे होनेवाली पर्याय हितरूप नहीं है, सो निमित्त नैमित्तक विषयिनी वार्ता विज्ञानशालाके संचालनके लिये छोड़ देना चाहिये।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ता० २०—१—५६

हित करने वाला भाव जीवमें ५३ भावोंमें से कौन है। औदयिक, औपशमिक, व भव्यत्व ये हित करनेवाले नहीं है क्योंकि ये विनाशीक हैं। अभव्यत्व हित करने वाला नहीं वह तो अहितका नाम ही है। क्षायिक भाव भी क्षणिक भाव है क्योंकि वह भी पर्याय है। जीवत्व भावमें अशुद्ध जीवत्व हितकारी नहीं है क्योंकि वह अशुद्ध और अध्रुव है। अब बचा शुद्ध जीवत्व, सो वह परिणमन नहीं है, उस स्वरूपसे ध्रुव अपरिणामी है, वह तो अनादिकालसे अनन्तकाल तक सदा ही है, वह क्या हित करेगा। तब हित करनेवाला भाव कौनसा रहा, यह एक आवश्यक समस्या है। विचारनेपर यह ठीक उतरता है कि ५३ भावोंमेंसे कोईभी असंधिरूप भाव हित नहीं करता किन्तु शुद्ध जीवत्वकी दृष्टि, अवलंबन रूप औपशमिक क्षायोपशमिक क्षायिक भाव हितकारी है। इस तरह ध्रुव—अध्रुवकी संधि मोक्षमार्ग है।

ता० २१—१—५६

श्री सिद्ध भगवान टङ्कोत्कीर्णसम ज्ञानस्वभावी है और यह सामान्य ज्ञानस्वभाव भी टङ्कोत्कीर्णवत् है ॥ प्रभुका ज्ञान अचल है वैसा ही ज्ञान अनंतकाल तक रहता है जैसा कि वह केवलज्ञानके प्रथम क्षणमें हुआ। यह ज्ञानस्वभाव भी अचल है, वही ज्ञायक स्वभाव अनंतकाल तक रहता है जो अनादिकाल से है।

सिद्ध परमात्मा प्रभुमें स्वभाव और परिणमन अनुरूप हो गया। सिद्ध होनेमे पहिले भी आत्मामें वैसाही स्वभाव था जैसाकि अब परिणमन हो गया, अब भी सिद्धावस्थामें स्वभाव स्थायी है और वह परिणामन क्षणिक है। हम आत्मावोंमें भी स्वभाव वैसाही है जिसके अनुभव सिद्ध आत्मावोंमें परिणमन हुआ है।

सिद्ध आत्मावोंने स्वभावका अवलंबन करके यह अचल गति पाई है। हम आत्मावोंकी भी स्वभावका अवलम्बन होकर अचल गति होगी।

जैसे पाषाणमें पाषाणकी सब प्रतिमायें जिसका विकास कर लो वही प्रकट हो जाती। वैसे हम आत्मावोंमें भी हमारा सब कुछ है जिसका विकास

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कर लो वही प्रकट होता व होगा।

पाषाणकी प्रतिमा बनानी नहीं पड़ती, मात्र उसके आवरक पाषाण खंड हटाने होते हैं। आत्माका स्वभावभी बनाना नहीं पड़ता मात्र उसके आवरक विभवमल हटाने होते हैं।

ता०—२२—१—५६

निर्विकल्प स्वानुभव ही हित है निर्विकल्प स्वानुभवका वैरी उपयोग न बन जाय एतदर्थ विकल्पात्मक अनुभवके आश्रयभूत बाह्य पदार्थों से दूर होने का उपदेश है। काम, क्रोध, मान, माया लोभके विकार चंडाल हैं, विकारोंके कालमें आत्मा चंडाल बन जाता है और उसे अहित ही सूझता है वह अहित ही प्रियतम लगता है। फूसमहती आपत्ति से बचने के लिए स्वभाव दृष्टिका अभ्यास करना चाहिए। स्वभाव दृष्टिका अभ्यास स्वभावकी पहिचान कर-लेने पर किया जा सकता है स्वभावकी पहिचान स्वभाव व अस्वभाव (विभाव) के भेदविज्ञानसे होगी। भेदविज्ञानके लिए स्वभाव व विभावके स्वलक्षणोंकी जानकारी करना चाहिए।

स्वभाव	विभाव
सम	विषम
अनादि	सादि
अनंत	सांत
अनैमित्तिक	नैमित्तिक
शुचि	अशुचि
आनंदस्वरूप	आकुलतारूप
आनंदफल	क्लेशफल
ध्रुव	अध्रुव
अचल	चल
एक	अनेक
अन्वय	व्यतिरेक
अभेद	भेद

http://sahjanandvarnishastra.org/

अखंड	खंड
परिणामिक	औपाधिक

ता० २३—१—५६

प्रश्न-धातकी खंडके सूर्यचन्द्र धातकी खंडके मेरुकी प्रदक्षिणा देते हैं या जम्बूद्वीपके मेरुकी प्रदक्षिणा देते हैं ? उत्तर-धातकी खंडके सूर्यचन्द्र आदि धात की खंडमें फिरकर जम्बूद्वीपके मेरुकी प्रदक्षिणा देते हैं।

लोकक्षेत्रका परिज्ञान परिचित क्षेत्रके मोहके त्यागके अर्थ है। त्रिकालका परिज्ञान नामकर जानेके मोहके त्यागके अर्थ है। जिसके परिचित क्षेत्रकी मोह नहीं छूटता है और त्रिलोककी चर्चा करता है उसका वह परिज्ञान भारमात्र है। जिसके नामवरी करजानेका मोह नहीं छूटता है उसका त्रिकाल का दूसरों के लिए मजदूरी मात्र है।

सूक्ष्म गुणका उत्पाद व्यय ध्रौव्य इस प्रकार है-विवक्षित गुणसूक्ष्मकी मुख्यता उत्पाद, अविवक्षित गुणसूक्ष्मकी गौणता व्यय व सूक्ष्मता ध्रुव।

सूक्ष्मगुण विभुत्व शक्तिके निमित्तसे सब गुणों में हैं। जैसे—ज्ञानसूक्ष्म, दर्शनसूक्ष्म, आनंदसूक्ष्म, शक्तिसूक्ष्म आदि।

ता० २४—१—५६

एकही द्रव्यकी सिद्धि निश्चय से व उपचारसे है। उपचार ३ प्रकारका है १—स्वजाति उपचार, २—विजाति उपचार, ३—स्वजाति विजाति उपचार गुणोंमें ये तीनों उपचार यों घटित हैं जैसे—चेतन जीवके सब गुण चेतनाकी अपेक्षा स्वजातिक हैं। लक्षण परस्पर भिन्न होनेसे लक्षणकी अपेक्षा विजातिक हैं और दोनों अपेक्षावोंसे स्वजाति विजाती है यह एक द्रव्यके अंतरंग सिद्धी उपचारसे की है। निश्चयसे परम पारिणामिक भाव-रूप है।

आत्माका आनंद स्वभावदृष्टि में है निजस्वभाव दृष्टि उच्च उपयोग है, पर भावदृष्टि नीच उपयोग है। प्रत्येक प्राणीका स्वउच्च है अन्य पर नीच है। इसकी व्यवस्थाहित दृष्टिसे है।

अनन्तकालसे परम्परासे चला आया हुआ संसार और यह कर्मबन्धन जोकि कोड़कोड़ी सागरोंकी स्थिती भी रखता है उसका विनाश मात्र निजको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निज परको पर जान यह अन्तरंगसे हो जावे तो इस स्वभाव परिचयसे होने लगता है।

अन्य चतुष्टवाले ज्ञेय तो भिन्न है उनकी तो बात छोड़ो, निज उपयोगमें जो ज्ञेयाकर है सो वह मेरा निज सहजरूप नहीं है किन्तु सनातन सहज ज्ञानका ज्ञेयोंके अनुरूप ज्ञेय ग्रहणरूप परिणमन है मैं तो सहज ज्ञान-स्वरूप ध्रुव हूँ। अतः उस निज ज्ञेयाकाररूप भी अपना अनुभव नहीं करना है उसकी दृष्टि छोड़कर यह उपासना करनी है मैं सहज स्वच्छ एक ज्ञान स्वभावरूप हूँ। इस एकत्वकी दृष्टिकी ही समस्त महिमा मोक्षमार्ग है।

ता० २५–१–५५

आज एक श्रावकके धर आहार प्रारंभ हुआ, २ ग्रासके बाद ही बाल निकलनेसे अंतराय होगया, दम्पति बहुतरोए। मैंने बहुत समझाया किउन्हें धैर्य नहीं हुआ। इससे स्पष्ट है कि कोई किसी के संतोषसे संतुष्ट नहीं होता, कोई किसीको खिलाता नहीं किन्तु सबअपने अपने भावोंकी चेष्टा करते हैं सब स्वस्वमेंही परिणमते अतः किसीका किसी से सम्बन्ध नहीं।

एक वस्तुमें अनन्त गुण हैं वे सब वस्तुमें अभिन्न हैं सो एक गुण जब विशेषण बनता है तब सब गुण विशेष्य बन जाते हैं, एक गुण विशेष्य बनता है तो सब गुण विशेषण बन जाते हैं। जैसे ज्ञानके विशेषण से सूक्ष्मज्ञान, अमूर्तज्ञान, दर्शनज्ञान, शक्तिज्ञान आदि। सूक्ष्मके विशेषणसे ज्ञानसूक्ष्म, दर्शन-सूक्ष्म वीर्यसूक्ष्म आदि। तो एक गुणके वे सब अनन्त पर्यात हो गए हैं इस तरह प्रत्येक गुणकी अनन्त पर्यायें युगपत वस्तुमें होगई। इन सब अनन्त पर्यायों का समूह द्रव्य है वस्तु है।

सत्–चीज–पदार्थ वह होता है जो बनता है, बिगड़ता है, बना रहता है। जो बनता है उस में बिगड़ना बना रहना होता ही है। जो बिगड़ता है उसमें बनना व बना रहना होता ही है। जो बना रहता है उसमें बनना विगड़ना होता ही है। जो बननेका लक्षण है वह बिगड़ने बने रहने का नहीं। जो बिगड़ने का लक्षण है वह बनने बने रहने का नहीं। जो बने रहनेका लक्षण है वह बनने बिगड़ने का नहीं। फिर जो बनना है वही बिगड़ना बना रहना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। जो बिगड़ना है वही बनना बना रहना है जो बना रहना है वही बनना बिगड़ना है। यदि बने नहीं तो बिगड़ना बना रहना भी नहीं हो सकता। यदि बिगड़े नहीं तो बनना बना रहना भी नहीं हो सकता। यदि बना न रहे तो बनना बिगड़ना भी नहीं हो सकता। वस्तुमें बनना बिगड़ना व बना रहना तीनों एक काल एक साथ होते हैं।

ता० २३–१–५६

आज गुलाबचन्दजी के आहार हुआ, आहारोपरांत मोराजी जैन संस्कृत विद्यालयके व बोर्डिंगके सब छात्रोंको लड्डू उपहृत करने का भाव भाई ने बताया।

आज भारतका गणतंत्र दिवस है। गणतंत्र और स्वतंत्र दोनों का लोग एक अर्थ करते हैं। यद्यपि इनका अर्थ जुदा है तथापि जब गण ही स्व हो जावे तो एक अर्थ हो जाता है। आत्मा भेद दृष्टिसे गणतंत्र है और अभेद दृष्टिसे स्वतंत्र है।

समाधि १३ प्रकार से है, उनके क्रमसे विशेष क्रम पूर्वक ये नाम ठीक प्रतीत हैं १–विवेकख्याति समाधि, २–संप्रज्ञात समाधि, ३–विचारानुगत समाधि, ४–लयसमाधि, ५–निर्विचारानुगत समाधि, ६–वितर्कानुगत समाधि, ७–अस्मिदानुगत सनाधि, ८–आनंदानुगत समाधि, ९–निर्वितर्कानुगत समाधि, १०–निरानन्दानुगत समाधि, ११–निरास्मिदानुगत समाधि, १२–समाधि, १३–असंप्रज्ञातसमाधि। तत्पश्चात् परमात्मावस्था की व्यक्ति।

आज ब्र० सत्यदेव जी मिले, ये गंभीर और कर्मठ पुरुष हैं। काश्मीरमें इस समय अव्यवस्था होने का अंदेशा है सो आप फरवरी व मार्चमें उस प्रांत में भ्रमण कर अपने उपदेशों के मानवधर्मका प्रसार करेंगे ऐसा ब्र० जी ने प्रोग्राम बताया है।

ता० १७–१–५६

आज सेठ भगवानदास जी शोभाराम जी के यहां आहार हुआ, परन्तु ये भाई घर नहीं थे, इन्कमटैक्सके विषय में भोपाल आफिसर के पास गये हुवे हैं चैन किसी को नहीं, शांतिका अधिकारी निर्ग्रन्थ ही है। ये दोनों भाई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सरल व उपकारी हैं।

अद्वैतबुद्धि सिद्ध है व द्वैतबुद्धि असिद्ध है। अद्वैतबुद्धि २ प्रकार की है। १–प्रत्येक अद्वैतबुद्धि अद्वैतबुद्धि। द्वैतबुद्धि भी २ प्रकार हैं १–संबंधबुद्धि, २–निजभेदबुद्धि।

१. प्रत्येक अद्वैतबुद्धि–अनंतानंत जीव, अनंतानंत पुद्गल, एकधर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाश द्रव्य, असंख्यालकाल द्रव्य। ये समस्त द्रव्य अपने अपने द्रव्यगुण पर्यायरूप हैं। प्रत्येककी परिणति उस ही स्वयंसे होती है। प्रत्येकके गुण उस ही अखंड द्रव्यके सामर्थ्य हैं। इस प्रकार स्वयंतन्त्र बुद्धि होना प्रत्येक अद्वैतबुद्धि है।

२. स्व अद्वैतबुद्धि–निज आत्मामें गुण पर्याय आदि भेद कल्पनासे रहित निर्विकल्प ज्ञायक स्वभावका ज्ञान होना स्वअद्वैतबुद्धि है।

३. संबंध द्वैतबुद्धि–उपादान निमित्त पदार्थों के परस्पर संबंध एवं पर के कर्त्तव्य भोक्तत्व आदिकी बुद्धि रखना सम्बन्धद्वैतबुद्धि है।

४. निज भेद द्वैत बुद्धि—निज आत्मा का गुण पर्यायभेद कल्पना सहित विकल्प होना निज भेद द्वैत बुद्धि है। सम्बन्ध बुद्धि से हटकर प्रत्येक अद्वैत बुद्धि में आये और निज भेद द्वैत बुद्धि से हटकर स्व अद्वैत बुद्धि में आये। इसके पश्चात् बुद्धि विकल्प हटकर निर्विकल्प स्थिति होगी।

ता० २८–१–५६

आज कन्छेदीलाल जी के आहार हुआ। इन्होंने २५०) साहित्य प्रकाशन के लिये दान करने का भाव बताया।

आत्मा जब ज्ञान स्वभाव है तब ज्ञान में सीमा न होना इसमें कोई आश्चर्य नहीं। आश्चर्य तो इस बात का है कि ज्ञान कम क्यों जानता! अस्पष्ट क्यों जानता! इन्द्रिय द्वार से क्यों जानता।

आत्मा जब आनन्द स्वभाव है तब आत्मा के अनन्त सुखी होने में आश्चर्य नहीं। आश्चर्य तो इस बात का है कि आत्मा के साता असाता आदि के विकल्प क्यों होते।

सब दर्शनों का तत्त्व देख लिया। वस्तु स्वरूप का प्रदर्शन जैसा जैन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

महर्षियों ने कहा वह अबाधित एवं यथार्थ है। वस्तु स्वरूप की श्रद्धा होने पर आत्मा को परम अभीष्ट पूर्ण वैभव मिल गया।

हे नाथ! हे अरहंत! हे सिद्ध! जब मेरे निर्विकल्प स्वानुभव न रहे तब तुम ही तुम मेरे उपयोग में विराजो। मुझे अन्य कुछ नहीं चाहिए। तुम ही शरण हो, तुम्हारा ध्यान ही शरण है, आवो आवो, मुझसे बाहर मत जावो।

ता० २९–१–५६

आज मुन्नालाल जी वैशाखिया के यहां आहार हुआ। इनके लघु पुत्र ने आजन्म द्यूत त्याग किया। मोराजी के विद्यार्थियों को फलाहार कराया। बुन्देलखण्ड की रोटी का क्षेत्र प्रमाण इसकी सूची पण्णट्ठी के द्वितीय वर्गमूल अंगुल प्रमाण है। आकार वन्त है। अवगाह सर्वत्र सूच्यंगल के चतुर्थ अर्द्धच्छेद प्रमाण है। जघन्य संख्यात के घन में जघन्य संख्यात के वर्ग का भाग देने से जो लब्ध हो उस एक भाग के बिना बहुभाग प्रमाण अधस्तन भाग का अवगाह है। जघन्य संख्यात के वर्ग से भाजित जघन्य संख्यात के घन प्रमाण उपरितन भाग का अवगाह है।

हिय के हरि लघु लगत हैं, मन्दिर के अतिवृद्ध।
गाँव का जोगी जोगना आन गाँव का सिद्ध॥

निज प्रभु के प्रसाद बिना आनन्द प्राप्त नहीं होता। निज प्रभु के दर्शन बिना प्रभु का प्रसाद नही मिलता। परोन्मुखता छूटे बिना प्रभु का दर्शन नहीं होता। निज स्वभाव के परिचय बिना परोन्मुखता दूर नहीं होती।

ता० ३०–१–५६

१–वस्तु सद्भावात्मक है परन्तु शेष सर्व पर के असद्भाव बिना वह स्वसद्भावात्मक नहीं हो सकता। २–वस्तु ध्रुव है परन्तु अध्रुव परिणमन के बिना वह ध्रुव नहीं रह सकता। ३–वस्तु अपने में अपृथक है परन्तु पृथक पर वस्तुओं से पृथक रहे बिना वह अपृथक नहीं हो सकता। ४–वस्तु अपने में अद्वैत है परन्तु अन्य सर्व द्वैतों के खुद में व्यवस्थित हुए बिना अद्वैत नहीं हो सकता। ५–वस्तु एक है परन्तु परिणतिरूप अनेकता के बिना वह एक नहीं रह सकता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मायाचार सब से बुरा आचरण है चाहे कुछ भी कल्पित हानि हो जावे तो होओ परन्तु मायाचार रूप निज की महती हानि मत करो। आत्माका सर्वोत्कृष्ट कृत्य निर्विकल्प समाधि है। वह मायाचार रहते हुए तो असंभव है ही आगे भी कठिन है।

किन्हीं को ऐसा तर्क होता है कि मन्दिर में जाते हैं तो वहां मन नहीं लगता, चित्त यत्र तत्र भटकता रहता है फिर मन्दिर में जाने से क्या लाभ बल्कि मन्दिर में जाना मायाचार है ऐसा मायाचार करना हमें पसन्द नहीं। समाधानः— मन्दिर के लिए यदि इस उद्देश्य से जावे कि हमें मन्दिर में मन लगाना है, भक्ति के लिए जाना है फिर भी मन न लगे तो वह मायाचार नहीं है। किन्तु शुरु से ही कोई यह भाव लेकर जाये कि लोग इसमें बड़ा समझते हैं तो वह मायाचार है। पवित्र उद्देश्य लेकर जावे और मन न लगे न सही, किसी दिन मन भी लगेगा और वहां कभी गुरुजनों का भी संग व उपदेश मिलेगा अतः मन्दिर जाना व्यर्थ नहीं।

ता० ३१–१–५६

वस्तु अनेकांत स्वरूप है अर्थात् अनेकों धर्मों के तादात्म्य वाला है परन्तु एक एक धर्मों के सापेक्ष विज्ञान बिना अनेकान्तता का विज्ञान नहीं होता। अथवा वस्तु इस प्रकार अनेकान्तस्वरूप है न एक अपि अन्तो धर्मो यत्र स अनेकान्तः जिसमें एक भी धर्म नहीं है ऐसे स्वरूप वाला है। वस्तु पूर्ण अखण्ड है, उसके धर्म तो भेद दृष्टि व्यवहार से प्रतिबोध के प्रयोजन के लिए विज्ञातव्य हैं।

सत्य कहते हैं—सत् में होने वाले को, सति भवं सत्यम्। तब जो सत् में धर्म है उन्हें माने वह आस्तिक और सत् के स्वरूप से विपरीत कल्पना करे वह नास्तिक।

जो नवयुवक ऐसा सोचते हैं—सत्य बोलना, छल न करना आदि भीतरी काम करना चाहिए बाह्य देव दर्शन रात्रि भोजन त्याग में क्या है? सो अन्तरंग आचार सत्य सरलता आदि तो आवश्यक है ही यह उनकी सूझ अच्छी है किन्तु जो बाह्य आचारों में प्रवृत्ति नहीं करते याने हिंसामय वृत्तियों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से नहीं बचते वे किसी अवसर व्यवस्थित आचार से दूर रहने के कारण चित्त को अति अनियमित कर सकते हैं इस हेतु भीतरी आचार की पालना में असमर्थ रहेंगे ।

ता० १ व २-२-५६

वेदान्त सम्मत अध्यात्मतत्त्व—

ॐकारवाच्य सर्वात्मक ब्रह्म चतुष्पाद है, आत्मा चित्स्वरूप उसके पर्यायवाची शब्द हैं ।

प्रथम पाद—वैश्वानर प्रथमपाद है, वह समस्त नरों को विविध योनियों में ले जाने वाला है, समस्त नर रूप है, जागृत अवस्था में है, बहिष्प्रज्ञ है, सप्तांग है, २१ मुख वाला है, स्थूल विषयों का भोक्ता है, स्थूल प्रज्ञ है। (२१ मुख आत्मा के विकारों का संकेत करता है) ।

द्वितीय पाद— तैजस द्वितीय पाद है, वह केवल प्रकाश स्वरूप प्रज्ञा का अनुभव करने वाला है, स्वप्न अवस्था में है, अन्तः प्रज्ञ है, सप्तांग है, २१ मुख वाला है, सूक्ष्म विषयों का भोक्ता है, अन्तःस्थ याने मन की वासना के अनुरूप प्रज्ञा वाला है, इसकी भाज्य वासनामात्र प्रज्ञा है ।

तृतीय पाद—प्राज्ञ तृतीय पाद है, ज्ञानमात्र इसका रूप है, यह कुछ विकल्प नहीं कर पाता, चेतोमुख है, स्वप्नादि ज्ञान रूप चेतना का द्वार है, सुषुप्ति (ऐसी गाढ़ निद्रा जहां न कुछ चाहता है न स्वप्न देखता है) स्थान में है, एकीभूत है, प्रज्ञान घन है याने भेद ज्ञान न होने से प्रज्ञान ही घनीभूत है, आनन्द बहुल है क्योंकि यहां जागरित व स्वप्न के विकल्प नहीं है, आनन्द भुक है क्योंकि यहां अनायास स्थिति का अनुभव है, समस्त भेद का शासक होने से सर्वेश्वर है, सर्वज्ञ है, सर्व प्राणियों के अन्तः प्रविष्ट होकर नियंता होने से अन्तर्यामी है, सभेद जगत की उत्पत्ति का कारण है, लय का स्थान भी यही है ।

तुरीयपाद—परब्रह्म तुरीयपाद है—वह न वहिष्प्रज्ञ है न उभयतः प्रज्ञ है, न प्रज्ञान घन है, न प्रज्ञ है न अप्रज्ञ है—यही आत्मा उक्त तीनों पादों में विकल्पित है, अदृश्य है, अव्यवहार्य है, कर्मेन्द्रियों से ग्राह्य नहीं है, लिंगरहित

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होने से अननुमेय है, अचिन्त्य है शब्दों द्वारा वाच्य नहीं है। तुरीयज्ञान के लिए "आत्मा है" एक ऐसा प्रत्यय ही प्रमाण है। जागृत आदि स्थानों में एक ही आत्मा है—इस प्रत्यय के अनुसार ज्ञात होने से एकात्मप्रत्ययसार है, भेद-प्रपंचका उपशम होने से प्रपंचोपशम है, शान्त है, शिव है, अद्वैत है।

उक्त कथन में सर्व अद्वैतब्रह्म न समझकर यदि प्रत्येक अद्वैतब्रह्म का प्रत्यय हो तो उक्त वहिष्प्रज्ञ, अन्तःप्रज्ञ एवं प्रज्ञानघन तीनों परसमय है और ब्रह्म समय है तथा ब्रह्म में लीन होने वाला स्वसमय है। यदि जागृत, स्वप्न व सुषुप्ति के कथन को लौकिक दृष्टान्त समझ लिया जावे तो इन वर्णनों में यह कोशिश की गई समझिये कि वहिष्प्रज्ञ तो वहिरात्मा है, अन्तःप्रज्ञ भेद विज्ञानी है और प्रज्ञानघन स्वानुभवी है तथा परमात्मा है। ब्रह्म चैतन्य सामान्यात्मक आत्मा है।

नमः समयसाराय स्वानुभूत्वा चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे॥

ता० ३–२–५६

सत् मोक्षमार्ग, आत्मा, परमेष्ठी, तत्त्व, देव, गुरु, देवत्रिक, नरविवर्त ये अध्यक्षर हैं और वह अक्षर ॐ है। इसका कुछ वर्णन तत्त्वसूत्र के प्रथमसूत्र की टीका में है।

वेदान्त में ॐ इस प्रकार आत्मवाचक है। अ ॐ की प्रथम मात्रा है और ब्रह्म पाद में वैश्वानर प्रथमपाद है, अकार अक्षर आदि का है और वैश्वानर भी आदि की अवस्था है सो अब वैश्वानर (जागरित स्थान) का वाचक है। उ यह तैजस का वाचक है, जैसे अ से उ उत्कृष्ट है वैसे वैश्वानर तैजस प्रज्ञानघन में मध्यवर्ती तैजस है। इस प्रकार उ तैजस का वाचक है। तैजस का अपरनाम अन्तःप्रज्ञ है। म-यह प्रज्ञावघन का बोलक है क्योंकि प्रज्ञानघन से विश्व व तैजस मापे जाते हैं तथा विश्व तैजस प्रज्ञानघन में लीन होते हैं, पुनः तदन्तर निकलते हैं। जैसे ॐ के म् में ओ लीन हो जाता है और म में लीन होने के बाद फिर ओ निकलता है अर्थात् बोला जाता है।

फिर भी ॐ में ब्रह्म नहीं आता क्योंकि ब्रह्म ॐ से परे है ऊपर है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जैन सिद्धांत में जो ॐ की व्याख्या है उससे ॐ अनेक तत्त्वों का अध्यक्षर सिद्ध होता है जो कि युक्ति युक्त उतरता है। भगवान की वाणी ॐ शब्द रूप है, ॐ प्रधान मंत्र है, इस ॐ का बिवरण तत्व सूत्र में है। अनेक सुकारणों से ॐ का महत्व अधिक है, अतः हमारे अन्य बन्धुओं ने ॐ को बहुत अपनाया है।

ता० ४–२–५६

आज मोतीलाल जी बिलहरा वालों के यहां आहार हुआ। पश्चात् उन्होंने विद्यार्थियों के मिष्ठान्न के लिए ५५) रु० प्रदान किए। विद्या ही सर्वोत्कृष्ट धन है। जिन्हें विद्या से प्रेम है उन्हें विद्यार्थी, अध्यापक, विद्वान, साहित्य, विद्यालय आदि से प्राकृतिक अनुराग होता है।

आज दुपहर के बाद गोपालगंज समाज के आग्रहवश गोपालगंज जाना हुआ। यहां जैन ग्रह १२ या १३ हैं। धर्म की शिक्षा का कुछ भी प्रबन्ध न देखकर उनसे कहा तो उन्होंने कुछ चन्दा किया और धर्मशिक्षा सदन की स्थापना की। जिसमें वहां के बालक रात्रि को १ घण्टा धर्मशिक्षा लेंगे। वीर जयन्ती का दिन उद्घाटन के लिये निश्चित हुआ। यहां १ घण्टे ठहरकर बगीचा-आवास स्थान पर चला आया।

धर्मशिक्षा का प्रबन्ध प्रत्येक शहर एवं गांव में होना चाहिये। मनुष्य-भव, क्षण भवों में अपूर्व क्षण है। यदि धर्म ज्ञान न किया, धर्म ज्ञान का प्रबन्ध न कराया गया तो यह बहुत बड़ी गल्ती है।

राग अवस्था में बुद्धिपूर्वक जानने का यदि प्रयत्न करो तो निज आत्मा को जानने का प्रयत्न करो या यदि पर को जानो तो प्रत्येक अद्वैत बुद्धि से जानो।

हे प्रभो! अरहंत! सिद्ध! जब मेरे विकल्प रहे तब तुम ही हृदय में विराजे रहो, हृदय से न निकलना, नहीं तो मैं विकल्पों से घिरकर बरबाद हो जाऊंगा।

ता० ५ व ६–२–५६

इस महायुग के आदि प्रवर्तक भगवान ऋषभ देव की आराधना इस भारत में कई प्रकार से की जा रही है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

१. कोई आदि तीर्थंकर का यथार्थ विश्वास करके पञ्चकल्याण सहित आराधना करते हैं।

२. कोई सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के रूप में आराधना करते हैं क्योंकि उन्होंने कर्मभूमि की आदि में जीवन के उपाय बताये थे जबकि मनुष्यों को जीवन का कोइ सहारा ज्ञात न था।

३. कोई कैलाशपति के रूप में आराधना करते हैं, क्योंकि उन्होंने कैलास पर्वत पर योग निरोध किया व निर्वाण प्राप्त किया।

४. कोई वृषभ-वाहन के रूप में आराधना करते हैं क्योंकि इन्द्र को उनके देह में वृषभाकार चिन्ह प्रथम दिखा और इन्द्र ने उस समय अपनी ध्वजा में वृषभ चिन्ह बनाकर प्रसिद्ध किया।

५. कोई अक्षयतृतीया दिवस मनाकर ऋषभ देव की आराधना करते हैं क्योंकि इस दिन ऋषभ देव की मुनि अवस्था में प्रथम आहार हुआ। जहाँ ऋषि का आहार होता वहीं भोजन अक्षय हो जाता।

६. कोई प्रयाग में अक्षय वट की पूजा करते हैं जहाँ कि उन्होंने दीक्षा ली थी व तपस्या कर केवलज्ञान प्राप्त किया था।

७. जिसके आगे बैल बैठा है ऐसी ध्यानस्थ मूर्ति बनाकर भी कोई आराधना करते हैं।

८. माया में रहकर भी माया से परे हैं इस रूप की द्योतिका एक पिण्डी बनाकर व उसके सामने बैल चिन्ह बैठाकर आराधना करते हैं। यहाँ अखण्ड पिण्ड का लक्ष्य बनाया।

९. कहीं आधा अंग ऋषि का व आधा अंग शिव का, ऐसी मूर्ति बनाकर आराधना करते हैं।

१०. कोई शिवरात्रि गुजराती फागुन बदी १३ की रात्रि में मानकर आराधना करते हैं। इसदिन प्रभु ऋषभ देव ने शिवरानी का वरण किया था याने मोक्ष प्राप्त किया था।

११. भागवत में वृषभदेव को दशम अवतार के रूप में मानकर उन की रिद्धि की प्रशंसा की।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

१२. वेदों के मंत्रों में वृषभ देव कई स्थानों में नाम आया व उन्हें नमस्कार किया।

१३. पुरानी लिपी ब्राह्मी में जो ऋषभ की ऋ का आकार है वह साथिया है।

१४. पार्वतीपति कह कर भी उनका स्मरण करते हैं 'पार्वति-पर्वतस्य अचलस्य आत्मनः परिणतिः पार्वती तस्याः पतिः स्वामी।'

१५. महादेव नाम से भी कोई उपासना करते हैं। 'देवों में महानदेव महादेव, महादेवो मया वन्द्यते।'

ता० ७–२–५६

मैं आत्मा हूँ यह कहे बिना व्यवहार नहीं चलता वस्तुतः मैं हूँ, यह मैं नहीं, मैं नहीं हूँ यह मैं नहीं, मैं हूँ मैं नहीं हूँ ये दोनों मैं नहीं, ऐसा भी मैं नहीं, इन सब से जो बचा सोऽहम्।

मैं जीव हूं ऐसा मैं नहीं, मैं अजीव हूं ऐसा मैं नहीं, मै दोनों होऊं ऐसा मैं नहीं, दोनों के आदि मध्य अन्त में जो है सो मैं नहीं किन्तु इनसे जो बचा सोऽहं।

जीव नाम अजीव की अपेक्षा से है, अजीव नाम जीव की अपेक्षा से है, मैं सर्वनाम से रहित हूं। नामतो निक्षेप व्यवहार है।

आत्मा अर्थ स्वयं व स्वस्वरूप होता है सो मैं आत्मा हूं इससे अतिरिक्त नहीं बनता।

वहिरात्मा—स्वयं से बाहर के पदार्थों को परभावों को स्वयं समझने वाला वहिरात्मा है।

अन्तरात्मा—समस्त परभाव और स्वभाव में अन्तर समझने वाला अन्तरात्मा है, अथवा स्व का अन्तर याने अभेद अंतरंग स्वरूप समझने वाला अन्तरात्म हैं।

ता० ८–२–५६

न्यायमार्गमें सर्वतोमुखी वृद्धि के अर्थ कर्तव्य —

१— संसारमें सब तरंगोंको हेय समझकर निज निर्विकल्प समाधिके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिये लक्ष्य बनाये रहना। २—प्रवचन सुनना या करना। ३—कोई ग्रन्थ पढ़ना या पढ़ाना। ४—समतापूर्वक तत्त्वचर्चामें शामिल होना। ५—शरीरसे, वचनसे व धनसे शक्ति न छुपाकर परसेवा करना। ६—अन्यकी निन्दा व चुगलीके शब्द न बोलना। ७—किसीके प्रति घृणाका भाव नहीं लाना। ८—तत्त्वकी जो समझ पाई है उसे कुछ न कुछ लिखना। ९—जो विषय सामाजिक विवादके स्थान पा गये हों उनके विषयमें मौन रहना। १०—किसीसे स्नेह नहीं बढ़ाना। ११—कहीं कोई विसंबाद हो जावे तो विसंबादके कारण तुरन्त वहाँसे नहीं जाना। १२—किसीको बहुत आगेका वायदा नहीं करना।

ता० ९–२–५६

संसार स्नेहका नाम है। स्नेहका फल आदि मध्य अंत सभी समय क्लेश ही है। प्रतिष्ठाके लिये नाना नाच होनेका मूल मोह है। मोही प्राणियों-की कलायें देखो कि कैसे कैसे लोगों ने कैसे कैसे पुण्योदयसे कैसी कैसी कलायें प्रयोगमें लाना आरम्भ कर दिया। किन्हीं की ऐसी कला है कि प्रकट दीखता ही नहीं कि उन्हें प्रतिष्ठाकी चाह हैं, किन्तु विवेकी तो उस वातावरणमें भी पहिचान सकते हैं। किन्हींकी ऐसी कला है कि प्रकट दीख भी जाती कि इन्हें प्रतिष्ठाकी चाह है परन्तु रुख परोपकार का बता देते हैं या धर्मप्रचार का। आत्मन्! तुम्हें यहां कोई जानता ही नहीं फिर सब व्यामोह छोड़ो और अपने आनन्दसे समृद्धिशाली बनो। तुम्हारे आनन्द, सुख या दुखकी जुम्मेदारी तुम ही पर है।

ता० १०–२–५६

आज गिरिराज सिद्धक्षेत्र श्री सम्मेद शिखर की वन्दना की, वन्दना सम्पूर्ण सानन्द हुई। जिस शुद्धोपयोगके प्रसादसे अनन्त आत्मा पूर्ण कृतकृत्य हुए वह शुद्धोपयोग जयवन्त होओ॥ जिस स्वभावदृष्टि के प्रसादसे शुद्धोपयोगमें वर्तन हुआ वह स्वभाव दृष्टि जयवन्त होहु॥ जिस स्वानुभवानन्दके प्रसाद से परम अनन्त आनन्द प्रकट हुआ वह स्वानुभवानन्द जयवन्त होहु॥ जिस आत्मावलोकनके प्रसादसे केवल ज्ञान प्रकट हुआ वह ज्ञप्ति जयवन्त होहु॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिस आत्मावलोकनके प्रसादसे केवल दर्शन प्रकट हुआ वह आत्मावलोकन जयवन्त होहु ॥ जिस परम पुरुषार्थ प्रसादसे विपत्ति कालमें भी ज्ञानसे अविचलित होनेके धैर्यके प्रसाद से अनन्तवीर्यका विकास हुआ वह परमपुरुषार्थ जयवन्त होहु ॥ जिस परमपारिणामिक भाव स्वरूप चैतन्य तत्त्वके अवलम्बनसे उक्त प्रसाद मिले वह चैतन्य स्वभाव जयवंत होहु ॥

जिनका निजज्ञानपर्याय ज्ञायकस्वभावमें एकाकार हो वर्तमान है व सदाकाल वर्तता रहेगा ऐसे सहज आनन्दमग्न सिद्ध प्रभु को नमस्कार हो।

हे निज चैतन्य प्रभो! तुम ध्रुव हो, सहज हो, तुम्हारा अवलंबन रूप शरण ही हित है। नथ! बहुत हँसी हो चुकी, मजाक मजाकमें ही बारबार सर्वस्व लुट गया। थोड़ी सी असावधानी का फल बहुत मँहगा व कडुवा चखना पड़ा, अब प्रसन्न होओ, तुम्हारी प्रसन्नता ही शान्ति मार्ग है, तुम्हारी पूर्ण प्रसन्नता ही परम आनन्द है।

ता० ११–२–५६

ज्ञानाभ्याससे ही हमारा हित है। अन्य व्यवसाय सब चक्रमात्र है। ज्ञानाभ्याससे स्वपरविवेकज्योति जागती है, स्वपरविवेकके पश्चात् स्वमें रति होती है। यह विश्राम आत्माका सहज स्वाभाविक आनन्द है, इसका उपाय इस प्रकार है:—

१. पर्यायको गौणकर द्रव्यको देखना।
२. भेदको गौणकर अभेदको देखना।
३. व्यक्तिको गौणकर शक्तिको देखना।
४. अन्यको गौणकर स्वयंको देखना।
५. जन्यको गौणकर अजन्यको देखना।
६. अध्रुवको गौणकर ध्रुवको देखना।
७. द्वैतको गौणकर अद्वैतको देखना।
८. विशेषको गौणकर सामान्यको देखना।
९. प्रवाहको गौणकर स्रोतको देखना।
१०. विभक्तिको गौणकर एकत्वको देखना।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

११. ज्ञेयाकारको गौणकर ज्ञानाकारको देखना।

१२, द्रव्य क्षेत्रकालको गौणकर ज्ञानाकारको देखना।

१३. गुणको गौणकर गुणीको देखना।

१४. खंडको गौणकर अखंडको देखना।

उक्त सब उपाय अनर्थान्तर हैं।

ता० १२–२–५६

हे मनुष्य! हे मन! हे विकल्प! तू सृष्टिकर्ताकी उपासना कर। जिससे तेरी सृष्टि हुई उसे देखले तो वह प्रसन्न हो जावेगा और उसको प्रसन्नताका परिणाम है निराकुलता। यही है आत्मा की चरम प्राप्य परमेष्ठिता।

हे विकल्प! तू खुद अपनेको न देख। माया; मायाको देखेगा तो उससे माया पुष्ट होगी और यदि माया अपनी विवर्तके आधारको देख लेगी तो माया आधारमें समा जावेगी तब आनन्दकी ही अवस्था रह जावेगी याने सुख-दुख सब समाप्त हो जावेंगे।

हे विकल्प, तू जिस चेतन ईश्वरका पुत्र है उस परमपिता की आराधना कर। परमपिताकी प्रसन्नतासे सहज आनन्द अनायास झरता है।

हे विकल्प तू कल्पका व्ययकर विगत कल्प बन; नामसे तो तुम्हारी रक्षाही रहेगी। हे विकल्प! तुझे विकल्पकी ही आदत है तो ले, कर विकल्प! एकबार जिसकी तू परिणति है। उस अचल तत्वका अद्वैत विकल्प भी हो तो भी विकल्पतो कहावोगे।

हे विकल्प तेरे बड़े भाई संकल्पका विनाश हुआ अबभी तेरे क्या गर्व है? यदि तेरे कुछ गर्व है तो समझ--दीपक बुझने जैसी स्थितिका ही ढंग है।

ता० १३–२–५६

आत्मन्! यदि तुम्हें अपनी करुणा करनी आ गई है या स्व दया करनी आ गई है तब सर्व विकल्पोंसे मुख मोड़कर प्रतिभासमान निर्विकल्प सहज सामर्थ्यमय निज चेतन प्रभुकी ओर मुख करो। आत्माका मुख उपयोग है।

हे निज नाथ! क्यों भटक रहे? क्यों भटका रहे? मैं तुम्हारा ही तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुत्र हूं ।

हे निज नाथ! तिरस्कार करो तो ऐसा करो कि दुबारा तिरस्कार न हो याने तिरस्कार करवाने के योग्य इस मुझ जैसे विषम पर्यायोंका अस्तित्व ही न रहे ।

हे निज नाथ! देखो बड़ों का यह काम है कि छोटों को अपनेमें मिला ले, स्थिरका यह काम है कि अस्थिरको स्थिर बनादे, ज्ञानमयका यह काम है कि अज्ञानीको ज्ञानी बना दे, सुखमयका यह काम है कि दुखी को सुखमय बना दे । देखो तुम महान हो, स्थिर हो, ज्ञानवान हो सुखमय हो और फिर हमारी दृष्टिके तुम ही तो स्वतन्त्रकर्ता हो । गलतीमें पड़ा हुआ यदि झुककर अतिसमर्थ मालिक के समीप आ जावे तब तो गलत की गलती माफ हो जाना चाहिये याने नहीं रहना चाहिये । देखो नाटकः—एक की बात दो बनकर हो रही है ।

पर्याय छोटा है, अस्थिर है, जड़ोपयोगी व दुखी है तो क्या बिगाड़! यदि अपने स्रोत रूप बड़े, स्थिर, ज्ञानमय, आनन्दघन चेतन प्रभुको ही देखे! इसके लिये पुरानी हठ छोड़नी होगी फिर देखो बहुत ही शीघ्र निर्मल, सम, शुद्ध क्षणिक पर्यायके प्रवाह रूप बड़ा स्थिर, ज्ञानमय, आनन्दमय परिणमन हो जावेगा ।

ता० १४–२–२६

स्वाभाविक पर्याय अहेतुक है, अनैमित्तिक है । आदिम स्वाभाविक पर्यायमें विभावपर्यायके निमित्तभूत निमित्तके अभावका निमित्त है सो वह भी सद्भावरूप निमित्तके बिना न होने से अनैमित्तिक है ।

द्रव्यपर्याय २ प्रकार की होती है—१ समान जातीय द्रव्यपर्याय, २ असमानजातीय द्रव्यपर्याय । समान जातीय द्रव्यपर्याय पुद्गलस्कंधों में सब से छोटा दो अणुवों का स्कंध है वह यदि भेदसे नहीं किन्तु संघातसे हुआ तो कैसे बना? उत्तर—जैसे एक परमाणु ६ डिगरीका है—यहां रुक्ष परमाणु स्निग्ध परमाणुको निमित्त पाकर स्निग्ध हो गया यह तो अर्थपर्यायकी निमित्तता हुई । व्यंजन पर्यायमें ऐसा नहीं है कि एक कोई परिणमा और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उसमें शेष दूसरा निमित्त है परन्तु उन दोनोंकी व्यंजन पर्यात हुई उसमें परस्पर निमित्तता है ।

असमानजातीयपर्याय–जैसे मनुष्य है, यहां मलिन आत्मा, द्रव्यकर्म व आहार वर्गणावों एवं तैजसवर्गणावोंका पिण्डरूप देह इन तीनोंका समुदायरूप यह मनुष्य पर्याय है। इसकी निष्पित्तिमें परस्पर साक्षात् व परम्परारूप निमित्त परस्परमें तीनों हैं ।

ता० १५–२–५६

"मैं जो हूँ सो हूँ" इसे किसी नामसे नहीं कहा जा सकता, क्योंकि नाम स्थापनाके लिये है, मुझमें वह नाम नहीं है। शब्द सभी व्यवहार के लिये हैं। इसी तरह 'मैं' यह भी नहीं कहा जा सकता, यह भी एक प्रकारका नाम है। नाम व्यवहार द्वारा समीप पहुँचकर तत्त्वको पहिचान लेना और नामका आग्रह छोड़ देना यह कल्याणपथ है। अंगुलीकी सीधसे चन्द्रको बताया जावे तो वहां चन्द्रको देख लेना, अंगुलिकी दृष्टि छोड़ देना ।

धर्मका व्यामोह एक विलक्षण अन्धकार है, जिसमें अन्य तुच्छ नीच प्रतिभासते शरीर शुद्धिका विशेष विकल्प रहता है। निष्कर्ष यह निकलता कि वह धर्मव्यामोही आकुलित बना रहता है, निज चैतन्य प्रभुके दर्शनसे भी वंचित रहता है ।

धर्मके सम्बन्धमें ४ अभिप्रायसे जानकारी करें १. निश्चयधर्म, २. व्यवहार धर्म, ३. उपचारधर्म, ४. उपचरितोपचार धर्म, निश्चयधर्म आत्माका अनादि अनन्त स्वभाव है। व्यवहार धर्म स्वभाव का अनैमित्तिक विकास है। उपचार धर्म स्वभाव विकासरूप व्यवहार धर्मके पूर्वका उपयोग है। उपचार धर्मके समय होने वाली तन, मन, वचनादि की प्रवृत्ति है ।

ता० १६–२–२६

निम्नलिखिति अवसर के अतिरिक्त प्रतिदिन २० घन्टे मौनसे रहना —यदि ख्याल न रहे तो ख्याल आते ही कायोत्सर्ग करके मौन हो जाना ।

१. सप्ताह में एक दिन विशेष अवसर होनेपर, २. गुरुजनोंके पासमें बैठे हुएमें, ३. अतिदूरसे किसी बंधुके मिलनेके लिए आनेपर अधिकसे अधिक

http://sahjanandvarnishastra.org/

१० मिनट, ४. आहारोपरान्त गृहस्थके घरपर अधिक से अधिक १– मिनट, ५. प्रयाण के समय व पहुँचनेके समय आधा घंटा, ६. चार घंटा बोल सकने का अंदाजन प्रोग्राम— पौन घन्टा प्रवचन पौन घन्टा पाठन, पौन घन्टा तत्त्व-चर्चा, पौन घन्टा प्रवचन या पाठन या पठन, आधा घन्टा सेवा–समाज मिलन आधा घन्टा अन्य पूरक प्रोग्राम।

यान सम्बन्धी नियम वर्षायोग प्रतिष्ठापनके बाद १. नौका व डोली का यथावसर उपयोग, २. वर्षमें एक बार तीर्थबन्दन, प्रान्तपरिवर्तन, गुरु-सत्संग व वर्षायोगके पहिले रेल या वायुयानसे गमनागमनके अतिरिक्त इस यानका भी त्याग। ३. अतिविशिष्ट त्यागी सत्पुरुषकी समाधिके अवसरपर यांत्रिक यान द्वारा गमनागमन। उक्त नियम पूज्यश्री गुरुवर्य महाराजजीकी आज्ञा लेकर लिए।

ता० १७–२–५६

आजकल साथका सवाल बड़ा कठिन है, क्योंकि लोग विभिन्न विभिन्न रुचि के होते हैं। परन्तु चैतन्यमात्र निज वस्तुत्वका परिचय पाये हुए कितने ही लोग हों, उनमें विवाद नहीं होता। कितने ही लोग कहते हैं कि आजकल मुनीश्रीकी संख्यासे अधिक आचार्यश्री की संख्या है। जबकि पहले आचार्यश्री की संख्यासे कई सौगुनी संख्या मुनिश्री की थी।

चरणानुयोगकी प्रवृत्तियों में भी विविधता है और कषाय परिणामों की भी विविधता है। सभी विविधताओंकी आपत्ति चैतन्यमात्र निज वस्तुत्वके परिचयसे लुप्त हो जाती है।

सर्व तन मन धन वचन निछावर करके भी स्वरूप परिचय हो जावे तो उससे बढ़कर विभूति तीन लोक व तीन कालमें अन्य नहीं है। जिस प्रवृतिमें स्वरूपदृष्टिकी विरुद्धता है वह व्यवहारसे भी अधर्म है। जिस बाह्यनिवृत्ति में स्वरूपदृष्टिकी विरुद्धता है वह भी व्यवहारसे भी अधर्म है।

ध्रुव रहना चाहते हो तो ध्रुव स्वभावको देखो।
अविनाशी रहना चाहते हो तो अविनाशी स्वभावको देखो।
सुखी रहना चाहते हो तो सुख स्वभावको देखो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानी रहना चाहते हो तो ज्ञानस्वभावको देखो।

शान्त रहना चाहते हो तो निस्तरंग शान्त स्वभावको देखो।

ता० १८-२-५६

क्रोधी रहना चाहते हो तो क्रोधकी ज्ञानपर्यायमें एकाकारता होने दो।

क्षमाशील रहना चाहते हो तो निस्तरंगस्वभाव की ज्ञानपर्यायमें एकाकारता होने दो।

मानी रहना चाहते हो तो मानभावकी ज्ञान पर्यायमें एकाकारता होने दो।

मृदु रहना चाहते हो तो सहजस्वभावकी ज्ञान पर्यायमें एकाकारता होने दो।

मायावी रहना चाहते हो तो छल कपट परिणाम की ज्ञानपर्यायमें एकाकारता होने दो।

सरल रहना चाहते हो तो स्वतःसिद्ध स्वभावकी ज्ञानपर्याय में एकाकारता होने दो।

लोभी रहना चाहते हो तो तृष्णाभावकी ज्ञानपर्यायमें एकाकारता होने दो।

शुचि रहना चाहते हो तो केवल स्वभावकी ज्ञानपर्यायमें एकाकारता होने दो।

जिस जीवनकालमें स्वरूप दृष्टि न होनेसे विह्वलता रहती है वह जीवन वृथा है।

जिस मरणकालमें स्वरूप-सावधानी होनेसे समता, शाँति रहती है वह मरण सार्थक है।

स्वभावदृष्टि रहै तो कहीं दुःख नहीं है। स्वरूपदृष्टि न रहे तो कहीं सुख नहीं है।

स्वभावके विकास २ प्रकार के हैं—१. स्वभाव २. विभाव। स्वभाव विकास अहेतुक है, विभाव विकास सहेतुक है। दोनोंमें रहने वाला सहज स्वभाव एक सनातन है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सहज स्वभावका अर्थ है जबसे वस्तु है तभीसे एक रूपसे जिसका तादात्म्य हो। सहजका निरुक्त्यर्थ है सहजायते इति सहजम्। जो साथ उत्पन्न हो अर्थात् जबसे वस्तु उत्पन्न है तभी से जो हो। वस्तु अनादिसे है वह किसीसे उत्पन्न नहीं हुई सो वस्तुका स्वभाव भी अनादिसे है वह किसी दिन उत्पन्न नहीं हुआ। उत्पन्न होनेका नाम देकर चूंकि वह अनादिसे है सो अनादि सिद्धता बताई है।

ता० १६–२–५६

परमात्मा शब्दको बिना लाइन के लिखो उसमें जितने अंक समझमें आयें जोड़ दो। उनका जोड़ २४ होता है। लोगोंकी कल्पना हो सकती है कि परमात्मा शब्द ही बताता है कि २४ तीर्थङ्कर होते हैं।

ऊनी कपड़ा अशुद्ध है पशुके बाल काटकर बनाये जाते हैं उसमें उनका खून तक निकल आता है तथा उन बालोंमें अन्य जीव भी पैदा होते रहते हैं। इसका नाम भी ऊनी है, ऊन कम याने घटिया। सो यह कपड़ा ऊनी है अर्थात् घटिया रद्दी है। इसका सत्पुरुषको उपयोग नहीं करना चाहिये।

अहिंसक पुरुषको नंगे पैर चलना चाहिये और चमड़ेका किसी भी कार्यके लिये उपयोग नहीं करना चाहिये। यदि कोई इससे अशक्त हो तो क्रूम आदि चमड़ेका जूता न पहिने और अन्य चमड़ेकी वस्तुका किसीका उपयोग न करे। जीवित पशुओंको बुरी तरह मारकर क्रूम आदि चमड़ा बनाये जाते हैं। सो चमड़ेके उपयोगमें अहिंसा पल ही नहीं सकती।

अहिंसक पुरुषको रात्रिमें भोजन नहीं करना चाहिये, रात्रिभोजी अहिंसक हो नहीं सकता। अहिंसा ही धर्म है। आत्मामें जितना अहिंसा तत्त्व है उतना धर्म है और जितनी हिंसावृत्ति है उतना अधर्म है।

ता० २०–२–५६

मौलिक सदाचारी निम्नलिखित बातोंका पालन करे।

१, शराब, गांजा, भंग, अफीम, चरस, आदि नशीली वस्तुओंका त्याग। २. मांस, अंडे, मधु (शहद) व सड़ी वस्तुके खानेका त्याग॥ ३. जुआ खेलनेका त्याग। ४. इरादतन किसी जीवका घात नहीं करना व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दिल नहीं दुखाना। ५. विश्वासघात नहीं करना, छल नहीं करना, दूसरोंका अहित करने वाले वचन नहीं बोलना, चुगली, निन्दा नहीं करना, झूठी गवाही नहीं देना। ६. किसीकी चीज नहीं चुराना। ७. परस्त्री व वेश्यासे संबंध नहीं रखना। ८. परिग्रहका परिमाण करना व आवश्यक्तासे अधिक परिग्रह होने पर यथाशक्ति दूसरों के उपयोगके लिये वितरण करना॥ (अण्डा, मांस ही है किन्तु कुछ मनचले इसे वेजीटेबिल का बहाना कर खाने लगे इसलिये २रे नियम में अण्डा भी लिख दिया)।

ता० २१–२–५६

मौलिक सदाचार पालनके साथ साथ निम्नलिखित विशिष्ट सदाचारोंका भी पालन यावज्जन्म अथवा कमजोरी हो तो कुछ अवधि रखकर पालन करे।

१. बीड़ी सिगरेट तम्बाखू खाने पीनेका त्याग। २. रात्रिमें अन्नकी वस्तु खानेका त्याग। ३. रात्रिमें सभी पदार्थोंके खानेका त्याग॥ ४. रात्रि में जल औषधिके अतिरिक्त सभी वस्तुवोंके खाने पीनेका त्याग॥ ५. रात्रिमें जल औषधि आदि सब वस्तुओंके खाने पीनेका त्याग॥ ६. रिश्वत लेने का त्याग॥ ७. धार्मिक समारोहके अतिरिक्त सिनेमा देखनेका त्याग॥ ८. वीतराग सर्वज्ञ परमात्माका प्रतिदिन अभिवन्दन करना॥ ९. विषयकषायोंसे निवृत्तिका उपदेश देनेवाले शास्त्रों का प्रतिदिन स्वाध्याय करना॥ १०. परिग्रहत्यागी ज्ञान ध्यान तपमें लवलीन साधुकी भक्ति करना। ११. गोभी फूल खानेका त्याग॥ १२. पुराने अचारका त्याग॥ १३. बाजारकी बनी हुई खाद्य चीजोंका त्याग॥ १४. पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन॥ १५. प्रतिमासमें …दिन पूर्ण ब्रह्मचर्यसे रहना। १६. (पर्वोंके नाम लिखकर) पर्वोंके दिन पूर्ण ब्रह्मचर्यसे रहना॥ १७. छना हुआ जल पीना। १८. अनछने जलकी बनी हुई वस्तुको खानेका भी त्याग॥ १९. कुत्ता बिल्ली आदि शिकारी जानवर न पालना॥ २०. धनकी आयमेंसे ( ) पैसा प्रतिरुपया सब दानमें निकालना॥ २१. धन की आयमें से ( ) पैसा प्रति रुपया ज्ञान दानमें निकालना॥ २२. प्रतिदिन ( ) घण्टा पढ़ना, पढ़ाना या स्वाध्याय करना।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

२३. प्रतिदिन ब्राह्म मुहुर्तमें ( ) घण्टा मौन पूर्वक आत्माराधना करना।

ता० २२–२–५१

अन्तरंग सदाचार—

१. धन घर वैभव आदि पदार्थोंको निजसे भिन्न समझना। २. परिवार मित्र आदि प्राणियोंको निजसे भिन्न समझना। ३. शरीरको अपनेसे भिन्न समझना। ४. तैजसकार्माणरूप सूक्ष्म शरीरसे अपनेको भिन्न समझना। ५. रागद्वेषादि विभावों को निजसे भिन्न समझना। ६. वर्तमानमें हो रहे अपूर्ण ज्ञानोंको निजस्वरूपसे भिन्न समझना। ७. आगामि होनेवाले पूर्ण ज्ञानको निजस्वभावसे भिन्न समझना। ८. शुद्ध चैतन्यमात्र निजका अनुभव करना। ९. शुद्ध चैतन्यमात्र निजस्वभावमें उपयोगको स्थिर करना। १०. निजस्वभावमें स्थिरता न होने पर उसकी भावना करना। रागवश अस्वभावकी प्रवृत्ति होने पर भी श्रद्धासे विचलित नहीं होना।

ता० २३–२–५६

प्रभावना तो अज्ञान अंधकार को दूरकर यथायोग्य जिन शासनके माहात्म्यको प्रगट करना है। किन्तु प्रायः लोग यदि कोई पंचकल्याणक आदि समारोह भी किया जावे तो—वहां भी आर्थिक आय अधिकसे अधिक हो यह दृष्टि और प्रयत्न करते हैं ऐसा करनेपर अज्ञान अंधकारको दूर करनेका प्रोग्राम गौण हो जाता है फिर बताओ वह प्रभावना कैसे कहावे।

स्नपन आदि धार्मिक कार्यके लिये अनेक लोग प्रस्तुत हो जावेंगे इससे अव्यवस्था होगी अतः चुनाव तो आवश्यक है। यदि यह सुझाव हो कि सदाचारियोंका चुनाव करलें—इसके लिये भी विसंवाद हो सकता है, अतएव बोली बोलना आवश्यकसी हो जाती है किन्तु एतदर्थ लघुकाल लगाये और उपदेश आदिमें अधिक समय लगावे इससे प्रभावना ठीक हो सकती है। उक्त व्यवस्था का एक उपाय यह भी हो सकता है कि उत्सवकारक उत्सवमें लगानेवाले सर्व खर्चको करे फिर आयकी अपेक्षा गौण हो जावेगी।

ता० २४–२–५६

कमसे कम सप्तव्यसनका त्यागी तो हो ही हो, तब उसके हाथसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

त्यागीजन आहार लेवें। सबका भला करनेवाला उनका सदाचार ही है। जुवा सब व्यसनोंमें प्रधान है; इसके कारण जुवारीमें सब व्यसन आ जाते हैं। जुवा कहते हैं हार-जीत की दृष्टिसे खेल खेलना, जिसमें धनकी हार होने पर दुःखी होना होता है और धनकी जीत होने पर कुछ मौज होना होता है; सो वह मौज स्थायी नहीं है उन्हें भी आखिर सर्वस्व खोकर दुखी होना ही पड़ता है। अन्तरंग जुआ सब व्यसनमें अर्थात् मिथ्यादृष्टिमें सब आपत्तियां आ जाती हैं। अन्तरंग जुवा कहते हैं—पुण्यका उदय होनेपर इष्ट समागममें अपनी जीत समझना और पापका उदय होनेपर अनिष्ट समागम अथवा इष्ट वियोग होनेमें अपनी हार समझना, दुःख मानना। सो इष्ट समागम भी कब तक रह सकेगा अन्तमें उसके वियोगमें दुःखी होना पड़ेगा ही। इस जुवे वाले दुरभिनिवेशका नाम मिथ्यात्व है वह सांसारिक सर्व व्यसनोंका मूल है। इस मिथ्यात्व रूपी प्रधान व्यसनके मिटने पर सब व्यसन मिटने लगते हैं।

द्वीन्द्रियादि के देहोंका भक्षण करना मांस भक्षण है। मांस भक्षी जीव महापतित और क्रूर है धर्म दया से रहित है वह तो आत्मसंयमनका पात्र भी नहीं है शांति कहांसे होगी। वस्तुतः निज देह में या पर देहमें आसक्ति होना माँस भक्षण है। आत्मा अपने आपमें ही कुछ कर सकता है। द्वीन्द्रियादिके देहके भक्षणका परिणाम तथा निज देह या पर देहमें रुचि आसक्ति भोगका परिणाम, यह आत्माका विकृत कर्म है यही अंतरंग व्यसन है, आपत्ति है निरी आपत्ति है, इसमें निरंतर आकुलता रहती है वह शांति व आत्मसंयमनका पात्र नहीं है।

व्रत करनेमें अन्तरंग निर्मलता और निरीहताकी आवश्यकता है, दुर्बलता उतनी बाधक नहीं। क्योंकि निर्बलसे निर्बल मनुष्य परिणामोंकी निर्मलतासे मोक्षमार्गके पात्र बन जाते हैं जबकि निर्मलताके अभावमें सबलसे सबल भी मनुष्य संसारके पात्र बने रहते हैं।

जिसको हमने पर्याय भर रोग जाना और जिसके लिए दुनिया के वैद्य और हकीमों को नब्ज दिखाया, उनके लिखे बने या पिसे पदार्थों का सेवन किया और कर रहे हैं, वह वास्तव रोग नहीं है। जो रोग है उसको न जाना

और न जानने की चेष्टा की और न उस रोग के वैद्यों द्वारा निदिष्ट रामबाण औषधि का प्रयोग किया। उस रोग के मिट जाने से यह रोग सहज ही मिट जाता है। वह रोग है राग और उसके सद्वैद्य है वीतराग जिन। उनकी बनाई औषधि है ? (१) समता (२) परपदार्थों से ममत्व का त्याग और (३) तत्त्वज्ञान। यदि इस त्रिफला को शान्तिरसके साथ सेवन कर कषाय जैसी कटु और मोह जैसी खट्टी वस्तुओं का परहेज किया जावे। तो इससे बढ़कर रामबाण औषधि कोई नहीं हो सकती।

ता० २५–२–५६

मदिरा आदि नशीली चीजोंके पान करने को मदिरापान करना कहते हैं, मदिरापायी अपनी सारी सुध भूल जाता है बेहोश हो जाता है, धर्म कर्त्तव्य की बुद्धि इससे नष्ट हो जाती है। वस्तुतः मोहके उद्वेगसे अविवेकमें बेहोश होना मदिरापान है। इस अविवेकसे धर्म कर्त्तव्यकी बुद्धि नष्ट हो जाती है।

वेश्यासे प्रेम संसर्ग करना वेश्यागमन है। वस्तुतः परपदार्थगामिनी कुबुद्धि वेश्या है, उसकी पद्धतिसे चलना वेश्यागमन है। इस व्यसनका करने वाला शांति, कल्याण का पात्र नहीं।

बिना दी हुई दूसरेकी चीज उठा लेना रखना सो चोरी है, इस व्यसन वाले का चित्त अन्यायपूर्ण व भयभीत रहता है वह पुण्य कर्मका भी अधिकारी नहीं है। वस्तुतः अपनेसे भिन्न स्वरूपवाले गेह धन आदिको अपना मानना, उनके ग्रहणकी चाह करनासो चोरी है। इस विरुद्ध भाव वाले आत्मामें धर्म-भाव नहीं ठहरता।

मृग आदि प्राणियोंका शिकार करना शिकार व्यसन है। शिकार निर्दयतासे ही होती है। निर्दय पुरुष पुण्य कार्यका भी अधिकारी नहीं है। वस्तुतः विषय कषायोंमें फ़ँसकर अपने ज्ञान दर्शन प्राणों का घात करना सो शिकार है। इस शिकारी के धर्म की वृत्ति नहीं है।

पर पदार्थों के विविध ज्ञानों में पर बुद्धि की ही परख रह जाना सो परस्त्री गमन है। परबुद्धि अथवा पर्याय बुद्धि रूप परवृत्ति का पररमणी का आसक्त प्राणी धर्म धारण की योग्यता नहीं रखता। परस्त्री के साथ राग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संसर्ग करना भी परस्त्री गमन है।

उक्त सात व्यसनों के त्याग से ही मोक्षमार्ग मिल सकेगा, सो सप्त व्यसन का त्याग जन जन का होना चाहिए।

ता० २६–२–५६

समाज की आज की आवश्यकता व उसकी पूर्ति के साधन—

सदाचार का प्रचार करना—साधु संत एवं देशव्रती सम्मेलन आदि संस्थायें।

साँस्कृतिक शिक्षा का प्रसार करना–विद्यालय, गुरुकुल, एवं सत्संग

व्यापारी व लौकिक शिक्षार्थियों के धर्मपाठन का प्रबंध बोर्डिंग हाउस, धर्मशिक्षासदन, रात्रि शाला व ग्रैष्मकालिक धर्मशिक्षण शिविर।

व्रती मुमुक्षुजनों के लिए—आश्रम, विद्यामंदिर स्वाध्याय मन्दिर, चर्चा, शास्त्र सभा।

भक्तिसंगीत—आकर्षक संगीतमंडल, मथुरा संघ, वीर संघ। जैन भजन रिकार्ड्स, धार्मिक क्षेत्र उत्सव कथा फिल्म—वीर संदेश प्रसारक संघ व अन्य संस्थायें।

जैन सिद्धान्तों का प्रचार व गलत प्रचार रोकना—विद्वत्परिषद आदि।

धर्मसंकट रक्षा—महासभा, परिषद् आदि।

विशाल लाइब्रेरी व अनुसंधान—विद्यापीठ वैशाली, वीर सेवा मन्दिर आदि।

योग्य-योग्य सत्संगों में एक-एक विद्वान रखना—केन्द्रीय महासमिति देहली आदि।

विदेशों में धर्मज्ञानका प्रचार करना—अखिल विश्वमिशन।

सर्व धर्मियों का समन्वय व संगठन—विश्व धर्म सम्मेलन।

धार्मिक आध्यात्मिक पत्र—सन्मति संदेश, अनेकान्त आदि।

अब कुछ वक्ताओं में असत्य व्यवहार चलने लगा है—जैसे–भाषणों में अन्य की घटनाओं में अपना सम्बन्ध जोड़ देना, कल्पित अपनी घटना बता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देना, आय व्यय का हिसाब गलत रखना, अन्य वक्ता से ईर्ष्या करना आदि। यह मिटकर सत्य व्यवहार हो तो स्वपर हित हो।

ता० २७-२-५६

आज रेशन्दिगिरमें गजरथ चल रहा है। करीब १ लाखका जनसमुदाय रथ देखने खड़ा है। दृश्य सुहावना है, दोनों हाथी बड़े सुन्दर दिख रहे हैं। चलता हुआ रथ देख कर जनता विभोर हो रही है। यदि शुद्ध आत्मा व परमात्माका वास्तविक स्वरूप व आत्मासे परमात्मा बननेका वास्तविक उपाय जनताको देशनादि द्वारा विदित करा दिया जाना तो यह दृश्य उनकी दृढ़ श्रद्धा और विशिष्ट पुण्यबन्धका कारण होता परन्तु इन उत्सवोंमें बहुलतया धनार्थियोंका सम्बन्ध होनेसे सब कुछ तन मन धन वचन खर्च करके भी स्वपर लाभसे वञ्चित रहते हैं।

प्रत्येक मनुष्य यदि चार बातोंका प्रतिदिन पालन करता रहे तो उत्थान अवश्य होगा—

(१) सबसे मीठे हितकारी वचन बोलना। (२) नियमिय स्वाध्याय करना। (३) ब्रह्मचर्यसे रहना। (४) शुद्ध भोजन करना।

यहां इन देहातों में १ प्रथा बहुत बुरी है कि स्त्रियां अपनी इष्ट स्त्रियोंसे मिलने पर कन्धेसे कन्धा लगाकर ऐसी बुरी तरह रोती हैं कि सुनने वालोंके दिल कांप जाँय। यह प्रथा सभ्यतासे विरुद्ध है।

ता० २८-२-५६

पदके विरुद्ध कार्य करनेवालों की बुद्धि भ्रष्ठ हो जाती है, परन्तु श्रद्धाके कारण जिनकी बुद्धि भ्रष्ठ न हो व कर्म विपाकवश कुछ विरुद्ध कार्य करनेमें आजाय यद्यपि वह अनाचार नहीं हो तथापि अतिचार तो है ही, उसकी निवृत्ति शीघ्र कर लेना चाहिये।

स्वरूप और नियमोंकी ओर झुकाव हुए बिना बुद्धि अभ्रष्ट नहीं हो सकती।

मेला कल तक रहा व कल से विघटना शुरू हुआ। यह संसारकी परिस्थितिका जीता उदाहरण है। मैं सबसे न्यारा अकेला चैतन्य मात्र हूँ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो मैं हूं, वह ध्रुव है और जिनसे मेरा पर्यायगत सम्बन्ध है वह अध्रुव है। निश्चयतः मेरा किसी से सम्बन्ध ही नहीं है। जिस समय इस मुझसे परका सम्बन्ध है उस समय यह मैं भी अध्रुव हूं। द्रव्यका द्रव्यसे सम्बन्ध नहीं होता। अवस्थाका अवस्थासे सम्बन्ध होता सो भी संयोगमात्र।

मैं समस्त परसे अत्यन्त भिन्न हूं। जीव और पुद्गलका न्यारापन और अवस्थाकी अध्रुवता व द्रव्यकी ध्रुवता प्रतीतिमें आ जाना सर्व शास्त्रोंके पढ़ने का फल है।

निजकी दया सर्वोत्तम दया है। निजकी दया करनेवाले के निमित्तसे परकी दया हो जाना अनायास होता रहता है। अनादि, अनन्त, अहेतुक, असाधारण, निज चैतन्य स्वभावकी दृष्टि रखना निजकी दया है और अवस्था व भिन्न पदार्थोंकी दृष्टि रखना निजकी अदया है। निजकी याद निजकी दया है, परकी याद निज की दया नहीं है। दया—या—द।

ता० २९—२—५६

तुम एक ही तो प्रसन्न होना चाहते हो तो निज एकको ही प्रसन्न करो। एक की प्रसन्नता एककी दृष्टिसे होती है। एककी दृष्टि एक अखंड स्वभावके मननसे होती है। अतः सर्व विज्ञान होनेपर भी प्रत्येक वस्तुके अखंड स्वभावके दर्शनपूर्वक स्वतन्त्र स्वतन्त्र सबको निरखो। परतन्त्र कुछ भी नहीं है। मान्यताकी लाज निमित्तभूत वस्तुओं ने रखी है। निमित्तभूत वस्तुवोंकी लाज उपादानके तथाविध परिणमनने रखी है।

जिनका मन मदनमोहमगन है वह धर्मसेती दूर है व आप संसार संताप सहता है। संसार की विजय कठिन नहीं है, निरन्तर सत्संगका अभाव आज-कल बड़ा कल्याणबाधक हो रहा है।

श्रद्धा समस्त निर्णयकी जननी है। जब पर बुद्धि रूप आपत्ति आवे तब निज स्वभाव दृष्टि रूप सुदृढ़ गढ़ी में जाने या रहने का यत्न होना चाहिये।

आत्मा नित्य है। नित्यकी दृष्टि करो आनन्द नित्य हो जावेगा।

पर्यायें २ प्रकार की हैं—१ विषम, २ सम। यद्यपि सब पर्यायें क्षणिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं तथापि विषम क्षणिक का अनुभव दुःखपूर्ण है, सम क्षणिकका अनुभव सहजानन्द–विकास रूप है।

ता० १–३–५६

विरोध बड़ी ज्वाला है जिस हृदयमें किसी विषयक विरोध वसता है वह चैन नहीं ले पाता। क्या कोई द्वेष भाव रख कर सुखी हुआ है? नहीं हुआ। जो अपकार करे, विपत्ति डाले उसके प्रति भी विरोध न करे तो वह स्वयं भी सुखी हो जावेगा और दूसरा भी सुखी हो जावेगा, स्वयं निर्वैर रहेगा और दूसरा भी निर्वैर हो जावेगा।

इष्ट समागम में फूलो मत। श्री वृषभदेव के ६ माह अन्तराय आता रहा, कोई इष्ट साथी नहीं हुआ। अनिष्ट समागममें दुःखी मत होओ, स्वरूप-ज्ञानीके कुछ अनिष्ट ही नहीं।

जब शरीर ही तेरा नहीं है तो तेरा क्या होगा? रोग जिसकी पर्याय है उसे उसी में देखो व परिणति याने रोगको गौणकर द्रव्य की प्रमुख दृष्टि बनाओ।

तेरा तेरे आत्माके अतिरिक्त और क्या है? कुछ नहीं, तो अब न कुछ की इच्छा मत करो। परकी इच्छा बड़ी विपदा है, इससे अनंत संसारका संताप पुष्ट होगा।

मूढ़ लोक सुखकेलिये बुरा बोल बोलते हैं सो अपनेसे बड़के प्रति तो बुरा बोल नहीं पाते। यदि इनसे बोले तो तत्काल दण्ड मिले। हां मानने में जो इनसे छोटे हैं उनसे बुरा बोलते हैं सो उनकी इस चेष्टासे उनका यश नष्ट हो जाता है फिर इसके प्रतिफल स्वरूप उन्हें दुःखी होना पड़ता है। बुरे वचन वक्ता को दुःखी करते हैं सो बुरा कभी भी नहीं बोलना चाहिये। मिष्ट हितकारी वचनसे मनुष्य की शोभा व भलाई है।

ता० २–३–५६

एकविहारित्व व एकांतवास इन दोनोंकी योग्यता आज कलके लोगोंमें नहीं है। हां एकांतवास की योग्यता तो हो सकती है। यदि बिलकुल एकान्त-वास हो परन्तु ऐसा एकान्तवास होना कठिन है। एकविहारित्व की तो योग्यता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आजकल है ही नहीं।

बुद्धिमानोंका सत्संग लाभकारक है। यद्यपि बुद्धिमानोंके समुदायमें विवाद होनेकी अधिक संभावना है और मूर्ख लोगोंमें विवादकी संभावना कम है तथापि बुद्धिमानोंका संग ही उत्तम है, मूर्खोंका संग उत्तम नहीं है। विशिष्ट बुद्धिमानोंमें विवाद उठनेका प्रश्न ही नहीं है।

संसारमें कुछ भी वस्तु उत्तम नहीं है। अपने लिए निज चैतन्य स्वभावकी दृष्टि और स्वभावमें ही स्थिर होकर चैतन्य स्वभावकी ही अनुभूति ही एक उत्तम है।

मेरा सहाई यहां कोई नहीं है, न मित्र सहाय, न बन्धु सहाय है, न प्रभु सहाय है, न शरीर सहाय है, कोई सहाय नहीं। अपना निर्मल परिणाम ही सहाय है। परिणामकी उत्कृष्ट निर्मलता वहां है, जहां किसी अन्य तत्त्वका आश्रय नहीं बनाया जाता, अहेतुक सहज सिद्ध परिणमन जहां होता। आत्मन्! किसीको मत सोच, क्योंकि अन्य कोई तेरा कुछ नहीं है। आत्मन्! किसीसे अनुराग मत कर, क्योंकि किसीसे कुछ भी नहीं मिलना। सर्व इन्द्रियोंके व्यापारको बन्द करके अपने स्वभावके उन्मुख होकर विश्राम से रह।

ता० ३-३-५६

धर्म अविकार सहज स्वभाव के अवलबनसे प्रकट होता है प्रथम तो निश्चयतः अविकार स्वभाव ही धर्म है किन्तु वह भोक्ता नहीं है अतः व्यक्तानन्दमय नहीं। अविकार स्वभावके अवलंबनसे प्रकट होनेवाला पर्याय रूप धर्म व्यक्तानन्दमय है, यह व्यवहार धर्म है धर्मसे पूर्व या उत्तरमें होनेवाले प्रशस्तरागादिभाव उपचार धर्म है। उपचारके धर्मको निमित्त मात्र करके होनेवाली देहादि क्रिया उपचरितोपचरित धर्म है।

वस्तुतः निश्चय धर्म व व्यवहार धर्म ही धर्म है। उपचार धर्म शुभोपयोग अथवा पुण्यभाव है वह धर्म नहीं। उपचरितोपचरित धर्म पुद्गल की परिणति है वह भी आत्मधर्म नहीं।

आत्मधर्म अचेतन पदार्थ के अवलम्बन से प्रकट नहीं होता। आत्मधर्म पर चेतन पदार्थ के अवलम्ब से प्रकट नहीं होता। आत्म धर्म रागादि परभाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के अवलम्बन से प्रकट नहीं होता। आत्मधर्म देह वचन मन के अवलम्बन से प्रकट नहीं होता। आत्मधर्म वर्तमान पर्याय के अवलम्बन से प्रकट नहीं होता। आत्मधर्म त्रैकालिक अखण्ड वस्तु परमपारिणामिक भाव के सविकल्प अवलंबन से प्रकट नहीं होता।

आत्मधर्म निज अखंड वस्तु-परमपरिणामिक भाव के निर्विकल्प अवलम्वन से प्रकट होता है। आत्मधर्म प्रकट होनेकी रीति सबको एकसी है।

यदि उत्कृष्ट धर्म पर्याय न प्रकट हुई हो अनुत्कृष्ट होरही हो वहां भी धर्म प्रशस्त रागसे प्रकट हुआ न समझना क्योंकि प्रशस्त रागसे धर्म प्रकट नहीं होता किन्तु आत्म स्वभावकी श्रद्धारूप अवलम्बनसे प्राथमिक-अनुत्कृष्ट धर्म पर्याय प्रकट होती है पश्चात् उसही स्वभावकी स्थिरतारूप अवलम्बनकी जैसी वृद्धि होती जाती है वैसा धर्म परिणति उत्कृष्टताकी ओर बढ़ती चली जाती है।

ता ४–३–५६

राग जीवकी गलती है। श्रद्धासे धर्म होने पर भी जो शुभ रागरूप गलती है उसका फल तीर्थंकर इन्द्र चक्रवर्ती उत्तम देव होना है। फिर तो यदि जैसे श्रद्धासे धर्म है साथ चरित्र से भी धर्म हो याने शुभरागकी भी गलती न हो तो उसका फल शाश्वत परम आनन्द है।

अनादिकालसे संसारसंताप सहता हुआ यह आत्मा परिणमन करता चला आया है आज इस मनुष्य भवमें है, श्रेष्ठ मन वाला है, क्सका मन नारकी और तिर्यञ्चों से श्रेष्ठ है यह तो प्रकट सिद्ध है किन्तु देवोंके मनसे भी श्रेष्ठ है, यह आगम सिद्ध है—इन्द्र अंग पूर्वों का पाठी होकर भी श्रुतकेवली नहीं है। मनुष्य ही श्रुतकेवली हो सकता है पूर्वोंके पाठी हैं, लौकान्तिक व सर्वार्थसिद्धि आदिके देव अंग पूर्वोंके पाठी हैं। पुनरपि वे श्रुतकेवली नहीं हो सकते। श्रुतकेवली मनुष्य ही हो सकता है। इतना श्रेष्ठ मनवाला भव पाकर के भी यदि सत्कृत्य न हुआ तब इससे बढ़कर अफसोसकी बात अन्य नहीं।

सत्कृत्य यह एक ही है—"स्वभावका अवलम्बन"। स्वभाव आत्मा का अनादिसे अनंतकाल तक नित्य अंतःप्रकाशमान है उसे जब उपयोगने देखा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाना तभी सम्यक्त्व हुआ। आत्माका धर्म आत्मासे ही प्रकट होता है। स्वभाव की दृष्टि आ जावे इतना ही कठिन था, अब स्वभावकी दृष्टि आ गई, अब कुछ सोचकी बात नहीं। स्वभावके अवलम्बनसे स्थिरता बढ़ाते जावो।

ता० ५-३-५६

जिसको कल्याणकी वाञ्छा है वह तीन बातोंका शक्ति न छुपाकर पालन करता रहे १-स्वाध्याय, २-ब्रह्मचर्य, ३-शुद्ध भोजन॥ स्वाध्यायका कार्य ४ भागोंमें बाँटे-१-प्रवचन करना या सुनना, २-विद्यार्थियोंकी भांति कोई ग्रंथ पढ़ना, ३-तत्त्वचर्चा करना, ४-एकांतमें किसी ग्रन्थका स्वाध्याय करना।

ब्रह्मचर्यके लिये आजीवन ब्रह्मचर्य हो तो अच्छा, नहीं तो प्रति माह २५-२६-२७-२८-२९ दिन आदिको इस प्रकार ब्रह्मचर्यका संकल्प करके गृहस्थ पालन करे और इस संकल्पके पश्चात् भी यथाशक्ति आत्मवीर्य प्रकट करके अवशिष्ट दिनोंमें भी ब्रह्मचर्यकी उपासना करे। "ब्रह्मचर्यं परं तपः" इस सूक्तिका आदर करे। शुद्ध भोजन-ऐसा शुद्ध भोजन करे कि अचानक भी कोई व्रती आ जावे तो उन्हें भी आहार करा सके, नहीं तो दुहरे छन्नेसे छना हुआ जल-हाथ चक्कीका आटा-शोधे हुये दाल चावल-मर्यादाके अंदर छान कर गर्म किया हुआ दूध-मक्खन निकलने पर जल्दी तपाया गया घी इत्यादि रूपसे तो शुद्ध भोजन होना ही चाहिये। प्रमाद छोड़कर यथाशक्ति शुद्ध भोजन का ही यत्न करे अभक्ष्य न खावे।

भ्रमणमें स्वाध्याय ठीक नहीं हो पाता, इसमें एक कारण तो यह है-कि ग्रन्थोंका संग्रह तुरन्त नहीं मिलता और कहीं तो मिलता भी नहीं, और दूसरा कारण यह है कि अभी आये सो कुछ समय तो विकल्प और अन्य परिस्थितियोंमें चला गया तथा जब जाना है तब उससे पहिलेसे कुछ समय इसी प्रकार चला जाता।

ता० ५-३-५६

स्पर्शन व रसना इन्द्रियके विषय सेवन परिणामका नाम काम है और घ्राण चक्षु श्रोत्र इंद्रियके विषय सेवन परिणामका नाम भोग है। ये काम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ग्रोर भोग भावेन्द्रियके परिणमन है। भावेन्द्रिय ग्रात्माका विकारी भाव है। ग्रात्मा भावेन्द्रियके भोगको ही भोग सकता है, पर पदार्थका भोग नहीं कर सकता भावेन्द्रिय के भोगमें जो निमित्त मात्र हुग्रा उस पर पदार्थका भोग संसारमें प्रसिद्ध तो है किन्तु वह ग्रौपचारिक बात है।

सभी ग्रात्मा जो कुछ करते हैं ग्रपनेको करते हैं किसी भी द्रव्यका गुण पर्याय उस की निजके प्रदेशोंमें रहता है बाहर नहीं। हम ग्रपने से ग्रतिरिक्त ग्रन्यको कुछ भी नहीं कर सकते। बस ग्रब हमें करना ही क्या है ! ग्रानन्द है! विश्राम है !! शांति है।

जड़के पुजारियोंकी ग्रधिकता होनेसे धन ग्रथवा ग्रन्य वस्तुका त्याग जड़की उन्नतिके लिये होता है परन्तु ग्रात्मतत्त्वके पुजारियोंकी धन ग्रथवा ग्रन्य वस्तुका त्याग ज्ञानकी उन्नतिके लिये होता है।

ग्रपना काल स्वाध्याय में ग्रधिक बितावो, इससे विराम मिले तो पाठन व उपदेशमें समय बितावो, इससे विराम मिले तो तत्त्वचर्चामें समय बितावो, इससे विराम मिले तो ग्रशुभपयोग से वचनेके ग्रर्थ विविध योग्य ग्रनशन कायक्लेश ग्रादि तपमें समयको लगावो।

ता० ६–३–५६

पर्यायबुद्धि समस्त ग्रापत्तियोंका कारण है। सन्मान ग्रपमान, सुख दु:ख, इष्ट ग्रनिष्ट विकल्पोंकी ग्रापत्ति पर्याय बुद्धि कराती है। ग्रपनी वर्तमान परिस्थितिको पूरा सर्वस्व स्वयं समझना पर्यायबुद्धि है। वर्तमान परिस्थितिको गौण करके वर्तमान उपयोगके द्वारा त्रैकालिक चैतन्य स्वभाव में (मात्र चैतन्य स्वभावमें) तद्रूप स्वयंकोसमझना स्वबुद्धि है। स्वबुद्धि कषायमें नहीं लगने देती।

सुख दु:खको, पुण्य पापको, शुभ ग्रशुभ उपयोग को शुभ ग्रशुभ विकार को जिसने स्वभाव विरुद्ध एवं समान मान लिया है वह स्वभावमें शीघ्र प्रतिष्ठित हो सकता है।

स्नेह दु:ख है जो जितना स्नेह करता है वह उतना उस कालमें दु:खी है ग्रौर ग्रागे भी उसके वियोग होने पर वह उतना ग्रधिक दु:खी होगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिस पर अधिक स्नेह है जो अधिक प्यारा लगता है वह उतनाही अधिक दुर्दशाका निमित्त है बच्चोंको विद्या क्यों जल्दी याद हो जाती है इसलिये कि वे किसीके स्नेहके चक्करमें नहीं है। चिन्ता तृष्णाकी गांठ उनके नहीं है। छल कपट विश्वासघात आगामि भय आदि कलंक उनके नहीं आत्मा की भलाई निर्दोषतामें है। दोषका आदर मत करो। निर्दोष चैतन्य स्वभावकी आराधना करो। सच समझो—तुम्हारा सरल ध्रुव तुम ही हो।

जनरल कमेटी मुख्य कमेटी—बड़ी कमेटीको कहते हैं लोकमें। जनरल साधारण सामान्य ये एकार्थवाचक हैं। सामान्य ही मुमुक्षुवोंको मुख्य है, उसमें हित और बड़प्पन है।

ता० ७–३–५६

उल्टे सीधे पढ़नेमें एक तरह आनेवाले कुछ शब्द—

बाबा, चाचा, काका, नाना, दादा, मामा, हूहू, हाहा, कल्क, कालिका, नगेन, सुधासु, दर्द (दरद), कड़क, करक, पशुप, नशन, नातना, नलिन, नमन, कटक, मरम, नवजीवन, नयन, सरस, कनक।

ता० ८–३–५६

क्षेत्र माप

प्रदेश—एकपरमाणुरुद्ध क्षेत्र
उत्संज्ञा (अवसन्न)—अनंतानंतपरमाणु संघात परिमित क्षेत्र
संज्ञा (सन्नासन्न)—८ उत्संज्ञा
त्रुटिरेणु—८ संज्ञा
त्रसरेणु—८ त्रुटिरेणु
रथरेणु—८ त्रसरेणु
उत्तमभोगभूमिजनरकेशाग्रकोटी—८ रथरेणु
मध्यमभोगभूमिजनरकेशाग्रकोटी—८ उ० भो० के०
जघन्यभोगभूमिजनरकेशाग्रकोटी—८ म० भो० के०
कर्मभूमिजनरकेशाग्रकोटी—८ ज० भो० नरके०
लिक्षा—८ क० नरकेशाग्रकोटी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यूका—८ लिक्षा

यवमध्य—८ यूका

उत्सेधांगुल—८ यवमध्य

प्रमाणांगुल—५०० उत्सेधांगुल

आत्मांगुल—अपने अपने समयके नरोंका अंगुल

पाद—६ अंगुल

वितस्ति—२ पाद

हस्त—२ वितस्ति

किष्कु—२ हस्त

दण्ड (धनुष)—२ किष्कु

कोश (गव्यूत)—२ हजार धनुष (दण्ड)

योजन—४ गव्यूत (कोश)

राजू—असंख्यातासंख्यात योजन

श्रेणि—७ राजू

प्रतरलोक—७ राजू का वर्ग (७×७=४९)

सर्वलोक—७ राजूका घन (७×७×७=६३)

ता० ९-३-५६

कालप्रमाण

समय—अविभागी काल पर्याय

आवली—असंख्यात समय

उच्छ्वास—असंख्यात आवली

निश्वास—असंख्यात आवली

प्राण—एक उच्छ्वास व निश्वास

स्तोक—७ प्राण

लव—७ स्तोक

मुहूर्त— ७७ लव

दिनरात—३० मुहूर्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पक्ष—१५ दिनरात
मास—२ पक्ष
ऋतु—२ मास
अयन—३ ऋतु
संवत्सर (वर्ष)—२ अयन
पूर्वाङ्ग— ८४ लाख वर्ष
पूर्व—८४ लाख पूर्वांग
पर्वाङ्ग— ८४ लाख पूर्व
पर्व—८४ लाख पर्वाङ्ग
नयुतांग—८४ लाख पूर्व
नयुत—८४ लाख नयुतांग
कुमुदांग—८४ लाख नयुत
कुमुद— ८४ लाख कुमुदांग
पद्मांग—८४ लाख कुमुद
पद्म—८४ लाख पद्मांग
नलिनांग—८४ लाख पद्म
नलिन—८४ लाख नलिनांग
कमलांग—८४ लाख नलिन
कमल—८४ लाख कमलांग
तुटचांग— ८४ लाख कमल
तुटच—८४ लाख तुटचांग
अट्टांग—८४ लाख तुटच
अटट—८४ लाख अटटांग
अममांग—८४ लाख अटट
अमम— ८४ लाख अममांग
हूहू अंग— ८४ लाख अमम
हूहू—८४ लाख हूहू अंग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लतांग—८४ लाख हूहू

अच्छे कार्य करते समय प्रसन्न रहो, यदि पापका कार्य बन जावे तो उत्तरकालमें आत्मनिन्दा करते हुए भविष्यमें वह कार्य न हो ऐसा प्रयत्न करो, यही प्रायश्चित है।

ता० १०-३-५६

हमारा शत्रु हमारा विकल्प है। निर्विकल्प समाधि मित्र है। केवल ज्ञानमें सब विश्व जाननेमें आता है सो इस दृष्टिसे वह सारा विश्व केवल ज्ञानके एक कौने में समाया रहता है। इसी प्रकार आशारूपी गड्ढा इतना बड़ा है कि उसमें भी सारा विश्व समा जाता है और वहां भी आशामें एक कोनेमें पड़ा रहता है। 'अहो देखो तो इस मामले इस तृष्णालुने भगवानसे होड़ लगा डाली, मुंहजोरी कर रक्खी।

हे आत्मन्! इस भवमें जो श्रेष्ठ मन पाया है तो मनका उत्तम सदुपयोग करलो अन्यथा वह समय दूर नहीं है जबकि न जाने कौनसा अन्धकार सामने आ जावे।

आवो आवो अपने समीप निज चैतन्यज्योतिमें अपना विलास करो। बाहर घूमकर व्यर्थ क्यों क्लेश सहते हो।

विकल्पों में ही बने रहोगे तो यह अचूक अवसर चुका दोगे। अनादिसे अब तक क्या क्या नहीं हुए हो। इस भवको समझ लो कि पाया ही नहीं है और इसे निर्विकल्प समाधिमें लगा दो।

विकल्पोंका फल विषयोंमें फसना ही है। यदि निर्विकल्प के लिए विकल्प नहीं है। कफमें मक्खीका चलना फसनेके लिए ही है।

विकल्प स्वयं फसाव है और फिर जहाँ निर्विकल्पकत्वका लक्ष्य ही नहीं है वहां तो फसाव की परम्परा रहती है।

ता० ११-३-५६

प्रभुके ज्ञानमें तीन लोक व तीन कालके सब अर्थ यथास्थित आगए अर्थात् सब अर्थोंके जैसे आकाररूप ज्ञानवृत्ति हुई। इससे यह बात सुनिश्चित सिद्ध है कि जब जो जिस विधानसे जैसा होना प्रभुने जाना तब वह उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

विधानसे वैसा होता ही है। आत्माके विभाव पर्याय और पुद्गलके विभाव पर्याय निमित्तको पाकर होते हैं, होते हैं स्वयंके भावसे। अब यहां बात यह होगई कि जो विभाव पर्याय जिस निमित्त को पाकर होती है वह कार्यभी निश्चित है और उस निमित्त की उपस्थितिभी निश्चित है। यहां देखो निमित्त की अनुपस्थितिमें कार्य नहीं होता फिरभी निमित्त उपदानोंमें कुछ असर या सहायता नहीं करता।

निमित्त उपादानमें कुछ असर या सहायता आदि नहीं करता फिरभी निमित्तकी अनुपस्थिति में यह कार्य नहीं हुआ। इस विचित्र सम्बन्धकी समस्या का क्या हाल है। उपादान अपनी ऐसी योग्यतावाला है कि वह निमित्तको पाकर स्वयं अपने भावसे अपनी परिणति करता है, निमित्तका द्रव्य गुण पर्याय कुछभी नहीं ग्रहण करता, वह स्वयं परिणमता है व स्वयं परिणमता हुआ निमित्तकी अपेक्षा नहीं करता, फिरभी निमित्तको पाकर विभाव रूप परिणमता है। इसमें यह उपादानकी विशेषता योग्यता है ऐसा समझना। यह विशेषता निमित्तकी नहीं है। "बाह्येतरोपाधिसमग्रतेय कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः। नैवान्यथा मोक्षविधिश्चपुंसांतेनाभिवन्द्य स्त्वमृषिर्बुधानां॥

ता० १२-३-५६

(१) आत्मा अखंड है किन्तु उसका विलास अनंत है। (२) प्रत्येक आत्मा एक है उसकी सामर्थ्य एक है, वर्तमान पर्याय एक है। (३) आत्मा एक है, पदार्थका द्रव्यरूपमें भेद कल्पित नहीं होता। (४) भेदकल्पना सामर्थ्य और परिणमनमें की जा सकती है। (५) प्रत्येक आत्मा भेददृष्टिसे अनंत सामर्थ्यवाला है। (६) उन सामर्थ्यों में अनेक सामर्थ्य साधारण हैं और अनेक सामर्थ्य असाधारण हैं जो केवल आत्मद्रव्य में पाई जाती हैं। (७) उक्त सब सामर्थ्यों का नाम गुण अथवा शक्ति है। (८) प्रत्येक शक्ति स्वातिरिक्त अनंत शक्तियों से विशेषित है तभी वे शक्तियां सत्य याने सत्में होने वाली हो सकती हैं। (९) उक्त पद्धतिके कारण ज्ञान सूक्ष्म है, सुखावह है, परिणमनशील है, प्रमेय है इत्यादि रूपसे अनंत रूप है अतएव प्रत्येक गुण वर्तमान अनंतपर्यायरूप है। गुण भी पर्याय (भेद) है। (१०) अनंतपर्यायसमूह अनंत-

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर्यायस्वरूप द्रव्य एक अखंड है। (११) इस तरह एक आत्मद्रव्यमें अनंतगुण हैं। (१२) एक एक गुण अनन्त गुण रूप है। (१३) ऐसे उस एक एक भेद गुण में कालावच्छेदेन अनन्त पर्यायें हैं। १४–एक एक स्वकालमें अनंत अनंत अविभाग प्रतिच्छेद हैं। (१५) उस एक एक अविभाग प्रतिच्छेदमें अनंत अनंत रस है। (१६) उस एक एक रसमें अनंत अनंत प्रभाव हैं। (१७) यह एक एक प्रभाव विलासकी इकाई है। (१८) ऐसे ऐसे अनंतानंत विलासोंका अभेद-स्वरूप यह आत्मा एक अखंड है।

ता० १३–३–५६

अनुमतिविरति प्रतिमामें आहारके लिये कई श्रावक बन्धुओंका ले जानेको परस्पर कलह हो जानेसे सकल्पित क्षुल्लक व्रतका अभ्यास निर्विघ्न अच्छा चले यह भावना है। वस्तुतः मेरा कार्य परम शुद्ध निश्चयनयके विषय-भूत अखंड निज चित्सवरूपकी दृष्टि और स्थिरता करना ही होनेको पड़ा है। निश्चयतः मैं क्षुल्कक नहीं, त्यागी नहीं, व्यवहारिक नहीं, किसी आकारवाला नहीं, देह नहीं, जाति नहीं, कुल नहीं। सर्व पर पदार्थ और सर्व परभाव एवं सर्व स्वभावसे क्रमशः अत्यन्ताभाव, सहजभावाभाव, स्वलक्षणभाव होनेसे विविक्त हूं, चैतन्यमात्र हूं। मेरा नाम नहीं, मुझसे कोई व्यवहार नहीं करता, जिससे कोई व्यवहार करता वह मैं नहीं। बुरा मानना, हर्ष मानना, निन्दा समझना ये सभी पागलपन हैं।

कोई मेरी निन्दा नहीं करता वह अपनी ही निन्दा करता है। कोई मेरी प्रशंसा नहीं कर सकता वह अपनी ही प्रशंसा करता है। कोई मेरा अपमान नहीं करता वह अपना ही अपमान करता है। कोई मेरा सन्मान नहीं कर सकता वह अपना ही सन्मान करता है। कोई मुझपर प्रेम नहीं कर सकता वह अपना ही प्रेम करता है। कोई मुझपर द्वेष नहीं करता वह अपना ही द्वेष करता है। कोई मेरा सुख नहीं कर सकता वह अपना ही सुख करता है। कोई मेरा दुःख नहीं कर सकता वह अपना ही दुःख करता है। यह सब तो हुई विकल्पों की कथा। परमात्मा भी मेरा कुछ नहीं करता वह तो मेरा मात्र ज्ञाता है सो भी वह निजज्ञेयाकार का ज्ञाता है। मेरा ज्ञाता भगवान है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह उपचार कथन है। कुछ भी देखो सत्य देखो। सत्य देखोगे तो सत्य बनोगे। "सांच बराबर तप नहीं, झूट बराबर पाप, जाके हिरदै सांच है ताके हिरदै आप" इसका तात्पर्य है सत्यस्वभाव दृष्टि बराबर तप नहीं, अभूतार्थ-दृष्टि या पर्यायबुद्धि बराबर पाप नहीं, जिसकी दृष्टिमें सत्यस्वभाव है उसके आत्मा प्रत्यक्ष है।

ता० १४–३–५६

श्री सिद्ध क्षेत्र गिरनारे जी के आज दर्शन किये। जूनागढ़ व सहस्रा-म्रवन और गिरि के दृश्य से श्री नेमिनाथ भगवान का ऐतिहासिक वृत्त ठीक चित्त पर उतर जाता है। यद्यपि ८७ हजार वर्ष पहिले के वही निशान हों यह चाहे दुर्लक्ष्य हो या असंभव हो तथापि दर्शन करके चित्त स्वीकार जरूर कर लेता कि परम्परया निशान ये ही हैं। ऐसा दृश्य भी मन में समा जाता है कि श्री नेमिनाथ जी इस प्राचीन किले के पास से निकलकर पीछे के पैदल के रास्ते से सहस्राम्रवन में आये थे, दीक्षा तपस्या यहां की थी। निर्वाण भूमि भी अतिहृद्य है।

जिस समय अतीव उत्साह व सजी बरात के साथ जनसमूह था और अचानक वैराग्य की घटना घटित हुई उस समय बड़ी खलबली नाना प्रकार की जनता में मच गई होगी और उसी समय से गिरिराज की महिमा चली और राजुल के वैराग्य की घटना से तो लोक चालना में महिमा सवाई हो गई होगी।

धन्य वह वैराग्यवासित चित्त जहां काम पर इतनी महत्वपूर्ण विजय हो।

धन्य वह बालपन जिसमें यथाजातरूप होकर लौकिक और अलौकिक बालपन का समावेश हुआ॥ धन्य वह मोक्षमार्गी कुटुम्ब जहां सगाई के निर्धारित पति पत्नी, भाई भतीजे भाई के पौत्र आदि तपस्या द्वारा आत्म कृपा के कार्य में सहज उदासीनता से लग रहे हों॥ धन्य वह उपयोग जो इन मांगलिक परका विषय मात्र पाकर विरक्ति की ओर उन्मुख हो रहा है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ता० १५-३-५६

सर्व प्रथम "मैं एकाकी हूं-सुख दुखमें पुण्य पापमें संसार मोक्षमें जीवन मरणमें सर्वत्र अकेला हूं" इस श्रद्धाका होना आवश्यक है। इसके बिना मिथ्यात्वबंधनके नाशके उपाय करने की भी पात्रता नहीं आ सकती। यह श्रद्धा मिथ्यात्व की मंदतामें हो सकती॥ पुनः आगे चलकर सूक्ष्म व्यवहार पक्षका भी प्रतिषेध होकर निश्चय पक्षका अवलंबन होता है, पश्चात् निश्चय पक्षका भी अवलंबन छूटकर पक्षरहित स्वानुभूतिसहित अनाकुल स्वादका वेदन होता है।

जेती उपशमत कषाया, तेता ही त्याग बताया। इस नीतिके विरुद्ध अर्थात् कषाय रहते हुएभी कषायवश यदि कोई त्याग कर बैठे तो उस त्याग कषाय की विडम्बना होती रहती है।

त्याग कषायके मूल भी चार कषायें हो सकती है।

(१) घर या मित्रमंडली में कोई कलह उत्पन्न होने पर मेरे त्यागी हो जानेसे इनको पछताना हो जावेगा इत्यादि बुद्धिसे गृह आदि जड़ पदार्थोंके त्याग कर देनेको 'क्रोधका त्याग कहते हैं।

(२) अन्य त्यागी लोगों की प्रतिष्ठा पूजा आदि देखकर वैसी बात को अपने प्रति कराने के भावसे सम्मानकी चाहसे गृह आदि जड़ पदार्थोंके त्याग कर देनेको मानकृत त्याग कहते हैं, अथवा मेरा लोग इतना सम्मान करते हैं उससे प्रेरित होकर गृहादिक के त्याग कर देनेको मानकृत त्याग कहते हैं।

(३) पौजीशन के काबिल परिस्थिति होने पर त्याग कर देना ही एक मार्ग है इस विचारसे गृह आदि जड़ अर्थोंका त्याग कर देना और येन केन प्रकारेण त्यागकी व्यक्त प्रवृत्तियोंको करना मायाकृत त्याग है।

(४) भोजन सुविधा आराम आदि के लोभसे गृहादि वस्तुओंके त्याग कर देनेको लोभकृत त्याग कहते हैं।

कषायोपशम के अनुसार त्याग होनेमें समताशांतिका भंग नहीं होता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ता० १६–३–५६

मैं चैतन्यस्वभावी ध्रुव तत्त्व हूँ, वर्तमान पर्यायमात्र नहीं हूँ। वर्तमानतो केवल वर्तमान क्षणमात्रके लिये हैं, द्वितीय क्षणमें द्वितीय वर्तमान हो जाता है। जो तुम्हारे वर्तमान परिणमन चल रहा है उसकी रुचि मत करो क्योंकि वर्तमान परिणामकी रुचि आर्त या रौद्रध्यानकी जननी है। वर्तमान परिणामकी रुचिसे या तो हर्षकी विह्वलता होगी या विशादकी विह्वलता होगी। वर्तमान परिणामतो सबके होता है किन्तु जो उसमें रुचि रखते हैं उनके धर्मध्यान व शुक्लध्यान नहीं होता।

हे निज चेतन प्रभो ! जो तेरे वर्तमान हो रहा है वह लक्ष्य या उपादेय नहीं है किन्तु प्रतिषेध्य है। अपने किसीभी वर्तमानको निज मत जान भला मत मान। जो वर्तमान भलाई करने वाला होगा उस समय भले बुरेकी कल्पना की भी नहीं।

हे निज नाथ ! प्रसन्न होओ, बाह्यकी ओर दृष्टि न दे। तेरे सहज स्वरूपमें देखा गया आत्मा तेरा प्रभु है–रक्षक है, उसकी उपासना करके अपनी सर्वार्थसिद्धिको पा। तेरा शत्रु तेरा विकल्प है–विकल्पको हेय जानकर स्वभाव-दृष्टिसे निर्विकल्प समाधिके उन्मुख होओ तो तू सत्य है–सन्मार्गगामी है–शत्रु-जीत एवं सर्वजीत है।

ता० १७–३–५६

जगतके प्रत्येक द्रव्यका परिणमन उसके खुदके चतुष्टय से होता है। तू परका अधिकारी नहीं है फिर परके कुछ बदलनेका भाव या परकी कोई बात न रुचनेका भी भाव तेरा मुर्खपना नहीं तो और क्या है ?

रे आत्मन् ! यदि तूने कुछ योग्यता आज पाई तो अन्य को तुच्छ मानकर न चल, अन्यथा कुछ ही समय बाद उल्टी बात हो जावेगी। तुम उससे तुच्छ रह सकते हो। रे आत्मन ! तूने यदि कुछ प्रभुता पाई तो दूसरोंके दारिद्रयपर अनुदारचित्त मत बन, अन्यथा कुछ ही समय बाद उल्टी बात हो जावेगी।

यदि आत्माको अव्यग्र रखनेकी अभिलाषा है तब—(१) पर पदार्थों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के साथ सम्पर्क न करो (२) किसीसे व्यर्थ पत्र व्यवहार न करो (३) और न किसीसे व्यर्थ बात करो (४) मन्दिरजीमें एकाकी जाओ (५) किसी दानीकी मर्यादासे अधिक प्रशंसा कर चारण बननेकी चेष्टा मत करो, दान जो करेगा सो अपनी आत्माके हितकी दृष्टिसे करेगा, हम उसके गुणगान करें सो क्यों ? गुणगानसे यह तात्पर्य है कि आप उसे प्रसन्न कर अपनी प्रशंसा चाहते हो। इसका यह अर्थ नहीं कि निन्दा करो उदासीन बनो।

रे आत्मन ! यदि तेरे कुछ धनादिका समागम हुआ है तो तू निर्धनों की तुष्टिकी सीमाका लेखा जोखा मनमें न रखाकर, अन्यथा कुछही समय बाद उल्टी बात हो जावेगी।

रे आत्मन् ! यदि तेरे भक्त, मित्र, आदरकर्ता अधिक हों गये हैं तो तू अपने सेवकोंको प्रेमशून्य व्यवहारमें मत रख, अन्यथा कुछ समय बाद उल्टी बात हो जावेगी।

रे आत्मन् ! दूसरोंकी यदि कुछ हीन दशा है तो वह हीन दशा मिटकर तुमसेभी उच्च हो सकती है अतः बाह्यकी प्रमुखता न रखकर सबको समान भावसे देख, अन्यथा कुछ समय बाद उल्टी बात हो जावेगी।

रे आत्मन् ! दूसरोंको कुछ उपदेश देनेसे पहले अपने आपको वैसा बना, जैसा दूसरोंको कहना चाहता है वैसी अन्तर्वृत्ति कुछ कुछ तो बनायाही कर, अन्यथा कुछ समय बाद उल्टी बात हो जावेगी। तू सुनेगा और वक्ता तुझे ललकारेंगे।

ता० १८–३–५६

प्रमाण ज्ञेय प्रतिबिम्बरूप है और नय अभिप्रायरूप है। शब्दोंके द्वारा प्रमाण नहीं बताया जाता किन्तु किसी धर्मको मुख्य करके कहे गये शब्दके व्याजसे अभेद वस्तुके जानन द्वारा प्रमाण–ज्ञान हो जाता है। शब्द जितने होते हैं वे अर्थकी अपेक्षा नयप्रतिपादक वचन हैं किन्तु वक्ता व श्रोता अभेद वस्तुका ग्रहण कर लेते हैं तो वही वाक्य प्रमाणरूप है और यदि वाच्य धर्मको ही ग्रहण करते हैं तो वही वाक्य नयरूप है। तथा अनुक्त धर्मोंको प्रतिषेधरूप संस्कारको रखकर वाच्य धर्मको ही ग्रहण किया जावे तो वही वाक्य दुर्नयरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है। तथा अनुक्त धर्मोंके अस्तित्वकी स्वीकारताको रखकर वाक्यधर्मको ही ग्रहण किया जावे तो वही वाक्य सुनयरूप है। सामान्यतया उन सभीको ज्ञान कहते हैं सो ज्ञानका प्रमाणरूप होना, नयरूप होना, दुर्नयरूप होना, सुनयरूप होना; यह सब ज्ञानकी बलिहार है। शब्दोंसे यह व्यवस्था नहीं बन पाती पुनरपि शब्द विन्यास बिना कुछ भी प्रतिपादकतारूप व्यवहार नहीं बन पाता।

शब्दोंसे भंग तो वही है किन्तु जहां उक्त अनुक्तके अभेदकी वृत्तिकी कला है वह तो प्रमाण है और जहां भेदवृत्तिकी कला है वह नयरूप है। नयोंका विशद परिज्ञान करना पहिले अत्यावश्यक है। क्योंकि पदार्थोंका जैसा स्वरूप है वैसा ज्ञान करानेको नय निमित्तभूत हैं। नयोंका फल प्रमाण है, प्रमाणके पूर्वरूप नय हैं। नयोंका परिज्ञान न होनेसे श्रोता कलुष आशय वाले हो जाते हैं और प्रवक्ता जैनधर्मका विरूपक द्रोही हो जाता है।

ता० १९–३–५६

निर्विकल्प समाधिही एक कल्याण है। इसके अभावमें विकल्प शत्रुओं का आक्रमण बना रहता है। विकल्प शत्रुके आक्रमण का मूल विकारकी रुचि है। विकारकी रुचिका कारण निर्विकर स्वभावका अपरिचय है। अतः कल्याण के अर्थ नयोंके विवरणकी यथार्थता समझ करके निज निर्विकार अनादि अनंत चैतन्य स्वभाव का परिचय कर लेना चाहिये।

भगवान हो जाना स्वभावावलंबनका उत्कृष्ट फल है। भगवान का कोई नाम नहीं है। जो परमात्मा है अर्थात् उत्कृष्ट ज्ञानलक्ष्मीकरि युक्त आत्मा है वही भगवान है। जो भग कहिये उत्कृष्ट स्वधीन निर्मल ऐश्वर्यवाला है वही भगवान है।

ज्ञानके विविध लक्षण—भूतार्थप्रकाशकं ज्ञानम्। तत्त्वार्थोपलम्भकं ज्ञानम्। बहिर्मुखचित्प्रकाशो ज्ञानम्। यो यथावस्थितोऽर्थस्तस्य तथा ज्ञानं सम्यग्ज्ञानम्। ज्ञेयावभासनं ज्ञानम्। साकारोपयोगो ज्ञानम्। अर्थ विकल्पो ज्ञानम्। ज्ञेयप्रतिबिम्बरूपो ज्ञानम्। सकलादेशो ज्ञानम्। आदि।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ता० २०–३–५६

प्रकाशवृत्तिदर्शनम् । अन्तर्मुखचित्प्रकाशो दर्शनम् । जं सामण्णं ग्रहणं भावाणं णेध कट्ठुमायारं अविसेसदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णये समये । निराकारोपयोगी दर्शनम् आदि । संयमके कुछ लक्षण प्रवृत्तिपूर्वकविषय निरोधः-संयमः । आत्मनि सम्यक् यमनं संयमः ।

ता० २१–३–५६

सम्यक्त्वके विविध लक्षण—तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् । विविक्तात्मरुचिः सम्यग्दर्शनम् । निजशुद्धात्मरुचिः सम्यग्दर्शनम् । भूतोर्थे तत्त्वावगमः सम्यग्दर्शनम् । तत्त्वरुचिः सम्यग्दर्शनम् । प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्ति लक्षणं सम्यग्दर्शनम् । दर्शनविषयप्रतीतिः सम्यग्दर्शनम् ।

ता० २२–३–५६

मन वचन कायके निमित्तसे जो आत्मप्रदेशपरिस्पंद है वह योग है किन्तु मन वचन कायके निमित्त बिना अपने अवयवों द्वारा जो परिस्पंद है वह योग नहीं है । यह अयोग दो प्रकारका है--१–स्वस्थिनप्रदेशाजह, २–स्वस्थित प्रदेशजहां ये क्रमसे १४वें गुण स्थान व मुक्तिके लिये होनेवाली अविग्रहगतिमें होती है । सिद्ध क्षेत्रमें परिस्पन्दाभावरूप अयोग होता है ।

मात्र एकत्वका ग्रहण करनेवाले भूतार्थनयकी दृष्टिसे चाहे आत्माको देखो अथवा अनात्माको । उस समय स्वभावमात्र की दृष्टि हो जानेसे सामान्य-ग्रहणरूप उपयोगके निकट पहुँच जाता है और भूतार्थनयकी दृष्टिसे भी छूटकर सामान्यग्रहण रह जाता है । जो कि आत्मप्रकाशवृत्तिरूप हो जाता है इससे स्वानुभूति हो सकती है अतः भूतार्थनयसे तत्त्वका जानना सम्यक्त्वका कारण है ।

आत्माका सद्भावना तो मित्र है और दुर्भावना शत्रु है । किसी अन्य आत्माको अपना शत्रु मित्र मानना अज्ञान है ।

प्रत्येक पदार्थ अपने परिणमनसे परिणमता है । यदि कोई आत्मा तुम्हारी इच्छाके सदृश्य परिणम गया तो इसमें यह न सोचा कि इसने मेरा भला किया क्योंकि तथ्य तो यह है कि उसने अपना काम किया तुमने अपना काम किया ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यदि कोई तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध चेष्टा करता है तो इसमें यह न सोच कि यह मेरा बुरा कर रहा है क्योंकि तथ्य तो यह है, उसने अपना काम किया तुमने अपना काम किया।

ता० २३–३–५६

अनादिमिथ्यादृष्टि जीवको प्रथमोपशमसम्यक्त्व उत्पन्न होने पर यह नियम नहीं है कि उस सम्यक्त्वके बाद मिथ्यात्व आवे ही आवे। इसके प्रमाण ये हैं—धवला ७ पुस्तक पृष्ठ २३२, धवला ५ पुस्तक पृष्ठ ११–१२–१४–१५–१६–१९। १९ पेज पर अनादि मिथ्यात्व के बाद प्राप्त उपशकसम्यक्त्वके बाद ही वेदकसम्यक्त्व प्राप्त कर लेनेका स्पष्टीकरण है।

अनादि मिथ्यात्वके अनतर भी सम्यक्त्वके साथ संयमासंयम या संयम हो सकता है। धवला पुस्तक ५ पृष्ठ १५-१६ में भी ऐसा ही लिखा है।

जब तक निर्विकल्प अवस्था नहीं हुई उससे पहिले का समय मनवाले भवमें एक एक क्षण अमूल्य है। निर्विकल्प अवस्थामें तो समयकी अमूल्यता जाननेका अवकाश ही नहीं, वहां तो फल ही फल है, अनुपम है वह स्थिति। वर्तमान समयको बड़ा कीमती समझो प्रमादनें कषायमें विषयमें या निदानमें जो क्षण व्यतीत हुआ या हो उसका खेद मानो, फूलो मत।

देखो कुछ भी जानो भूतार्थदृष्टिसे जानो, मानो। ऊधम मत मचाओ। मनको बेलगाम मत करो, मर्मरूपी पिशाच तेरे लग रहा है व लग जावेगा। यद्यपि कर्म अपनी ही परिणतिको करता है फिर भी तुम उसके सन्मुख खुदही कमजोर होकर दुष्फल पावोगे।

२-३ दिनसे भाई पन्नालालजी उमाभाई अहमदाबाद कई समय आते हैं बहुत भद्र कल्यार्थी हैं इनको करीब १०-१५ वर्षसे दिगम्बर जैन धर्ममें रुचि हुई है और अब ये बहुत ही दृढ़ श्रद्धानी हैं, इनका धर्म ज्ञान भी सम्यक् है।

अपने आप सहायक हो, कोई न सुख दुख दाता है।
अच्छा बुरा करेगा प्राणी वैसा ही फल पाता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ता० २९-३-५६

आत्माकी सब संसार अवस्थाओं में मनुष्य की अवस्था उत्तम है, यदि इस भव का सत् उपयोग कर लेवे। सदुपयोग यह है कि आत्मा के धर्म में श्रद्धा हो और उस पर आचरण हो। इसके लिए सबसे पहिले साधारण पात्रता तो चाहिए ही चाहिये। उस पात्रता के लाने के लिये पहिले ऐसा हृदय तो बना ही लेवे किसी जीव के प्रति अहित करने का भाव न रहे किसी को अपना दुश्मन न माने। इसका उपाय यह है कि वह अपने वचनों का नियन्त्रण रखे। जब वचन बोले मधुर वचन कहे। कपट रखकर न करे। यह बात तो कुछ जबर्दस्ती भी बताई जा सकती है।

वचनवाण शस्त्रबाण से भी तीक्ष्णधार वाला है। जो वचनबाण मुख धनुष से छूट गया वचनबाण वापिस तो नहीं आ सकता। वचनबाण छूटने से पहिले वह तुम्हारे वश में है। छूटने के बाद तुम अन्य के वश हो जावोगे अर्थात् विकल्पों के जाल बन जाओगे। देखो तो समानता-शस्त्रबाण छूटने के लिए पहिले आश्रयभूत धनुष जैसा पसर जाता है वैसे वचनबाण छूटने से पहिले आश्रयभूत मुख भी कैसा पसर जाता।

ता० ३०-३-५६

कभी उपयोग नहीं लगता तो लिखने का प्रयत्न करता हूं सो उस समय कोई विषय सन्मुख न होने से यह अभिप्राय होता है कि क्या लिखूं सच है जबर्दस्ती कोई काम नहीं होता। होने को होता है तो अनुकूलता पाकर होता है। विकल्प ज्ञान व चारित्र के परिणमन से बना वह कहीं २ गुण का परिणमन नहीं है। यद्यपि ज्ञान जाननामात्र है फिर भी इत्या कारण जानना यही तो विकल्प का ढांचा है अथवा ज्ञान तो जानन का ही काम करता है उसके साथ राग द्वेष की जो तरंग है वह विकल्प चारित्रगुण की विकृत पर्याय है। इसकी समझ ज्ञान पर्याय में है। ज्ञान का ज्ञेयाकार होने को मान भी विकल्प है उसका यही प्रसंगवश नहीं।

परकी ओर दृष्टि में लगना ही विपत्ति है, आत्मा ने न कभी दूसरे को देखा जाना न कभी दूसरे को कभी कुछ किया। मात्र जब तक दूसरे को

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखने जाननेकी व दूसरे को करने की मान्यता रखता है तब तक तो दुखी है और जब इस मिथ्याभिनिवेश को दूर करके उक्त सही मान्यता करके पक्ष बुद्धियों का व्यय करता हुआ स्वभावानुरूप उपयोग करता है तब सुखी है।

ता० ३१—३—५५

अहमदाबाद गोमतीपुर आज एक वैष्णव भाई ने सभा में अनुरागवश श्रोताओं को व्यंग में समझाया जो भाई सभा में आये मानों वे महाराज के अविश्वासी हैं और जो नहीं आये वे महाराज के पक्के विश्वासी है उन्हें विश्वासी है कि महाराज जो कुछ कहेंगे वो सब ठीक ही कहेंगे उसमें रंच भी गलती न होगी तो आने की जरूरत ही न समझी अतः महाराज के पक्के विश्वासी वे हैं जो आये नहीं आदि। सूझ विनोद के योग्य है।

सभा में जो २५-५० भाई अजैन आते हैं उन्है ज्ञान के प्रति उत्तम रूचि है और जैनों की संख्या उनकी संख्याके अनुरूप न समझकर तत्वज्ञानके अनुराग वश ऐसा कह गये।

आशा ही दुःख है और आशा का अभाव ही सुख है, नैराश्यामृतका अनुभवपान ही परम आनन्द का जनक है। आशा का अभाव नैराश्य निज-स्वभाव की दृष्टि से होता है। आशा रहितं परिपूर्ण विशुद्ध परमात्मदेव के ध्यान में भी आशा समूल नष्ट नहीं हो सकती, क्योंकि प्रथमतो वह अनुराग-मूलक भक्तिवृत्ति है दूसरे परमात्मा पर पदार्थ है। एतद्विषयक उपयोग अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं होता किन्तु स्वतोस्व ही है। स्वभावति के लिए अनुराग की प्रेरणा नहीं है अतः आशा का अभाव आशारहित ध्रुव सहजसिद्ध निजस्वभाव के अवलंबन से होता है परन्तु निरंतर स्वभाववृत्ति बनावे तव। अन्यथा थोड़े काल स्वभाव दृष्टि रही और फिर च्युत हो जावे तब वहां भी समझना कि आशा संस्कार में थी फिर विकास हो गया। लेकिन वह अभ्यास अवश्य आशा के समूल नाश का उपाय है।

ता० १—४—५६

अहमदाबाद शाहपुर— आज श्रीमद्राजचन्द्र विद्याशाला में प्रवचन हुआ, कुछ अतिरेकभक्ति वालों का दृश्य देखा। श्री मद्राजचन्द्रकृत "अपूर्व

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अवसर" आदि भजन पर प्रवचन था। उनके इस भजन में शुरू से अन्त तक बाह्य संयम में नग्न दिगम्बर को उत्तम कहा। एक पद में नग्न भाव मुण्डभाव सह अस्नानता आदि में तो स्पष्ट नग्नता का उल्लेख किया। श्रीमद्राजचन्द्र के जीवन चरित्र व साहित्य को देखकर मुझे बहुत वर्षों पहिले से श्रीमद् के प्रति अनुराग है। उनकी सद्‌भावना को समझकर उनकी निर्मलता के प्रति आदरभाव है। यहां भी अनेक लोगों को आदरभाव है किन्तु देव शास्त्र गुरु का सत्य श्रद्वान् प्रत्येक कल्याणार्थी को होना चाहिये। श्रीमद् के अतिरेक भक्तों के प्रति प्रवचन में यह सुझाव दिया कि श्रीमद् की सेवा उनकी आज्ञा मानने में है। उनकी आज्ञा है कि सद् देव सत् शास्त्र सद् गुरु की पहिचान करो। उन्होंने गुरु का लक्षण इसी पद्य में कहा है। श्रीमद्राजचन्द्र के फोटो के सामने खड़े होकर या बैठकर या स्वाध्याय के बीचों बीच देखकर यह भाव करो कि श्रीमद्राचन्द्र यद्यपि साधु नहीं थे प्रतिमाधारी श्रावक भी नहीं थे तथापि उनकी आत्मनिर्मलता कितनी विशेष थी कि उन्हें परदृष्टि परचर्चा सुहाती भी न थी नीति, आत्मभावना की वृद्धि रहती थी, ऐसा सोचते हुए अपने आप में स्वभावदृष्टि का उत्साह बढ़ावो। उनको सद्गुरु मानना और झुककर नमस्कार करना। उनहीं के वचकों की अवहेलना है।

ता० २-४-५६

श्रीमद्राजचंद्र ने अपने जीवनकाल में किसी को इस प्रकार की इजाजत नहीं दी और न कराया। श्रीमद्राजचंद्र की बात मानो सम्यक्त्व को जगावो और सम्यक्त्व में दूषण न लगावो। अभी एक भाई तो इतना गजब कर गये कि श्रीमद् के फोटो के पास जो एक सेठ का फोटो लगा है उसके जूते को छूकर नमस्कार कर गये। अपने आत्मा का मूल्य समझो। श्रीमद्राजचंद्र उपकारी जीव हुए परन्तु जैसा उन्होंने बताया वैसा मानो, यही उनकी सच्ची सेवा है। भैया उनकी सच्ची सेवा यह होगी कि इस शाला में घन्टे आध घन्टे बैठकर नियमित स्वाध्याय करें व घन्टे आध घन्टे पठन पाठन व तत्त्वचर्चा द्वारा अपने ज्ञान को बढ़ावें और यथाशक्ति संयम द्वारा अपने को निर्मल बनावें। समस्त पक्ष को छोड़कर आत्मा को आत्मा मानें एक मात्र आत्मपक्ष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहे, आत्मा का जैसा स्वरूप है उस प्रकार अपने आपको चलावें।

वस्तुतः तो कोई किसी का आदर नहीं करता, भक्ति सेवा नहीं करता। अपनी ही भक्ति और अपनी ही सेवा करना प्रत्येक परके सम्बन्ध में कुछ भी सोचे वह सोचनारूप कार्य खुद ही का परिणमन तो है। जैसा सोचता है वैसा परिणमन कुछ अंशों में होता है उसका अनुभवन सोचनेवाला करता है परका अनुभवनकोई पर कर ही नहीं सकता जब खुद का ही अनुभव होता है तो कुछ उस खुद का निज स्वभाव भी तो जान लेना चाहिये। अपने मर्म को समझिये और औरो के ज्ञान बृद्धि में सहायक होइये। हमारी आप सब भाइयों के प्रति सद्भावना है।

ता० ३–४–५६

निमित्त को पाकर उपादान विभाव परिणमन करता है किन्तु वह व्यवस्था इस प्रकार है उपादान निमित्त को पाकर अपनी योग्यता के अनुकूल अपने चतुष्टयसे विभावरूप परिणमता है। निमित्त को पाकर परिणम जाता यह निमित्त का स्वभाव नहीं कार्य नहीं किन्तु उपादान का स्वभाव है कार्य है उपादान का ही ऐसा स्वभाव है कि वह मलिन हो तो अपनी योग्यतानुसार अपना असर प्रकट कर लेता निमित्त को पाकर। ऐसा नहीं है कि निमित्त परिणमा देता है और ऐसी भी नहीं है कि उपादान को जब जिस विभावरूप परिणमता परिणमा है उस समय जो सामने पड़ जाय उसपर निमित्त का आरोप होता है। यदि ऐसा है तो सामने अनेक पड़े हैं किसी एक को निमित्त क्यों कहा जावे। यदि कहो तो अनुकूल है वह निमित्त है तो यही अनुकूल कहा जावे अन्य नहीं इसका कारण

ता० ४–४–५६

सर्वज्ञदेवने समस्तद्रव्य समस्तपर्यायों सहित जाने हैं तब जो होना है सो होना ही है और उस समय निमित्त भी हाजिर रहेगा यह बात भी ठीक है इसका स्पष्ट उत्तर यह समझो कि जब जिस जिस विधान से जो होना है सो होगा उसे सर्वज्ञने जाना। द्रव्यसे पर्याय तो प्रकट होती हैं परन्तु द्रव्यमें सदा एक ही पर्याय रहती है उसमें भविष्यकी पर्यायें भरी हुई नहीं रहतीं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणतियों रूप परिणमनेकी शक्ति है। मलिन आत्मा आगे किस रूप परिणम जावे यह द्रव्य में पहिले बंधा हुआ नहीं है, वह निमित्तको पाकर विभाव परिणामसे विकसित होता है। ऐसा होने पर भी उपादान और निमित्त अपने अपने कार्यके लिये बिल्कुल स्वतंत्र है।

आत्मानंदार्थीको यह श्रद्धान पक्व रहना चाहिये—कि मैं कुछ करता हूं तो अपनेको ही करता हूं, कुछ भोगता हूं तो अपनेको ही भोगता हूं। पर-द्रव्यको परमाणुमात्रको भी मैं कर नहीं सकता—और न पर द्रव्यको कभी लेशमात्र भी भोग सकता। मेरी क्रिया व मेरा भोग मेरे चतुष्टयसे मेरे चतुष्टयमें है। इसी प्रकार सभी प्राणियोंकी बात है कि प्रत्येक द्रव्य कुछ करताहै तो अपनेको ही करता है और कुछ भोगता है तो अपनेको ही भोगता है। तब जैसे मैं अन्य द्रव्यका कर्ता भोक्ता नहीं वैसे अन्य द्रव्य भी मेरे कर्त्ता भोक्ता नहीं है। प्रत्येक द्रव्य स्वमें तंत्र है, परके चतुष्टयसे अत्यन्त विविक्त होनेसे इंच भी परके तन्त्र नहीं है।

ता० ५–४–५६

जिसको कल्याणकी वाञ्छा है वह इन तीन बातोंका शक्ति न छुपाकर पालन करता रहे—१. स्वाध्याय। २. ब्रह्मचर्य। ३. शुद्ध भोजन। स्वाध्याय ४ भागोंमें बांटें—१. प्रवचन सुनना या करना। २. विद्यार्थीकी भांति कोई ग्रन्थ पढ़ना। ३. तत्त्व चर्चा करना। ४. एकान्त में किसी ग्रन्थकां स्वाध्याय करना।

ब्रह्मचर्य पालनके लिये यदि आजीवन ब्रह्मचर्य लेवें सो बहुत ही उत्तम है। यदि कमजोर बने तो प्रतिमाह २५-२६-२७-२८-२९ दिन आदि इस प्रकार से ब्रह्मचर्य का संकल्प करके गृहस्थ पालन करे तथा इस संकल्पके पश्चात् भी यथाशक्ति आत्मवीर्य प्रकट करके अवशिष्ठ दिनोंमें भी ब्रह्मचर्य की उपासना करे। ब्रह्मचर्यं परं तपः इस शक्ति का आदर करे।

शुद्ध भोजन, ऐसा भोजन करे कि अचानक भी कोई व्रती आ जावे तो उन्हें भी वह आहार करा सके। इतना न हो तो कम से कम इतना तो करे ही करे—दुहरे छन्नेसे छना हुआ जल, हाथ चक्कीका आटा, शोधे हुए दाल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चांवल, मर्यादाके अन्दर छानकर गर्म किया हुआ दूध, तुरन्त तपाया गया घी याने मक्खन निकलने पर पौन घन्टाके अन्दर तपाया गया घी। इत्यादि रूपसे शुद्ध भोजन होना ही चाहिये।

भ्रमणमें स्वाध्याय ठीक नहीं हो सकता इसमें एक कारण तो यह है कि ग्रन्थोंका संग्रह तुरन्त नहीं मिलता और कहीं तो मिलताही नहीं और दूसरा कारण यह है कि अभी आयें सो कुछ समय शेष विकल्प में और परिस्थितिमें चला जाता और जाना है उनसे पहिलेसे कुछ समय इसी प्रकार चला जाता है।

ता० ६–४, ५६ कलोल

आज हमारा ऐसा परिणाम हुआ है कि आजीवन निम्नप्रकार जो नियम पालन करे उसके हाथ का भोजन लेना। यद्यपि प्रायः ऐसाही होता था तथापि कुछ अपेक्षाकृत छोटीसी कमी कर देनेवाले भी मिल जाते थे। सो अब विधिविधानसे ऐसा हो तो और उत्तम।

१. मद्यत्याग, २. मांस त्याग, ३. मधुत्याग ४. उदम्बरफल गोभीफूल का त्याग, ५. परस्त्री व वेश्या सेवन शिकार का त्याग, ६. पेय फल व औषधि के अतिरिक्त रात्रिको सब वस्तुओं खाने पीने का त्याग ८. प्रतिदिन कुछ समय प्रभुभक्ति व स्वाध्याय करना।

आत्मदृष्टि इतनी दृढ़ हो जाना चाहिये कि कदाचित् सर्प भी काटने आ रहा हो और ज्ञानमें आ जावे तब भी यह मुझे काटे नहीं याने शरीर को डसे नहीं, शरीरसे वियोग न हो मुझे अभी और धर्म साधना है। आदि विकल्प न हो। ऐसी स्वात्मदृष्टि अवश्य आत्मा का उद्धार करती। ऐसी आत्मदृष्टि दृढ़ करनेके अर्थ अभीसे अभीक्षण या बहुत आत्मज्ञानोपयोग रहना चाहिये। किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या॥ विद्याधनं सर्वधनं प्रधानम्॥ विद्या आत्मविद्या है।

आज कलोलमें प्रवचनके बाद धर्मशिक्षा सदन की स्कीम रखी जो सबने स्वीकारकी, कुछ योजना बनी। कल इसका उद्घाटन होगा। इसका श्रेय श्री सोमचन्दजी भाई को है। ये भाई अच्छे पंडित और सरल मनुष्य हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ता० ७-४-५६

आत्मामें अशुभोपयोग न आवे यही बात हो जावे यही बड़ी बात है इसके अर्थ निज विशुद्ध चैतन्यस्वरूप व परमात्मस्वरूप एवं श्रमणस्वरूप पर दृष्टि रहना चाहिये। मैं चैतन्य मात्र हूँ, मेरा अन्य कुछ भी नहीं है, यही भी तो मेरा नहीं जिस विकल्प और परिणति पर इतराते रहते हैं अविवेक अन्धकार का प्रारम्भ तो यहींसे है। जो स्वभाव विभाव का विवेक न हो और विभावसे दृष्टि हटकर स्वभावकी ओर न रहे, विभाव ही जिनकी दृष्टिमें उनका सर्वस्व है उनके लिये शिवमार्ग नहीं है, विपत्ति के गड्ढेमें ही सड़ना बदा है।

परवस्तुके जाननेसे बुराई नहीं है, निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध जाननेसे बुराई नहीं है, बुराई है एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ कर्ताकर्मसम्बन्ध माननेमें। निमित्तनैमित्तिकसम्बन्धके विरोधकी महिमा नहीं होती किन्तु महिमा द्रव्यकी स्वतन्त्रताकी दृष्टिकी है। जिनकी दृष्टि निर्मल है निष्पक्ष है वे सब कुछ जानते हुए भी स्वभावावलंवनसे च्युत नहीं होते। जिन्हें यथार्थ ज्ञान हुआ है उनकी सर्व विपत्तियां शान्त हो गई। जिन्हें यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ वे अपनी बुद्धिके अनुसार सुखके अर्थ यथा तथा कल्पनायें करके विह्वल होते रहते है, और जब अपने आपमें आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते तो अपनेको मैं अमुकका जीव हूं अथवा तीर्थंकरसे ज्ञानकिरणें जैसे भगवानकुंदकुंदको मिली वैसे उनसे श्री अमृतचन्द्र सूरिको मिलीं और अमृतचंद्र सूरिसे हममें किरणें घुस गई अथवा मैं ही सद्गुरुदेव हूं आदि सदृश सरीखी बातोंकी प्रसिद्धि करवाकर जीवन बिताना पड़ सकता है, इतने पर भी शान्ति आना तो मोहमें असम्भव है सो ऐसी ही फोटो अथवा मूर्तिबनवाकर धर्मप्रवाहको कलंकित करनेकी नौबत आजाती है।

ता० ८-४-५६

पहिले कवि किरणें घुसानेका अलंकार उनको देते थे जो आमने सामने होते थे किन्तु अब बीचमें बड़े बड़े साधु पुरुष महापण्डित हो गये हैं उनमें किरणें न घुसाकर अपनेमें यदि कोई प्राणी किरणें घुसवाने में पुण्य समाप्त कर दे तो इसका मूल मोह मिथ्यात्वसे अतिरिक्त अन्य क्या हो सकता है? मोहकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

लीला अपार है - कहीं लोगोंकी पूर्वाचार्योंकी कृतिपर श्रद्धा न हो जावे अन्यथा मेरे शासनका माहात्म्य क्या रहेगा एतदर्थ अब तक के सब शास्त्र जो सीधा अर्थ कहते हैं वह ऐसा नहीं है किन्तु मैं कहता हूं वह ही है आदि कह कर लोगोंकी श्रद्धा एकत्रित होकर मुझमें ही रहे इस तरहका भी यत्न मोह करवा सकता है। वर्तमान साधु, पंडितोंकी ओर (तरफ) लोगोंकी श्रद्धा न बढ़ जावे एतदर्थ उन सबको दोषपूर्ण कह कर मुग्धमनमोहक स्वच्छंद व्यवहारकी ओर उत्साह दिलाना और केवल मुझमें ही लोगों की श्रद्धा रहे इन अध्यवसानोंको बढ़ा देना भी मोह की कला है।

रे मोह तू सहजभाव नहीं है, नैमित्तिक है, तू मिटनेवाला है, अहो जिनकी दृष्टि में मोह सहजभाव है उन्हें मोह परेशान न करे तो क्या ज्ञानियों-को परेशान करे ? यथार्थ भेदविज्ञान वालेको मोह कभी नहीं सता सकता। जो मोहके दास हैं उन्हें ही मोहभूत लगता है।

हे चैतन्य प्रभो ! प्रसन्न हो ओ, सबको सन्मति प्राप्त होवे। यह वस्तुधर्म–जैनधर्म ही उत्तम सिद्धान्त है फिर भी यह जगत में प्रसिद्ध नहीं हो सका इसका क्या कारण है ? इसके उत्तरमें श्रीमत्स्वामिसमन्तभद्राचार्य ने लिखा है कि "कालः कलिर्वा कलुषाशयोवा श्रोतुः प्रवक्तुर्वचनानयोवा,–त्व-च्छाशनैकाधिपतित्वलक्ष्मीप्रभुत्वशक्तेपरपवादहेतुः। अर्थात् हे वर्द्धमान देव तुम्हारा शासन सर्व हितकारक है उसके एकाधिपत्यकी प्रभुता है फिर भी यह दबा है प्रसिद्ध नहीं है इसके ३ कारण हैं—(१) कलिकाल, (२) श्रोतावोंके कलुष आशय (३) वक्तावोंको नयोंका ज्ञान नहीं अन्तके २ हेतु बहुलताकी अपेक्षा हैं। सर्वविभ्रमविनाशि निजस्वाभावमें अविचल विश्वास करो।

ता० ९–४–५६

पूर्व पुरुषोंके चरित्र तो देखो—आदिनाथजी का, पाण्डवोंका, राम-चंद्रजी का, कृष्णचन्द्रजीका आदि अनेक महापुरुषोंका कुटुम्ब था फिर उस कुटुम्बका हुआ क्या ? पहिले तो सब प्रकारका बड़ा बड़ा संग्रह हुआ फिर लौकिक सुख परख लेनेके पश्चात् क्या हुआ ? सब बिखर गये। कोई कहीं विरक्त हो गया कोई कभी विरक्त हो गया, कोई बिना त्याग के मरा कोई

http://sahjanandvarnishastra.org/

विरक्त योगी हो निर्वाण पधारा। यहां कोई जमकर नहीं रह सका। फिर संयोग इच्छा क्यों ? सब अध्रुव है, अध्रुवसे उपयोग बदलकर निज ध्रुव परम पारिणामिक भावरूप निज स्वभावमय अपनी प्रतीतिकर, चंचलदृष्टिको तज।

आजकल कहीं कहीं आरोपित निमित्तकी साधारण वार्ता लाकर पूछते हैं कि वस्तुमें क्रमबद्धपर्याय हैं सो जब जो परिणमन होता है सो होता ही है निमित्तकी आवश्यकता नहीं है। निमित्त हाजिर हो जाता है। इस बेतुकी भाषापूर्ण प्रश्नका उत्तर देते हुए मुझे निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध का यथार्थ वर्णन करना पड़ता है किन्तु मुझे उस समय खेद अवश्य होता क्योंकि मेरी रुचि, इच्छा, उत्सुकता व प्रकृति स्वभावदृष्टिकी है। मैं एक ही को एक में देखना चाहता हूं। क्योंकि निमित्तदृष्टिसे अथवा नैमिवितक दष्टिसे व संयोग-दृष्टिसे मेरा हित परिणमन नहीं होगा परन्तु तथ्य के विरोधसे भी तो हित नहीं है। जिनागमके अनुसार तो उत्तर देना ही होगा। यदि लोग एक बार यथार्थ विज्ञान करलें और फिर आमरण भी निमित्तचर्चा छोड़कर स्वभावाव-लंबनमें ही जुटे रहे तो भलाई है, परचर्चा में फसे रहना ठीक नहीं है।

ता० १०—४—५६

पर्यायको गौणकर द्रव्य देखा जाता है फिर त्रिकालकी सब पर्यायोंको जाने तब द्रव्य समझा जावे यह बात विरुद्ध है किन्तु कहीं जो यह लिखा जाता है कि त्रिकाल पर्यायोंका समूह द्रव्य है वह द्रव्यकी अनादिनिधनता का प्रदर्शन करनेके प्रयोजनको पुष्ट करता है।

द्रव्य सदा वर्तमान वर्तमानपर्यायमात्र हैं, द्रव्यस्वरूपको जाननेके लिये उस पर्यायको भी गौण करके पारिणामिक भावमात्र प्रतिभात रहता है।

"सम्मत्तस्स विमित्तं" आदि गाथाके अथ २ प्रकार से हैं--- १. सम्य-क्त्वका बाह्य निमित्त जिनसूत्र और उसके जाननेवाले पुरुष हैं तथा दर्शनमोहके उपशम, क्षय, क्षयोपशम अन्तरंग कारण है। २. सम्यक्तवका निमित्त जिन-सूत्र है और अन्तरंग कारण अर्थात् उपादान कारण जिनको सम्यग्दर्शन हो रहा है वे जिनसूत्रके ज्ञायक आत्मा है क्योंकि उनके दर्शनमोहके क्षय, उपशम, क्षयोपशम होनेसे।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपदेष्टा दूसरेको अन्तरंग कारण कैसे हो सकता है क्योंकि वह भिन्न-क्षेत्रस्थ है ऐसे पर द्रव्य हैं जिनसे निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध नहीं, आश्रय-सम्बन्धमात्र है। दर्शनमोहके क्षयादि आत्माके एकक्षेत्रावगाहमें रहनेवाले कर्मोंकी ही तो आखिरी अवस्था है सो उसे अन्तरंग कारण कहा जा सकता है तथा यद्यपि ये पर द्रव्य हैं तथापि कर्मक्षयादिका सम्यक्तवोत्पत्तिमें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है अतः अन्तरंग कारण कहा है। यहां अन्तरंग कारण का अर्थ अनिवार्य निमित्त कारण समझना।

उपादानदृष्टि से सम्यग्दर्शन उत्पन्न करनेवाले ज्ञानीको अंतरंग कारण कहते हैं—इस एक आत्मामें कार्य कारणका भेद किया है इसलिए इस मुमुक्षुको उपचारसे अंतरंग कारण कहा है याने भेददृष्टि से उस खुदकी आत्माको सम्यक्त्वका अंतरंग कारण कहा है। यहां भेददृष्टि को उपचार समझना क्योंकि वस्तुतः आत्मा अभेदस्वरूप है।

ता० ११–४–५६

एकत्वदृष्टि आत्मीय आनंद व चरम आत्मविकास का अमोघ मूल उपाय है, एतदर्थ यह अभ्यास चाहिये—एक वस्तुको देखे जाने, विकल्प होने पर उस एक ही वस्तुके द्रव्य गुण पर्यायोंको जाने। कारकपद्धति उस एक ही वस्तुमें लगावे। उस एक ही वस्तु संबंधी वितर्क करे इस प्रक्रियासे पुनः एक ही वस्तु को देखें जानेकी स्थिति प्रगट होती है। पुनः विकल्प होने पर उसी अभिन्न विचारपद्धतिका अनुसरण करे।

द्रव्य और द्रव्यस्वभाव इसके परिश्रमकी अपूर्व महिमा है। जगतमें विविध ग्रन्थोंका परिचय जीवोंने किया किन्तु उनसे शांति तो क्या मिले—अशांति ही बढ़ती गई है। निजस्वभाव जोकि परम पारिणामिक भाव है कारणसमयसार चैतन्यस्वभाव, ध्रुवभाव, अभेदभाव, सहजसिद्धतत्त्व, सहज-स्वभाव आदि जिसके अपरनाम हैं और विविध वाच्यतासे गम्य जो एक है उसका परिचय व अनुभव करे तो सब आकुलतायें समाप्त हो जावें।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की परिणति नहीं करता। हम भी परमाणुमात्र किसी भी अन्यकी परिणति त्रिकालमें कर सकते नहीं है। पदार्थ ही सब कैसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कैसी परिस्थितियोंमें कैसा परिणम जाता है वह परिणममान पदार्थके ही बुते का है। देखो इस एकत्वदृष्टिकी महिमाको। यहां कोई एक वह स्वयंसिद्ध, एकही स्वभाव दीखता वह भी स्वयंसिद्ध, एकपर्याय दीखता वह भी स्वयंसिद्ध, भविष्यमें जो पर्याय प्रकट होगी वे भी प्रत्येक स्वयंसिद्ध। स्वरूपमें अद्वैत ही प्रतिभास है। अद्वैतबुद्धिसे ही सिद्धमार्ग है, अद्वैतअनुभवसे ही सिद्धि है, अद्वैतपरिणमन ही सिद्धि है।

ता० १२-४-५६

निमित्त उपादानकी चर्चावोंके व्यसनी व्यर्थ जीवन बिता रहे हैं। एक दिन सब निर्णय करके फिर आमरण स्वभावदृष्टि रख रखकर समय का सदुपयोग करने का बल क्यों नहीं प्रकट करते। वास्तविकता तो यहां यह प्रतीत होती है कि लोगोंको अनिर्णयकी शल्य नहीं है किन्तु पर्यायबुद्धिवश अपने पूर्व होगई मान्यता व निकल चुके वचनोंके पक्षकी शल्य होगई क्योंकि जैन महर्षिके सद्वचन स्पस्ट शीघ्र निर्णयके निमित्त सन्मुख हैं। अनिर्णय की शल्य तो कुछ भी पढ़े लिखे को रह नहीं सकती यदि जिनागम उनके हस्तगत हो। यहां यह हो सकता है कि वस्तुस्वरूपके अनुसार निज का अनुभवन चाहे कर न सके। किन्तु ज्ञानकी शक्ति पर्यायविकासरूप जिनने पाई वे जिनागम पा लेंवे और अनिर्णयमें रह जावें यह कठिन है। रही अनुभवकी बात सो वह स्वरूपाचरणसाध्य होनेसे ज्ञानके कामसे कथंचित् बाहर की बात है। इसलिये अनिर्णयकीशल्य पढ़े लिखोंको नहीं हो सकती। अतः जिन्हें अपना कल्याण करना हो वे मन वाणी मुद्राके पक्षको छोड़ें और हितबुद्धिसे तत्त्वमें अपना उपयोग जोड़ें।

णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमिक्को।
अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणायमईओ सदारूवी॥
अहमिक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।
णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं॥
णत्थि मम कोवि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
णत्थिमम धम्मआदी बुज्झदि खओयएव अहमिक्को है॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ता० १३–४–५६

जिन पदार्थोंको विषय करके राग लगा रहता है उन पदार्थोंके क्षेत्रको छोड़कर अन्यत्र चले जाना व उन पदार्थोंको क्षेत्रान्तरित हो जाने तेना विरागता उर्फ शान्तिका बाह्यसाधन है। कल्याणार्थी को ऐसा करना चाहिये। ऐसा करने के लिये बड़ी उदारताकी आवश्यकता है नहीं तो देख ही तो लो रागमें वह चीज भरनी हितकारी प्रतीत होती है उसका त्याग कैसे करे। यह तो ज्ञानियोंका ही कार्य है। पुनः बाह्य विविक्त स्थानोंमें रहते हुए अन्तर विविक्त भावमें रमते हुए स्वानुभूति स्वरसको रसते हुए वर्तमान चैतन्य-विलासके द्वारा चैतन्यस्वरूपकी एकाकारतामें रचते हुए जिन अस्तित्वमें बर्ते। यही योगोंमें योग है महायोग है, परमचमत्कार है, परम अतिशय है, सर्वसिद्धि है, निजलक्ष्मीका परम प्रसाद है।

दूसरोंके लिये कुछ नहीं करना है, अपनेलिये अपनेमें अपने द्वारा मात्र अपने वर्तनसे वर्तना है। ज्ञानका विषय अन्य भी जो चाहे बना रहे कुछ बिगाड़ नहीं है। जगत को चुनौती है- एक एक अणु भी अथवा समस्त चेतन अचेतन पदार्थ क्रमसे अथवा एक साथ मुझपर आक्रमण करदें। परन्तु दृष्टिका विषय ध्रुव निज चैतन्य स्वभावरूप परमपारिणामिक भावके अतिरिक्त अन्य कुछ भी मत होओ वह चाहे परक्षेत्रस्थ पदार्थ हो या स्वक्षेत्रस्थ पर पदार्थ हो या स्वक्षेत्रस्थ पर निमित्त हो या स्वमें नैमित्तिक भाव हो या स्वभावकी अविपरीत अधूरी अवस्था हो या स्वभाव का परिपूर्ण विकास हो। मुझे वह सब अध्रुव कुछ नहीं देखना। निज ध्रुव चैतन्यस्वभाव के अवलंबनद्वार से स्वभावका अधूरा व पूर्ण विकास होगा ही किन्तु विकासकी दृष्टि बनावोगे तो विकाससे वञ्चित होकर विरुद्ध विकास की भेंट पावोगे।

ता० १४–४–५६

पुण्यपाप फल मांहि हरष बिलखो मत भाई।
यह पुद्गल पर्याय उपजि विनसै फिर थाई॥
लाख बात की बात यही निश्चय उर लावो।
तोड़ सकल जग दंद फंद निज आतमध्यावो॥ (छंद०)

Version 1

एक स्वदृष्टिसे निज आत्मको देखते जावो, विचारते जावो, आनंद पाते जावो। आत्मा एक अखंड है उसका स्वभाव कहो, सामर्थ्य कहो या गुण कहो या पारिणामिक भाव कहो वह एक अखंड है। आत्मा का पर्याय एक अखंड है। उपचारसे याने भेददृष्टिसे गुण अनंत और वर्तमान पर्याय अनंत है। प्रति वर्तमानमें एक एक पर्याय होती चली जाती है, याने होती चली जावेगा व होती चली आई आई है। द्रव्य स्वभावसे परिणमनशील है सो जब जो परिणमन होगा तब वह परिणमन न होगा ही। वह सब आत्मावोंका अपने अपने चतुष्टय से है हुआ होगा। देखो एकत्वदृष्टिसे च्युत न होगा। एकस्वग्र हक निश्चयनयसे देखनेकी ड्यूटी पूरी निभाओ, निभावो और तक निभावो जब निभना स्वयं छूट जावे, निर्विकल्प ध्रुवस्वभावमें वर्तमानज्ञान परिणाम एकाकार हो जावे।

देखो आत्मपर्याय आत्मद्रव्यसे हो रही है, इन दोनोंको सन्मुख करो, स्वयं ही द्रव्यमुख्य हो जावेगा और पर्याय गौण होजावेगी और द्रव्यदृष्टि भी तदनंतर हरकर आत्म अर्थ का अनुभव होगा।

ता० १५–४–५६

निमित्तनैमित्तिकसम्बन्धके निषेध करनेमें अपनी शक्तिका अपव्यय करनेसे अच्छा तो यह है—कि निमित्त अथवा नैमित्तिक व सम्बन्ध इन तीनों की चर्चा छोड़कर भूतार्थनयसे आत्मा व आत्माके तिर्यक् व ऊद्र्ध्वविलासोंको जाने और समझानेसे प्रसंगमें इसही भूतार्थनयकेगम्य तत्त्वोंका प्रतिपादन करे। यदि कोई इसही भूलर्थनयका अवलम्बन लेकर एक तत्त्वको ही देखा जाना करे तो इसमें कोई हानि नहीं लाभ ही है किन्तु आत्माके ज्ञानस्वभाव होनेसे इस हितैशीको भी इस मोटें और आप पर बीती हुई घटनाके जाननेके लिये जिज्ञासा उत्पन्न होगी ही और फिर यथार्थनिर्णयके अभावमें निःशंक स्वपथमें बढ़ नहीं सकता। इसलिये अपने आपपर दया करके जिनागाम और युक्ति के अनुकूल रागादिकी विविधता कैसे हुई इसका निर्णय कर लेना चाहिये और यह निर्णय स्वयंको होगया तब इस निर्णयके विरुद्ध अपनी वाणीके पक्षसे दूसरोंको कह कर मायाचारके शस्त्रसे आत्माकी हत्या नहीं करना चाहिये।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कुछ नये सखों यह भूल होना प्राकृतिकसी है कि उन्होंने धन वैभव स्त्री पुत्र परमात्मा समवशरण आदि बाह्य जोकर्मोंको निमित्त समझ लिया है। ये निमित्त नहीं किन्तु आश्रय या विषय हैं। विषयकी बाततो ऐसी है कि जब हम उनपर दृष्टि दें तो उनपर आश्रयरूप निमित्तका आरोप होता है किंतु द्रव्यकर्मको तो हम जानते ही नहीं है हम उसपर दृष्टि क्या देंगे और तब दृष्टि नहीं देसकते तो फिर हम आरोप ही क्या करेंगे। वह तो यदि निमित्त है तो निमित्त है और नहीं है तो नहीं है किन्तु वह आरोपित निमित्त कभी नहीं होता। आरोपित निमित्त तो विषय हैं।

ता० १६-४-५६

यदि प्रकत्युदय आरोपित निमित्त है तो आत्माके नैमित्तिकभाव होने सेपहिले वह कर्म सर्व वर्गणावोंकी तरह एकसा पुञ्जरूप याने ढेर रहना चाहिये किन्तु आत्माके कषायादि भावोंको निमित्त मात्र पाकर जब कर्मबंध हुआ तब उस ही समयमें उन वर्गणावोंमें प्रकृतिविभाग हो गया कि ये ये वर्गणायें अमुक अमुक विभागमें निमित्तरूप हो सकेंगे और उस ही समय स्थितिविभाग हो गया कि अमुक अमुक वर्गणायें इतने इतने समय तक रहेंगी व उस ही समय अनुभाग विभाग भी हो गया और प्रदेशविभाग भी हो गया। यदि आरोपकी ही बात है तो पहिले हुई यह परिस्थिति तो सब व्यर्थ हो जावेगी, क्योंकि नैमित्तिक भाव होते समय जो सामने आपड़े गधा, कुत्ता वगैरह उनमें निमित्तका आरोप हो जावेगा। अनुकूल निमित्तमें आरोप करने की जिरह करो तो अनुकूल निमित्त में आरोप करनेका तथ्य निमित्तनैमित्तिक भाव है। जैसा उपादान जिसको निमित्तपाकर जिस विभावरूप परिणमजाता है वह उसका अनुकूल निमित्ति कहलाता। परिणमनेकी विशेषता उपादान की है निमित्तसंबंध एक विधान है।

यदि बहादुरी इतनी और कर लीजावे कि आरोपकी भी जरूरत नहीं तो "अमृतचन्द्र सूरि की अनगिनती किरणें हमारे दिमागमें घुस गईं" इसका चित्रण कुछ भाइयोंके दिमागमें घना फिट शायद बैठ जावे। यद्यपि अब तक श्रीजिनसेनाचार्य, समन्तभद्राचार्य, अकलंक देव, ब्रह्मदेव, जयसेनाचार्य,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

योगीन्द्रदेव आदि निर्ग्रंथ आध्यात्मिक महापुरुष हुए और अतिनिकट में पं० टोडरमलजी, जयचन्दजी, बनारसीदासजी, शाह दीपचन्द जी आदि आध्यात्मिक महापुरुष हुए व वर्तमानम भी अनेक हैं परन्तु उनमें व उस समयके भक्तोंमें संसारपटुता न होने के कारण कीर्ति फैलाने की कला याद न होनेसे किसकी किरणें किसमें घुसीं यह चित्रण नहीं हो सका था। अब क्या हो सो कलिकाल-के गर्भमें है। खैर अब तो राजको भी स्वभाव बना लेने वाले भाइयों को यह चाहिये कि जीवन भरका झगड़ा न रख कर एक ही दिनमें व्यवहारनयका विषय यथार्थ समझ लें और फिर आमरण भी उसकी दृष्टि चर्चा न करके भूतार्थनयका अवलंबन लेकर फिर समस्त नयपक्षोंसे अतिक्रान्त होकर शुद्ध चैतन्यमात्र परमपारिणामिकभावस्वरूप निज ध्रुवस्वभावका स्वभावानुरूप विलास द्वारा अनुभव करें जिससे सर्व क्लेश समूल दूर हों।

ता० १७–४–५६

सामर्थ्य पुरुषार्थकी विशेषता तो इसमें है कि निमित्तनैमित्तिक-संबंधकी विशेषता होने पर भी द्रव्यकी पूरी पूरी स्वतन्त्रताका देखना जानना रहे। प्रत्येक द्रव्य अपने चतुष्टसे ही परिणमता है अन्यकी सहायता या परिणतिसे नहीं परिणमता। कोई किसी भी विधानसे परिणमो, परिणमरहा है अपनी स्वतन्त्रतासे। भूतार्थनयके अवलम्बनसे स्वतन्त्रताकी पक्की प्रतीति कर लेना चाहिये।

ध्रुव चैतन्यस्वभावके दर्शनअनुभवन हों एतदर्थ तत्त्वोंका परिज्ञान आवश्यक हुआ। इस कार्यके अनुकूल वह परिज्ञान है जो कि वस्तु जिस प्रकार है उस प्रकार जाने। द्रव्य अनादिनिधन है वह अभी तक अपनी अनन्त पर्यायरूप हो चुका व वर्तमानमें एक पर्यायरूप है और भविष्यमें प्रति समय एक एक पर्यायरूप हो होकर क्रमशः अनन्त पर्यायरूप होवेगा। कल जो होना होगा वह कल होगा तुम अभी विकल्प करके निर्विकल्प साम्राज्यसे क्यों च्युत हो रहे हो, ऐसा सोचकर स्वभावदृष्टिपर आना। हमारी पर्यायें हमारे परिणमन हैं। परिणमन जो है वह स्वभावकी वर्तमानदशा है, उस स्वभाव की वर्तमान दशाको अन्य कोई पदार्थ नहीं करता। परिणमनशील होनेसे पदार्थका परिण-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मन उससे ही होता है। ऐसी प्रतीति कर जिस स्वभाव के वे परिणमन हैं उस स्वभावकी दृष्टिपर आना। सर्वज्ञदेव अथवा अवधिज्ञानी आदि जिसने जब जहां जिस प्रकारसे होना जाना है तब वहां उस प्रकारसे होना है फिर विकल्प क्यों करना क्योंकि उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं होना इसका भी कारण यह है कि जब जो कुछ होना है वही ज्ञानीने जाना है तभी वह सच्चा ज्ञान है। अब विकल्प क्यों करना। ऐसे विकल्प न होनेकी स्थिति पाकर स्वभाव-दृष्टिमें बसने का उपाय पाकर निर्विकल्प होओ।

ता० १८-४-५६

सर्वज्ञ देवका ज्ञान सबको विकल्प न करके जानता है। कैसा है वह ज्ञान ? उसकी महिमामें उपयोग देने पर आत्मामें निर्विकल्प स्थितिका प्रतिभास होता है सो ऐसे ज्ञानस्वभाव को छूकर स्वभावदृष्टि में आ जाना।

आत्मामें रागादिक हैं तो स्वयंकी परिणति किन्तु आत्मा स्वयं निमित्त होकर या पर निमित्त संयोगविका रागादिभावोंका कर्ता नहीं। रागादि होनेमें पर द्रव्य निमित्त है सो उसके अनुकूल सम्बन्ध रूप उपाधिको निमित्त पाकर ही रागादिक होते हैं सो स्वयं उपाधिको अभाव रहकर रागादिका कर्ता आत्मा नहीं। (समयसार गाथा २७८-२७६)

मैं तो ज्ञानमात्र हूं, मेरा जानना स्वयंका कार्य है, मैं ज्ञाता हूं, रागादिका कर्ता नहीं हूं ऐसी प्रतीति कर स्वभावदृष्टिमें आना। मैं तो चैतन्य हूं अर्थात् ज्ञानदर्शनरूप हूं, चारित्रभूमि जो कि स्वयं चेतती नहीं है जानती देखती नहीं है उस चारित्रभूमिपर कर्मोदयकी सन्मुखतासे रागादिक होते हैं। निमित्त-नैमित्तिकप्रसंगमें ऐसे होते हैं तो होओ, मैं ज्ञानदर्शनरूप हूं जाननदेखन हारा हूं सो मैं जानन देखन ही कर सकता उन रागादिको नहीं करता। मैं ज्ञान-स्वभाव हूं, मेरा जानना ही कार्य है ऐसे वितर्कके अनन्तर स्वभावदृष्टिमें आजाता।

सब महिमा स्वभावदृष्टिकी है, स्वभावावलंवनकी दृढता होने पर ज्ञानस्वभाव के कारण कुछ भी अन्य जाननेमें आवो आवो, परन्तु अभी तो हम सबको स्वभावदृष्टि ही अङ्गीकार्य है॥ हे स्वभावके चरमविकास !

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जयवन्त होओो। हे स्वभावके चरमविकास के स्वरूप और उपाय बतानेवाली वाणी ! जयवन्त होओो। हे स्वभावके चरमविकासके अविपरीत प्रयत्नमें रहनेवाले अचरमविकसित महात्मा साधु जनो ! जयवन्त होओो। हे स्वभाव ! जयवंत प्रवर्तो।

ता० १९–४–५६

सर्व विकल्प पर को आश्रय बनाकर होते हैं। यहां पर आश्रय आरोपित है। जब यह ज्ञान निज आत्माका भी विकल्प करता है तब यह निज आत्मा भी ज्ञानके लिये पर है और वह विकल्प इस निज आत्मारूप पर को आश्रय बनाकर होता है अर्थात् आरोपता है। जब ज्ञान ही जाने ज्ञान ही जाना जावे अर्थात् ज्ञानमुखेन आत्मा अनुभवा जावे तब ज्ञानमय कर्ता ज्ञानमय कर्म व ज्ञानमय क्रिया होनेसे यह स्वयं ज्ञानकेलिये स्व है। सर्व निज-पर रूप परको छोड़कर अर्थात् उनमें उपयोग न देकर ज्ञानमय स्वमें स्थित होना।

जिसको लोग "मैं" कहता है वह मैं है तो अवश्य। यदि न होता तो बड़ी अच्छी बात थी क्योंकि असत्को कोई दुःख नहीं होता। उस सत् "मैं" को दुनियां कुछ कहती तो है परन्तु उस "मैं" का परिचय नहीं। वह "मैं" आत्मा शब्द से प्रसिद्ध है जब आत्माको निज आत्माको निज आत्माका परिचय नहीं है तब यह कहीं न कहीं उपयोग तो लगावेगा ही वह जहां लगेगा वह पर है।

परकी दृष्टिमें अपनेपर क्या बीतती है सो इसका सभी को अनुभव है। पुत्र को अपना माना और जब वह पुत्र अपनी इच्छाके विरुद्ध चले तो दुःखका अनुभव करता है। अव्वल तो जब पुत्र अपनी इच्छानुकूल चलता था वहां भी आकुलित था, परन्तु मोहवश उस आकुलताको सहकर भी आकुलता मानता न था। इसी प्रकार सभी परविषयिनी दृष्टियों की बात है। ये सब आकुलतायें आत्मज्ञानके बिना नष्ट नहीं हो सकतीं। जो सुख चाहता है उसको ही न जाना तो सुखके लिये आगे क्या करेगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ता० १२-४-५६ वाला ता० २०-४-५६

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम् (वसंततिलकानामच्छंदसि)

॥ शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावाः, प्रापुर्लभन्त अचलं सहजं सुशर्म ।
एकस्वरूपममलं परिणाममूलं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥१॥
"शुद्धं चिदस्मि" जपतो निजमूलमन्त्रं, ॐमूर्ति मूर्तिरहितं स्पृशतः स्वतंत्रम् ।
यत्र प्रयांति विलयं विपदो विकल्पाः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्म तत्त्वम् ॥२॥
भिन्नं समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमखण्डमनंतमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूरं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥३॥
ज्योतिः परं स्वरमकर्तृ न भोक्तृ गुप्तं, ज्ञानिस्ववेद्यमकलं स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियतं सततप्रकाशं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥४॥
अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्यं, चित्पारिणामिकपरात्परजल्यमेयम् ।
यद्दृष्टिसंश्रयणजामलवृत्तितानं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥५॥
यद्भात्यखण्डमपि खण्डमनेकमंशं, भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम् ।
आनन्दशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्डं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥६॥
शुद्धान्तरङ्गसुविलासविकासभूमि, नित्यं निरावरणमञ्जनमुक्तमीरं ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥७॥
ध्यायंति योगकुशला निगदंति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदितः समाधिः ।
यद्दर्शनात्प्रवहति प्रभुमोक्षमार्गः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥८॥
सहजपरमात्मतत्त्वं स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्पं यः ।
सहजानन्दसुवन्द्यं स्वभावमनुपर्ययं यायि ॥९॥

("ॐ शुद्धं चिदस्मि" इति निजमूलमन्त्रं ९ वारं अथवा बहुशोऽन्तर्जपेत्)

ता० २१-४-५६

साधु बनना अन्यबात है, साधुता आना अन्य बात है ॥ मानव होना अन्य बात है, माजवता आना अन्य बात है ॥ ज्ञान की चर्चा अन्यबात है, ज्ञानकी प्रतीति अन्यबात है ॥ जगतकी रुचिसे धर्म करना अन्य बात है, स्वकी रुचिसे धर्म करना अन्य बात है ॥ दूसरोंको प्रसन्न रखनेकी परिणति

Version 1

अन्य है, स्वको प्रसन्न रखने की परिणति अन्य है ॥ परकी दयाकरनेकी वृत्ति अन्य है ॥ व्रतका नियम लेना अन्य बात है, व्रतका धारण अन्य बात है ॥ बाह्य शुचि अन्य बात है अन्तर शुचि अन्य बात है ॥ बाह्य त्याग अन्य बात है, अन्तरंगसे त्याग अन्य बात है ॥

वस्तुतः त्याग ज्ञानमात्र रह जाने को कहते हैं। परन्तु रागदशामें जिन पर वस्तुवोंको आश्रय रूप बनाया था–जिन पर वस्तुवोंके ममत्वपूर्वक परका संयोग हुआ था सो ममत्वके हर जाने पर परका वियोग होता है अथवा धार्मिक वातावरणका संयोग करना पड़ता है इस बाह्यपरिस्थिति का नाम बाह्य त्याग है।

ता० २२–४–५६

अन्यसे उपेक्षित होकर किसी एक मजहबकी समाजसे ही सम्बन्ध रखना विचारोंके संकुचित बनानेका बाह्यहेतु है। यद्यपि अन्य मजहबवालोंसे सम्बन्ध रख कर अपने निश्चित पथ में सुधार या अन्यप्रकार की बात करनेकी आवश्यकता नहीं है तथापि संकुचितता आजाना प्राकृतिक है। अतः कल्याणार्थी जनों का जनसम्पर्क रहे और धर्मपालन हो तो उसकी अपनी वह एक विशेषता है जो रुढ़िसे पृथक होकर अन्तरंगसे यथार्थतामें आ जाता है।

ता० २३–४–५६

जैन बन्धुवोंकी भी अपेक्षा कुछ अजैन बन्धु आध्यात्मिक बात को बड़े चावसे सुनते हैं, प्रसन्न होते हैं तो भी जन्मजात परबुद्धिरूप संस्कार मिटा लेना बड़ा कठिन हो रहा है। वस्तुस्वरूप जो यथार्थ शैलीसे दिगम्बर जैन महर्षियोंने बताया है वह अकाट्य और सत्य है। द्रव्य अखंड होता है, अखंड का लक्षण है–चिन्ह है–एक द्रव्यमें समस्त एक परिणमन। इस तरह देखलो जानलो—अनंतानंत आत्मायें, अनंतानंत अणु, एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य, असंख्यात काल द्रव्य थे सब अनंतानंत द्रव्य हैं। समस्त पदार्थसार्थ सत् की अपेक्षा एक है। सत् की अपेक्षा एक होने पर भी वे सब पदार्थ चैतन्यकी दृष्टिसे २ भागोंमें विभक्त हो जाते हैं—कुछ चेतन कुछ अचेतन है। जो तेतन हैं उनके नाम आत्मा जीव ब्रह आदि अनेक हैं। जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अचेतन हैं उन में कुछ तो इन्द्रिय ग्राह्य हो सकनेवाले हैं और कुछ कभी इन्द्रिय ग्राह्य हो ही नहीं सकते ऐसे हैं। जो इन्द्रिय ग्राह्य हो सकते उन्हें मूर्त कहते हैं और जो इन्द्रिय गाह्य नहीं हो सकते उन्हें अमूर्त कहते हैं। अमूर्त अचेतन तो एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाश द्रव्य व असंख्यात काल द्रव्य हैं। मूर्त अचेतन अनंतानंत परमाणु हैं। चेतन अनंत आत्मायें हैं, ये अमूर्त ही होते हैं। सभी द्रव्य स्वभावसे स्व स्व लक्षणको को लिए हुए हैं और परस्पर सभी सभीसे पृथक हैं और अपने आपमें स्वतंत्र है। उनका परिणमन उनके ही स्वसे होता है। हां इतनी बात है कि जिनका स्वभावपरिणमन है उनका कालके अतिरिक्त अन्य कुछ निमित्त या वातावरण नहीं है और जिनका विभाव परिणमन हो रहा है वहां यथायोग्य विविध निमित्त व वातावरण का संयोग है, अन्यथा परिणमनकी विविधता न होती, तथापि परिणमता वह स्वयं ही है, क्योंकि जहां तक परिणमन मात्रका विचार है— स्वयं परिणमते हुए को अन्यकी अपेक्षा क्या और न पपिणमते हुएको अन्य की अपेक्षा कर ही क्या सके।

ता० २४–४–५६

कुछ संक्षिप्त कीर्तन इस प्रकार हो सकते हैं।

अर्हन् सिद्ध अर्हन् सिद्ध, सिद्ध सिद्ध अर्हन् अर्हन्।
अर्हन् भगवान सिद्ध भगवान, सिद्ध सिद्ध अर्हन् अर्हन् ॥१॥

—०—

अर्हन् सिद्ध अर्हन् सिद्ध, अर्हन् भगवन् सिद्ध भगवन्।
अर्हन् सिद्ध अर्हन् सिद्ध, अर्हन् भगवन् सिद्ध भगवन् ॥२॥

अर्हन् सिद्ध अर्हन् सिद्ध, शिवपति केवलज्ञानी भगवान्।
सूरे पाठक साधो साधो, रत्नत्रयमय पूज्य महात्मन् ॥३॥

—०—

अर्हन् सिद्ध अर्हन् सिद्ध, सिद्ध सिद्ध अर्हन् अर्हन्।
सूरे देशक साधो जिनवर अर्हन् सिद्ध सिद्ध अर्हन् ॥४॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र शांति निधान।
भगवद्वाणी हित अमलान, प्रतिबोधक गुरु कृपानिधान ॥५॥

शिवेश जिनेश गणेश महेश, पूजत पाद नरेश सुरेश।
समयसार चैतन्य विजेश, ध्यावत पावें पद परमेश ॥६॥

ता० २५-४-५६

ॐ ॐ ॐ अर्हन् ॐ ॐ ॐ। ॐ ॐ ॐ सिद्ध ॐ ॐ ॐ ॥
ॐ ॐ ॐ मुनीन्द्र ॐ ॐ ॐ। ॐ ॐ उपाध्याय ॐ ॐ ॐ ॥
ॐ ॐ ॐ मुनिवर ॐ ॐ ॐ। ॐ ॐ ॐ ब्रह्म ॐ ॐ ॐ ॥१

ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ। ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ ॥२

ॐ नमः असिआउसा। ॐ अर्हं शुद्धं चिदस्मि ॥३

सच्चिदानंद ॐ सहजानंद निजानंद परमानंद सच्चिदानंद। सच्चिदानन्द ॐ सहजानन्द, नित्यानन्द परमानन्द, शाश्वतानन्द ॥४

शिवपति शंकर ब्रह्म गणेश, जगन्नाथ वज्रांग महेश। विष्णु बुद्ध हरि हर सर्वेश, ईश्वर प्रभु विभु तुम्हीं जिनेश ॥५॥

सम्मति वर्द्धमान अतिवीर, महावीर तीर्थंकर वीर। त्रिशलानंदन हर भवभीर, हो सम्मति पहुँचू भवतीर ॥६॥

ता० २६-४-५६

"विष्णु क्षीरसागरमें शेषनागपर आराम करते हैं उनकी नाभिसे कमल निकला उसपर ब्रह्माजी हैं ब्रह्माजी सृष्टि रचते हैं" इन शब्दोंके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अलंकारसे रचनाओं निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध दर्शाया है–विष्णु नारायण सूर्य भगवान परदेवता रक्षक इन नामोंमे सूर्य वाक्य है सो विष्णु सूर्य हुआ, क्षीर-सागर यह स्वच्छ आसमान हुआ। सूर्य स्वच्छ आसमानमें रहता है, सूर्यकी बीचसे कमलनाल निकला अर्थात् किरणनिकली उस कमलनाल किरणों पर कमलपुष्प–पृथ्वी विकसित हुई उस कमलपुष्प याने पृथ्वीके आधारसे ब्रह्म याने तेजोमय तत्त्व निकला। अब सोमदेवकी छायामें याने वर्षा होने पर इस तेजोमय ब्रह्मसे यह सब सृष्टि होती है याने वनस्पति पेड़ कीड़े मकोड़े उत्पन्न होते हैं और तेजोमय तत्त्व से मनुष्य शरीर आदिकी सृष्टि होती है। उक्त वाक्य में इस वैज्ञानिक अंशका पूरक अलंकार है।

श्री १०५ क्षु० पूर्णसागरजीका प्रधानतया यह भाव रहता है कि जैन-समाजकी पूरी गणना हो और सबका ख्याल रखा जावे। कोई दुःखी न हो सके। यह भाव प्रशस्त है। कोई दुःखी न हो यह बात कैसे साध्य हो यह बड़ी समस्या है। जैन गणनाके सम्बन्धमें जहां आपका पदार्पण होता है वहींसे नोट होता रहता है इसमें सफलता नहीं हो सकती, अतः हमारी कामना है कि उनकी इच्छाकी पूर्ति हो और उसका उपाय यह है कि अबसे १॥ वर्ष बाद की एक तिथि नियत करली जावे और तब तक समस्त भारतमें इस सम्बन्धकी व्यवस्था बना ली जावे–एक एक प्रान्तमें एक एक प्रान्तप्रमुख हो प्रान्तप्रमुख अपने प्रान्त के एक एक जिलेमें एक एक जिलाप्रमुख बनालें–जिलाप्रमुख जिलेमें एक एक तहसील प्रमुख बनालें–व तहसील प्रमुख अपने तहसीलमें एक एक ग्राम प्रमुख बनालें बड़े बड़े शहरोंमें प्रान्तप्रमुख–एक एक शहरप्रमुख बनालें व शहरोंमें वह मुहल्लाप्रमुख बनालें। मुहल्लाप्रमुख व ग्रामप्रमुख एक ही तिथिमें जो पहिलेसे निश्चित की हो जैन गणना करलें और ऊपर ऊपर के प्रमुखोंके पास भेजकर वह सब मुख्य केन्द्रमें आजावें। यह केन्द्र केन्द्रीय महासमिति दिल्ली बनाया जा सकता है। इस तरह श्री क्षुल्लक जी का आशय सफल हो सकता है।

ता० २७–४–५६

लगन की पहिचान—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जैसे किसी पुरुषको पुत्रसे प्रेम है तो पुत्रपर रोगादि कोईविपत्ति आने पर वह प्रेमी क्या करता है। उस पुत्रके लिये सारी संपत्ति भी खर्च कर देता है। इसी तरह जिसका निज आत्मासे प्रेम होता है तो आत्मज्ञान, आत्मधर्म, ज्ञानयज्ञ, धर्मसेवा के लिये मनवचन कायदा सदुपयोग करता है व सारी विभूतिका दान व त्याग कर देता है। जिसने अपने आप पर दया नहीं की वह सुखी शान्त हो ही नहीं सकेगा, न है। जिसको बाह्यपर दृष्टि है वह अन्तरंगका आनन्द पा ही नहीं सकता, क्योंकि बाह्य जड़ पर उसकी दृष्टि है, आनन्द इसमें है ही नहीं, सो वहांसे मिलना ही क्या है। देखो ऐसी हालतमें भी आत्माके आनन्दस्वभावी होनेसे आनन्द गुणकी कोई न कोई दशा तो होगी ही। वह दशा आकुलताकी ही होती है। हर्ष व विषाद दोनों आकुलता हैं।

ता० २८—४—५६

निज अविकार स्वभावसे अन्य सब कुछ पर है। जिन्होंने स्वभाव-दृष्टिसे उत्पन्न हुए सहजानंदरूप आनन्दको प्राप्त नहीं किया, उनके अभी वस्तुतः जीवनका प्रारम्भ ही नहीं है। विपद्ग्रस्त जीवन, जीवन नहीं है। जीवन वह है जो जीवत्वसे मिलादे। सम्यक्त्व के अनुभव बिना जीवको जीवन कहा जावे और कहा जावे कि हम ४०—५०—६० वर्ष के हो गये तो यों तो उसे यों कहना चाहिये कि हम अनन्तकालके बूढे हो गये। जिस मोहशैली से घसिटते आये उसी शैलीसे घसिटते रहे तो वे घसीट संसारभावों-को घसीटनेके सिवाय और क्या पा सकेंगे।

चोर चोरों में अपनी चोर्यकलाकी प्रशंसा करते हैं। कपटी कपटियोंमें अपने कपट की, दगाबाजीकी प्रशंसा करते हैं। मोही मोहियोंमें अपनी व परकी मोहकलाकी व मोहके ठाठ बाटकी प्रशंसा किया करते हैं। उष्ट्राणां विवाहेषु गीतं गायंति गर्दभाः। किन्तु होता क्या है बाह्यचेष्टामें।

कुलक्रमागत व जनागत, यंतगत मोहके चक्करमें ही पड़े रहे तो कुछ जीवनमें आत्माके कल्याण के विषयमें क्रान्ति उत्पन्न न की तो हायरे हाय पता नहीं—निकट भविष्यमें ही कौनसा गहन अंधकार आनेवाला है।

भूलको भूल न समझना ही भूल है। भूलको भूल समझ जानेपर भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भूल है। तो वह गलती है। गलती संसारको लंबा नहीं कर सकती, भूलही संसारका परिवर्द्धन करने वाली है मूलकी भूलमहती शूल है। जिसमें बीधा हुआ भवकूलमें हिलोरें लेकर भवकूलसे वियुक्त रहता है।

ता० २९-४-५६

जीवस्थान चर्चाके विषयोंका आध्यात्मिक विवरण—

ज्ञान गुण की पर्यायें—ज्ञानमार्गणा ८, संज्ञिमार्गणा २, ज्ञानोपयोग, क्षायिकज्ञान, क्षायोपशमिक ज्ञान ३ अज्ञान ३, औदयिक अज्ञान।

दर्शनगुणकी पर्यायें---दर्शनमार्गणा ४, दर्शनोपयोग, क्षायिक दर्शन, क्षायोपशमिक दर्शन ३।

सुख (आनंद) गुण की पर्यायें—साता असाता आत्मीय आनंद।

वीर्य गुणकी पयायें—क्षायोपशमिक लब्धि ५।

श्रद्धागुणकी पर्यायें—सम्यक्त्वमार्गणा ८, भावऔपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, मिथ्वात्व, गुणस्थान–मिथ्यात्व मिश्र अविरतसम्यक्त्व।

चारित्र गुणकी पयायें—वेदमार्गणा ४, कषायमार्गणा २६, संयम-मार्गणा ८, ध्यान १६ अविरति १२, कषाय २५, भाव-क्षायिक चारित्र, औप-शमिक चारित्र १६ क्षायोपशमिकचारित्र, संयमासंयम, कषाय ४, लिग ३, असंयम, सासादन व देशविरत सं १२ वें गुणस्थान तक।

क्रियावतीशक्तिकी पर्याय– क्रिया, अक्रिया।

प्रदेशवत्त्व शक्ति की पर्यायें—स्वभावव्यंजनपर्याय (सिद्ध, इन्द्रियरहित, कायरहित) विभावव्यंजन पर्याय (गति, इन्द्रिय, काम)

योगशक्ति—योगमार्गणा २, लेश्यामार्गणा ७।

सर्वशक्तियोंकी पर्याय—पारिणामिकभाव, भव्यत्वमार्गणा ३, असिद्ध भाव।

ता० ३०-४-५६

सहज परमात्मतत्त्वभक्तिका अर्थ—

जिस उत्तम तेजमें अभेदविकार होते हुये लीन होनेवाले आत्मावोंने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अचल सहज उत्तम आनंद प्राप्त किया व पा रहे हैं तथा जो एकस्वरूप, अमल एवं परिणमनका मूल कारण है ऐसा शुद्ध चैतन्यमात्र सहज परमात्मतत्त्व मैं हूं ॥१॥

॥ शुद्धं चिदस्मि इस आत्मीय मूलमन्त्रको जपतेहुएके तथा ॐ अथवा स्वीकारतारूप प्रतीति है मूर्ति जिसकी या मूर्ति रहित निजको आचरनेवालेके जहां विकल्परूप विपत्तियां विलयको प्राप्त होती हैं ऐसा शुद्ध चैतन्यमात्र सहज परमात्मतत्त्व मैं हूं ॥२॥

समस्त पर पदार्थ और औपाधिक भावोसे भिन्न, पूर्ण सनातन अर्थात् अनादिनिधन, अखण्ड,अनंत, एक शुद्ध चैतन्यमात्र सहज परमात्मतत्त्व मैं हूं॥३॥

उत्कृष्ट ज्योति, स्वयंराजमान, अकर्ता, अभोक्ता, गुप्त, ज्ञानियोंके स्वसंवेद्य, शरीररहित, निजरसके द्वारा ही प्राप्त है सत्त्व जिसको तथा चैतन्यमात्र ही है धाम जिसका, नियत, अनवरत अंतः प्रकाश स्वरूप शुद्ध चैतन्यमात्र सहज परमात्म तत्त्व (मैं) हूं ॥४॥

अद्वैत, ब्रह्म, समय, ईश्वर, विष्णु शब्द से वाच्य, चित् पारिणामिक परात्पर की भावनासे ज्ञेय तथा, जिसकी दृष्टि और आलम्बनसे अमल पर्यायका संतान उत्पन्न होता है, ऐसा शुद्ध चैतन्यमात्र सहज परमात्मतत्त्व मैं हूं ॥५॥

जो अखण्ड होकर भी खण्डरूप अनेक व अंशरूप प्रतिभात होता है, तथा जो निश्चयतः सहज आनन्द शक्ति दर्शन ज्ञान चरित्रका पिण्ड है, ऐसा शुद्ध चैतन्यमात्र सहज परमात्मतत्त्व (मैं) हूं ॥६॥

शुद्ध आन्तरिक उत्तम विलासके विकासकी भूमि स्वरूप नित्य निरावरण निरञ्जन निज लक्ष्मीका दाता, व पीलिया है समस्त निज पर्याय और गुणोंको जिसने ऐसा तेज स्वरूप शुद्ध चैतन्यमात्र सहज परमात्मतत्त्व (मैं) हूं ॥७॥

योग समाधिमें सिद्ध हस्तने महात्मा जिसको ध्याते हैं, और जिस को संकेत रूपमें कहते हैं, उत्तम रूपसे हुआ जिसका ध्यान समाधि कहा गया है, और जिसके दर्शनसे निज प्रभुको मोक्षमार्ग का प्रवाह होता है, ऐसा शुद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चैतन्यमात्र सहज परमात्वतत्त्व मैं हूं ॥८॥

जो निर्विकल्प रूपसे सहजपरमात्वतत्त्वको अपने में अनुभवता है वह सहज आनन्द द्वारा उत्तमतया बन्ध स्वभावके अनुरूप पर्याय को प्राप्त होता है।

"ॐ शुद्धं चिदस्मि" इस निज मूलमंत्रको ६ वार अथवा बहुतवार अतन्तरङ्ग में जमना चाहिये।

ता० २–५–५६

जीवन थोड़ा रह गया है और उसका भी कुछ विश्वास नहीं अथवा आपकों तो पता नहीं जल्दी ही अन्त होने को हो, भैया निर्विकल्प समाधिकी पात्रता बनालो।

विशेषवादियोंका सिद्धांत है:—पदार्थ ६ प्रकारके हैं, द्रव्य, गुण कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय। द्रव्य ६ प्रकारके हैं:—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा व मन। गुण २४ प्रकारके हैं:—रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिणाम, पृथकत्व, संयोग, वियोग, परत्व, अपरत्व वृद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, द्रव्यत्व, गुरुत्व, संस्कार, स्नेह, धर्म, अधर्म व शब्द। कर्म ५ प्रकारके हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण व गमन। सामान्य २ प्रकारसे हैं १–परसामान्य (सत्ता), अपर सामान्य (द्रव्यत्व आदि) ये सभी पदार्थ ४२ हैं, परस्पर अत्यन्त भिन्न है इनका परस्परमें समवाय संबंध होता है, किन्तु समवाय संबंधको संबंध के लिये समवाय संबंधकी आवश्यकता नहीं। परसामान्य याने सत्ताका समवाय केवल द्रव्य, गुण, कर्मके साथ है, सामान्य विशेष समवाय इन तीन पदार्थोंमें सत्ताका समवाय नहीं होता, उनमें अस्तित्व जरूर होता, यह है विशेष वादियों का सिद्धांत। वस्तुतः इन ४२ प्रकारोंमें आकाश, काल व आत्मा ये ३ पदार्थ हैं और पृथ्वी आदि सब पुद्गल पदार्थ है इनसे अतिरिक्त जीव पुद्गल की गति और स्थिति के निर्माण भूत सूक्ष्म द्रव्य २ है जिनका रूढ़नाम धर्मद्रव्य है और अधर्म द्रव्य है, उक्त ४२ में आकाश काल आत्मा ये तीन को छोड़कर बाकी ३६ शक्ति छह द्रव्यों की शक्तियां हैं या पर्याय (अवस्था) अँ या द्रव्यों के संयोग वियोग रूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अवस्था हैं। वे कोई भी ३९ में से स्वतन्त्र पदार्थ नहीं हैं। विषय बहुत बड़ा है द्रव्योंकी विवेचनाकर, इसमें मुक्ति और अनुभव दोनों सफल होते जाते हैं।

ता० ३–५–५६

आत्माका अहित हिंसा है जैसे किसी पुरुषने किसी प्राणीका प्राणघात किया तो वहां प्राणघात करनेकी प्रवृत्तिके योग्य संक्लेश परिणाम व अज्ञान परिणाम करना पड़ा यह तो हिंसक की आत्माका अहित हुआ और आघात से प्राणघात होते समय अधिक संक्लेश प्राणीको हुआ सो अधिक संक्लेशसे मरनेवाले प्राणीको दुःख पूर्ण खोटी योनि मिलनेसे दोनों भवोंमें अहित हुआ इस तरह हिंसक पुरुष खुदकी हिंसा करता है और परहिंसाका निमित्त बनाता है, यही मरने वालेके संक्लेशसे मरनेवाले की हिंसा हुई और हिंसकके संक्लेश और अज्ञान से हिंसक की हिंसा हुई।

कीड़े मकोंड़े भी आघात से मरने पर अधिक संक्लेश करते हैं, अधिक संक्लेश में मरण होने से उस भवसे भी अधिक खोटी गति उन्हें प्राप्त होती है।। अतः स्वपर दयाकरके हिंसासे दूर रहने में आत्माका उत्थान है।

थोड़े थोड़े सताये जाते दिल दुखायें जाने में भी होने वाला संक्लेश कारण है।

प्रत्येक द्रव्यकी परणति उसके अपने आपमें होती है, किसी दूसरेकी परणतिसे कोई दूसरा नहीं परिणमता किसी भी चेतन या अचेतन पर पदार्थ को न कुछ कर सका न कर रहा हूँ न कर सकूंगा केवल मैं व्यर्थ विकल्प ही कर रहा हूँ। यह विकल्प ही मेरा शत्रु बन कर मुझे चैन नहीं लेने देगा और आत्मीय अनुपम सहज आनंद स्वभाव में रमने नहीं देगा। निश्चयकी बातव्यवहार में माने सो निश्चयाभासी व्यवहारकी बात निश्चय रूप में माने सो व्यवहाराभासी जैसे द्रव्यदृष्टिसे आत्मा शुद्ध अविकार है, उसे पर्याय रूपमें शुद्ध अविकार मानोतो वह निश्चयाभासी है और व्यवहार धर्म को निश्चय रूपमें धर्म माने तो वह व्यवहार भासी है निश्चय और व्यवहार का यथार्थ विज्ञान इन दोनों आभासियों को नहीं है। फिर भी ये आभासी जो गल्ती करते हैं उसको सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुषअपनी भाषामें बताते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ता० ४-५-५६

पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है, अनंतशक्तिमय है, केवलसामान्य केवलविशेष केवलगुण केवलपर्याय कुछ वस्तु नहीं, अतएव कोई सामान्य विशेष गुण पर्याय-किसी को नहीं जानता, सभी कोई द्रव्यको जाना करता है, हां कोई सामान्यमुखेन द्रव्यको जानता है, कोई विशेषमुखेन द्रव्यको जानता है, कोई स्वभावमुखेन तो कोई गुणमुखेन व कोई पर्यायमुखेन द्रव्य को जानता है, रूपको कोई नहीं जानता कोई जानता है, तो रूपमूल स्कंध को जानता है। क्रोधको कोई नहीं जानता, क्रोधमुख न आत्मा को कोई जानता है। गुण या पर्याय की प्रमुखता से जानना होने के कारण किन्हीं को यह भ्रम हो जाता है, कि मैं गुण को जान रहा हूं या पदार्थ को जान रहा हूं। गुण पर्याय जानने में आ तो जाते किन्तु द्रव्य बिना केवल गुण या पर्याय जानने में नहीं आया करता, अनेक ज्ञेयाकार में जो होता है वह पदार्थ होता है, वस्तुतः पदार्थ तो उसी पदार्थ में है, परन्तु जैसा ग्रहण हुआ वैसा बनानेमें उपचारसे कहना होता है।

ब्रह्मचर्य और स्वाध्याय दोनों महान् उत्कृष्ट तप है, आज यदि शरीर का संहनन उत्तम नहीं मिला, उपवास आदि विविध तपों की क्षमता नहीं है तो क्या बिगड़ा। ब्रह्मचर्य और स्वाध्यायकी उत्कृष्टता करना चाहिये ब्रह्मचर्य की उत्कृष्ट साधनामें रसना इन्द्रिय के विषयभूत रसस्वाद का विकल्प नहीं बढ़ता हैं, तथा स्वाध्याय के उत्कृष्ट मनन में रसस्वादके विकल्प पीड़ित नहीं करते हैं, फल स्वरूप अभक्ष्य पदार्थों के भक्षणकी प्रकृति ही नहीं रहती, तब शुद्ध भोजन का प्रसंग उपस्थित हो जाता है ब्रह्मचर्य व स्वाध्याय के प्रयत्न करते हुये जीवको जिसमें जीव हिंसा ज्ञान हो ऐसे भोजन की प्रीति नहीं रखता, इस प्रकार शुद्ध भोजन भी हो जाता है। उपसंहार यह रहा कि ब्रह्मचर्य स्वाध्याय व शुद्ध भोजन इन तीन बातों में रहकर मनुष्य अपने जीवनको आत्मोद्धारका हेतु बना कर सफल करे।

पांचों इन्द्रियों में पद पद पर चंचलता का हेतु यह चक्षुरिन्द्रि है। भोजन एक या दो बार करना, अशुद्ध भोजन न करना, किसी ब्रह्मचर्य बाढ़

Version 1

के, विरुद्ध वस्तुका स्पर्श न करना आदि बातों पर, मुमुक्षुका अधिक ध्यान रहता है, रहो यह अच्छी बात है, किन्तु भक्षुन्द्रिय का पहरा अधिक देना है, इस बातको नहीं भूलना चाहिये। यदि कोई चलने, उठने बैठने, मलमूत्र क्षेपण, स्नान भोजन स्वाध्याय देव दर्शन कदाचित् विशिष्ट महापुरुषोंसे कर्ता करनेमें ही चक्षुको खोले शेष समय चक्षुको बन्द रखेतो यह प्रवृत्ति बुरी नहीं है, प्रत्युत लाभकर है।

ता० ६–५–५६

जो आत्मा संसार शरीर भोगोंसे विरक्त रहते हैं, किसीका अहित नहीं सोचते हित मित प्रिय वचन का व्यवहार रखते हैं, इस वृत्तान्त के कारण लोग प्रशंसा करते हैं किन्तु इसमें वीरता अथवा प्रशंसाकी बात ही क्या, सम्यग्ज्ञान होनेपर ऐसा होताही है। जैसे मोही जीव ज्ञानमय वृत्त रखनेमें असमर्थ है वैसे ही ज्ञानी जीव मोह व कुत्सित प्रवृत्ति करनेमें असमर्थ है, क्या करें दोनों विवश है। देखो रे देखो भैया सम्यग्दृष्टि गृहस्थकी हालत, लड़केको गोद में लेकर खिला रहा है, तो उसका चित्ततो यह है कि वन में निर्ग्रन्थ रहकर आत्मानन्दमें रमना, इसलिये बच्चेके खिलाने का सुख जो किरकिरा होगया और अभी वन में है नहीं, जनाकुल स्थलमें है, सो वनका भी आनन्द नहीं है, दोनों सुखोंसे हाथ धोया। तब क्या इससे भला तो वज्र मिथ्यादृष्टि होगा कि कम से कम बच्चोंके खिलाने आदिका पूरा मजा तो ले रहा! तो क्या सचमुच गृहस्थ सम्यग्दृष्टि दुखी है? नहीं, नहीं, वह तो भेदविज्ञानके अपूर्व बलसे विकल्पको तोड़ तोड़ निर्विकल्प समाधिको स्पर्श कर कर अतुल अन्तः आनन्द लेता जा रहा है। इसका मर्म सम्यग्दृष्टि जानता है। वज्र मिथ्यादृष्टि तो आकुलतामें सुखकी बुद्धिकरके अतीव असावधान है। वहां तो भलाईकी नकली भी बात नहीं है।

ता० ७–५–५६

बाहर मूर्ति आदिमें भगवानको मत खोजो। परमौदारिकशरीरस्थ परमात्मा भी मिल जावे तो भी उस परमौदिकशरीरमें भगवान मत खोजो। अशरीर सिद्ध परमात्माके स्वरूपमें भी तो बाह्यदृष्टि द्वारा परमात्मा नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मिलेगा। अपने चैतन्यप्रभुका स्पर्श हो, कारणपरमात्मा की दृष्टि होजाय तो मूर्तिमें जिसकी स्थापनाकी है उसका व सकल निकल परमात्माका यथार्थ ज्ञान हो जावेगा। यदि परकी दृष्टि रही तो भगवानका जानना कठिन ही होगा। मूर्ति अथवा सकल निकल परमात्माका अवलम्बन स्वयंकी प्रभुता पानेके लिये है। बाहर खोजनेसे भगवान मिलेगा ही नहीं। साक्षात् अरहंत भी समक्ष हो तो जो समक्ष है वह तो बाहर देखनेसे जान लिया जावेगा परन्तु भगवान नहीं जाना जा सकेगा। वस्तुतः तो पर चाक्षुष भी जाननेमें नहीं आता। जाननेमें तो वर्तमान निज ज्ञेयाकार ही आता। आत्मन् ! तुम जान सकते हो तो अपने को ही। देख सकते हो तो अपनेको ही। प्रतीत कर सकते हो तो अपने को ही। वर्तित कर सकते हो तो अपने को ही। सुखी कर सकते हो तो अपने को ही॥

ता० ८—७—५६

परमें हित की प्रतीति होने पर परकी उन्मुखतारूप उपयोग दुःख विराजता है और निजमें हितकी प्रतीति होनेपर निजस्वरूपमें आत्माकी उन्मुखता है निजमें आनन्दका परिणमन होता है।

लोग कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं, सोचते कुछ हैं इसपर खेद न करना। ऐसी अस्थिरता छद्मस्थ अवस्थामें सर्वत्र होती है। वह उनका परिणमन है तुम्हारा क्या छुड़ा लिया। सर्व द्रव्य स्वतंत्र उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है।

ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिके समयोंकी संख्या कृतयुग्मराशि है—अर्थात् इतने समय है कि उनमें ४ का भाग देनेसे अन्तमें नीचे कुछ शेष नहीं रहते।

ज्ञानावरणकी जघन्यस्थितिके समयोंकी संख्या कलि ओजराशि है—अर्थात् इतनेसमय हैं कि ४ भाग देने पर अन्तमें ३ शष रहते हैं।

धवला १२—१८० पेजपर समाधान सांख्यमतसे दिया है और पर पर्यायका अभेद कराया है क्या कोई पाठ छूट गया ?

जयधवला १—१७ पेज—अवधिज्ञानसे पहिलेके ज्ञान सीमित हैं। मनः

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर्याय भी अल्प विषय होनेसे अवधिज्ञानसे पहिले है परन्तु संयमकी विशेषता को प्रसिद्धिके लिये चौथे नंबर पर मनःपर्यय रख दिया है।

ता० १० मई सन् १९५६

सहज परमात्मतत्त्व भक्ति

हरिगीता छन्द

पाते सहज सुख आतमा, ऐसे निरत निज धाम में
हो ज्ञान परणति एकवत् अविचल निज भाव में
सबकर्म तनमलसे रहित, इक स्रोत सब पर्यय गमा
वहशुद्धप्रभु चैतन्य हूँ' कारण सहज परमात्मा ॥१॥
शुद्धं चिदस्मि है मूर्ति जिसकी ॐ या स्वीकारता।
निजमंत्र जपकर मूर्तिविन, निज मंत्र में जो वर्तता ॥
विपदा विकल्पों का विलय, पाता जहाँ वह आतमा।
वह शुद्ध प्रभु चैतन्य हूँ, कारण सहज परमातमा ॥२॥
सब अन्य द्रव्य विभावसे, गत स्वगुण रत्नकरण्ड जो।
पूरण सनातन एक निरवधि, खण्डविन चित्पिण्ड जो ॥
सब कल्पनाओंसे जुदा, निक्षेपनय नहिं नहिं प्रमा।
वह शुद्ध प्रभु चैतन्य हूँ, कारण सहज परमातमा ॥६॥
कर्ता न भोक्ता ज्योति उत्तम, स्वयं राजित गुप्त जो।
है ज्ञानि जन अनुभाव्यनिष्कल, स्वरस निर्भर सत्त्व जो।
चिन्मात्र जिसका धाम नित्य, प्रकाशमय नियतातमा ॥
वह शुद्धप्रभु चैतन्य हूँ, कारण सहज परमातमा ॥४॥
अद्वैत ईश्वर समय विष्णु, व ब्रह्म अभिधावाच्यजो।
चित् पारिणामिक अरु परात्पर, भावनासे मेय जो ॥
जिसके सुदर्शन आश्रयोंसे, अमल पर्याय वह थमा :
वहशुद्धप्रभु चैतन्य हूँ, कारण सहज परमातमा ॥५॥
भूतार्थ नय-विपरीत आशय, में कभी प्रतिभासता।
गुणखण्डनाना अंशमय, यद्यपि अखण्ड स्वभावतः ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आनन्द दर्शन ज्ञानवीर्य, चरित्रमय सहजातमा ॥
वह शुद्ध प्रभु चैतन्य हूँ, कारण सहज परमात्मा ॥६॥
जो शुद्ध अन्तस्तत्त्वके, सुविलासकी निजभूमि है।
निज नित्य लक्ष्मीप्रद, निरंजन, निरावरण सुधाम है ॥
निर्भेद मग्न समस्तगुण, पर्यय जहां अचलातमा।
वह शुद्ध प्रभु चैतन्य हूँ कारण सहज परमातमा ॥७॥
योगी कुशल ध्यातेतथा, संकेत में कहते जिसे।
होता समाधि सुभाव उत्तम, रीति ध्याने से जिसे ॥
प्रभु मुक्तिमग जिसके, से हि पाता आतमा।
वह शुद्ध प्रभु चैतन्य हूँ, कारण सहज परमातमा ॥८॥

शिखरणी छन्दमें

भुला भेदों को जो सहज परमात्मत्व भजले
स्वयं स्वके द्वारा अनुभव स्वयं में जब करें
अदेही निर्दोषी, सम शिव अवस्था प्रगट हो
निजी आनन्दों से, परम, सहजानन्दमय हो।

(ॐ शुद्धं चिदस्मि, इसकी ९ वार या वार वार भावनाकरें)

ता० १२-५-५६

अनादि निधन एक स्वरूप सदामुक्त परम पारिणामिक कारण स्वरूप सार रूप निज परमात्माका, सम्यक्श्रद्धान ज्ञान व इसी स्वरूप में उपयोगकी स्थिरता रूप पर भक्ति निश्चय भक्ति है। उपयोग में, अरहंत सिद्ध स्वरूप का, सोल्लास, होना व्यवहार भक्ति। दंडवत्, नयन, वचन, अष्टद्रव्य उपदेश श्रवण करना आदि जड़की क्रिया है। जीव का उद्धार परम भक्ति में है। इसने स्थिरता न रहनेपर व्यवहार भक्ति होती है। क्योंकि जिसकी प्रतीति सहजसिद्ध चित्स्वभाव पर दृढ़ है, आगे उसके उपयोगकी स्थिरता रहे तो उस चित्स्वभावका शुद्ध व्यवहारिक रूप जिनके प्रगट हुआ है, वहां भक्ति पहुँचना चाहिये, किन्तु जो इससे भी असमर्थ हैं, अरहंत सिद्ध विशेष भाव पर भी २, ४ सेकिंड उपयोगनहीं जमा सकते ण, भक्तिद्योतक बाह्य वातावरण याने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जड़क्रियाके अनुरूप विकल्पोंमें रहें ताकि विरुद्ध अशुभ विकल्पोंके अभावमें इन भक्तिद्योतक विकल्पोंके पश्चात व्यवहारभक्तिमें आनेका सरल अवकाश प्राप्त हो सके। इस अवकाशकी पूर्ति भी ज्ञान ही करेगा।

ता० १३-५-५६

स्वभावदृष्टि ही हमारी रक्षिका माता है। स्वभावदृष्टि ही हमारा उत्थान है, मोक्षमार्ग है। स्वभाव दृष्टि नहीं होगी तो यह सुनिश्चित है कि परदृष्टि होगी, सो पर पदार्थ कोई भी हो शांतिका कारण नहीं हो सकता और वह किसी बातका निमित्त भी बने तो अकुलताका ही निमित्त हो सकता है, अनुकुलताका निमित्त नहीं हो सकता। इतना तो अन्तर है कि कोई तीव्र आकुलताका निमित्त है तो कोई मंद आकुलताका निमित्त है। जो मंद आकुलताका निमित्त है उसे तीव्र आकुलताकी अपेक्षा आकुलता कम होनेसे शांति का-संतोषका कोई निमित्त मानले तो यह उसकी व्यक्तिगत मान्यता है। वस्तुतः आकुलता तो आकुलता ही है चाहे वह मन्द हो या तीव्र।

ता० १४-५-५६

अनाकुलता स्वाभाविकदशा है, अतः वह औपाधिक नहीं होती। वह परकी ओरसे निराश्रयज है किन्तु अपनी ओरसे स्वाश्रयज है। मंद आकुलता का उत्तम आश्रय भगवद्भक्ति है सो भगवद्भक्तिके आश्रयमें भी देखलो-आकुलता ही है। भगवानका उपदेश भी है कि परमकल्याणके लिये हमारा भी राग याने हमारी भी भक्ति छोड़ो। किन्तु भगवद्भक्ति छोड़ना पुत्रभक्ति व जड़भक्तिकेलिये नहीं करना, फिर अन्य किसीकी भक्ति या प्रीति न हो इस तरह भक्ति छोड़ना। एक परमसमरसभाव की पूर्ण चित्स्वभावमें उपयोगकी स्थिरता करो, यही परमभक्ति है।

परमभक्तिका विषय अभेद है, और व्यवहारभक्तिका विषय ? वह भेदरूप रहता है।

हमारा निजी स्वाध्यायका सिलसिला करीब २-२॥ माहसे भ्रमणके कारण व अपनी शिथिलतासे कम होगया जिससे धर्मकी लगन भी पूर्ववत् प्रगतिशील नहीं रही। इससे मेरेको यह निर्णीत हुआ है कि दैनिक स्वाध्याय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जितना करतेहो उसमें कमी न होने पावे, इतना ध्यान जरूर रखना चाहिये।

जगतमें करना क्या है ? किसी पर पदार्थ से कुछ भी हित नहीं होने का। यहां जीव असहाय है। जब तक किसीको लाभ होता रहता है जिसके निमित्तसे, उसे लोग पूछ लेते हैं लेकिन उस पूछने के कालमें भी आत्माका हित नहीं है। एक निजस्वभाव दृष्टि के अतिरिक्त कुछ भी मेरा हितकर नहीं है। यह बात पूरी पक्की है, फिरपरकी ओर का झुकाव अज्ञान नहीं तो और क्या है ?

ता १५–५–५६

कषायका वेग अल्प अन्तर्मुहूर्तको होता है। उस समयकी चिकित्सा सद्भावनारूप कर लो, अन्यथा उस वेग में कषायकी त्रियोगसे वृत्ति हो जाने पर उसका संक्लेश बहुत काल तक रहेगा।

समस्त कषायोंका विजय व समस्त इन्द्रियविषयोंका विजय एक यही है कि निज अनादिनिधन चैतन्यस्वरूप सहज स्वभावका अनुभव करें।

जलवत्पात्रम् — संयोगसम्बन्धावच्छिन्नजलत्वावच्छिन्नजलनिष्ठाधेयता-निरुपितसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नपात्रनिष्टाधिकरणशालित्वम् इति निष्कर्षः।

जीववच्छरीरम् — संयोगसम्बन्धावच्छिन्नदशप्राणयुक्ततारूपजीवत्वाव-च्छिन्न जीवनिष्ठाधेयतानिरूपितसंयोगसम्बन्धावच्छिन्न देहनिष्ठाधिकरणशालित्वम् इति निष्कर्षः।

संसारभाव आत्माका शत्रु है, वह अपनेमें घर किये है। उसकी तो चिन्ता नहीं करता और पर पदार्थ जिसके कि परिणमनके तुम स्वामी नहीं जिसकी वृत्तिको कुछ भी आप कर सकते नहीं उसकी इतनी चिन्ता लगा रखी है।

स्वभावदृष्टि आत्माकी रक्षिका अम्बा है; इस अम्बाकी आराधना करो। यह अम्बा केवल एक मुख वाली है। आत्माने इसका बल प्रकट करना होगा कि परका कहीं कुछ होता हो होओ, अपने स्वभावदर्शनसे विचलित न होओ। स्वभावदर्शन ही आत्माकी सम्पत्ति है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ता० १६-५-५६

करणानुयोगमें गणित की ज्ञप्ति आवश्यक है। प्रारम्भिक गणित—

$२ + ३ = ५$

$३ - २ = १$

$२ - ३ = -१$

$२ \times २ = ४ = २^{२}$

$२ \times २ \times २ = ८ = २^{३}$

$(४)^{\frac{१}{२}} = २$

$(२)^{२} = ४$

$(२)^{३} \times (२)^{४} = (२)^{७} = १२८ = ८ \times १६$

$(२)^{क} \times (२)^{ख} = २^{क+ख}$

$(२)^{४} \div (२)^{३} = (२)^{४-३} = (२)^{१} = २$

$(२)^{क} \div (२)^{ख} = २^{क-ख}$

$अ + ब = अ + ब$

$अ - ब = अ - ब$

$अ - ब = अ - ब$

$२ \div ३ = \frac{२}{३}, \quad अ \div ब = \frac{अ}{ब}$

$\frac{४}{५} + \frac{६}{७} = \frac{२८ + ३०}{३५} = \frac{५८}{३५}$

$\frac{अ}{ब} + \frac{स}{द} = \frac{अ \times द + ब \times स}{ब \times द}$

$अ^{३} \times अ^{५} = अ^{८}$

$अ^{३} \times ब^{५} = अ^{३}ब^{५}$

$अ \times अ \times अ = अ^{३}$

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

$अ^3 \times र^5 \times अ^4 \times र^4 = अ^7\ र^9$

$\frac{अ^3}{र^4} + \frac{ब^3}{र^2} = \frac{अ^3 र^2 + ब^2 र^4}{र^6}$

$२ \times ५ \times ५ \times ५ = २५०$

$अ \times ब \times अ = अ^2 ब$

$अ \times ब \times स = अ\ ब\ स$

$१० \times ३१५ = ३१५०$

$५ \times २ \times ५ \times ६३ = ३१५०$

$अ \times अ \times अ \times अ \times ब \times ब \times ब \times द \times द = ४^{अ} ३^{ब} २^{द}$

ता० १७-५-५६

$(२ \times ३) + (२ \times २ \times २) = ६ + ८ = १४$

$२[३ + (२ \times २)] = २ \times २ + ३ \times २ = १४$

$२[३ + ४] = ३ + ४ \times २ = १४$

$(अ \times अ) + (अ \times अ \times अ) = अ^2 + अ^3$

$४० + २५ = (५ \times ८) + (५ \times ५) = ५[८ + ५] = ६५$

$अ + अ\ ब = (अ \times १) + (अ \times ब) = अ[१ + ब]$

$५० + ६० = ११० = (२ \times ५ \times ५) + (२ \times २ \times ३ \times ५) = २ \times ५[५ + (२ \times ३)] = १०[५ + ६]$

$अ^2 ब + ब^2 अ = (अ \times अ \times ब) + (ब \times ब \times अ) = अ\ ब[अ + ब]$

$अ^2 ब\ स + ब^2 स\ अ = (अ \times अ \times ब \times स) + (ब \times ब \times स \times अ) = अ\ ब\ स\ (अ + ब)$

$अ^3 ब + अ^2 ब + अ\ ब = (\underline{अ} \times अ \times अ \times \underline{ब}) + (\underline{अ} \times अ \times \underline{ब}) + (\underline{अ} \times \underline{ब}) = अ\ ब(अ \times अ) + (अ) = (१) अ\ ब\left[\frac{२}{अ} + अ + १\right]$

$अ^4 ब + अ^4 ब^4 अ + स^3 अ = अ[अ^3 ब + ब^4 स^3]$

$अ^8 ब^3 + अ^4 ब^4 = अ^4 ब^3[अ^4 + ब]$

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ता० १८-५-५६

आत्मन् ! अपनेको तो काम बस एक ही रहा है—अपने चित्स्वभाव को देख उसीमें उपयोगी रहना। और कौन सा काम रहना बाकी है बताओ —राग द्वेष आदि तो तुम हो नहीं उसका तो करना ही क्या है वह तो विपत्ति व विकार है—बाह्य धन वैभवसे होता क्या है तुम्हारा उसको कर भी क्या सकते—उससे कुछ आत्मलाभ नहीं, रही उदरपूर्तिकी बात—सो आत्मोलब्धि में बढ़ने वाले को उसकी परवाह भी नहीं—आत्मोपलब्धिमें बढ़ने वालेको यदि राग शेष हो तो वहां पुण्यबंध की विशेषता है जिसके उदयकालमें लौकिक साधनोंकी प्रचुरता बिना इच्छाके होती है।

आत्मन् करनेको कुछ काम है ही नहीं सिर्फ यही रह गया कि निज-स्वरूप को देखो देखते रहो फिर उपयोग भी न करना पड़ेगा—शुद्ध निर्मल होवोगे।

कोई प्रसन्न होगा तो हमें क्या लाभ ! कोई अप्रसन्न होगा तो हमें क्या क्षतिः सन्मानविशेष हो तो उससे आत्माको क्या लाभः कहीं अपमान हो तो उससे आत्मा को क्या हानि। आत्माका लाभ तो सर्वत्र उतना ही है जितना कि वह साम्यभावमें रह कर अपनाकुल स्वभावका अनुभव करे।

वर्तमान भाव तुम नहीं हो, क्या चिन्ता करते हो वर्तमान स्थितिमें विश्वास मत करो अभी ही नष्ट होनेवाली है। सब भूल जावो तब एक अनुभवमें रहेगा। सुननेमें अचरज है अनुभवमें आवाज नहीं है।

ता० १९-५-५६

इन्द्रियोंके विषयभूत पदार्थ से आत्मा भिन्न है। विषयों का आत्मा स्वामी नहीं हैं। इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण नहीं होता। विषयोंकी आत्मा जानता नहीं है। फिर विषयोंकी ओर उपयोगका रमना मूर्खता नहीं तो और क्या है ?

आत्मा जैसाभी खुदमें ज्ञेयाकार हो उस रूप परिणमता अर्थात् आत्मा आत्माको जानता।

रूप रस गंध स्पर्श शब्द इन इन्द्रियां विषयोंको नहीं जानता।

इन्द्रियां छद्मस्थ अवस्थामें मति विज्ञान उत्पत्तिमें नमित्तिभूत हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण नहीं होता। विषय तो विषयमें ही रहते और परिणमते हैं।

विषयोंका आत्मा स्वामी नहीं है क्यों कि विषय परद्रव्य हैं आत्मा परद्रव्य है। परद्रव्य परद्रव्यका स्वामी नहीं है।

सर्व द्रव्य अपने अपने ही स्वरूपसे सार है अतः विषयोंसे आत्मा अत्यन्त पृथक् है।

वस्तुस्थिति ऐसी स्वतन्त्र है–फिर भी जिन्हें आत्मस्वरूपका जब तक परिचय नहीं है तब तक विषयोंका निज आत्माका यह प्रकट भेद कल्पना तक में भी नहीं आता।

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।

ता० २०–५–५६

अ ब स + ब स + स अ = स [(अ × ब) + (ब) + (अ)।

का करिके पुनि भागकर फिर गुण लेहु सुजान। ता पीछे धन ऋण करो भिन्न रीति यह जानः—

$$\text{३} - \text{४} \div \text{२} = \text{३} - \tfrac{\text{४}}{\text{२}} = \text{३} - \text{२} = \text{१}$$

$$\text{अ} - \text{ब}^{॥} \div \text{ब} = \text{अ} - \frac{\text{ब}^{॥}}{\text{ब}} = \text{अ}\frac{\text{ब} \times \text{ब}}{\text{ब}} = \text{अ} - \text{ब}\ ।$$

$\text{४} + \text{६} \times \text{८} = \text{४८} + \text{४} = \text{५२}$। इसका यह अर्थ $\text{४} + \text{६} = \text{१०} \times \text{८} = \text{८०}$ गलत है।

$\text{अ} + \overline{\text{ब}} \times \text{स} = \overline{\text{ब}}\text{स} + \text{अ}$। इसका यह अर्थ $\text{अ} + \text{ब}^{\text{२}}\text{स}$ गलत है।

$$\text{८} \times \text{५} + \text{४} - \text{३} = \text{४०} + \text{४} - \text{३} = \text{४१}$$

$$\text{अ}^{\text{२}} \times \text{ब} + \text{ब} - \text{स} = \text{अ}^{॥}\text{ब} + \text{ब} - \text{स} = \text{ब}\ [\text{अ}^{\text{२}} + \text{१}] + \text{स}$$

$$\text{६} \div \text{२} - \text{४} \times \text{६ का २} = \text{६} \times \text{२} \times \text{४} = \text{४८},\ \text{३} - - \text{४८} = - \text{४५}$$

$$\text{अ}^{\text{५}} \div \text{अ}^{\text{२}} - \text{अ}^{\text{२}} \times \text{अ}^{\text{३}} \text{ का अ} = \frac{\text{अ}^{\text{५}}}{\text{अ}^{\text{२}}} - \text{अ}^{\text{२}} \times \text{अ}^{\text{४}} + \text{अ}^{\text{३}} - \text{अ}^{\text{६}}$$

$$= \text{अ}^{\text{३}}\ [\text{१} - \text{अ}^{\text{३}}]$$

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ता० २१–५–५६

अनादिपरम्परासे चला आया हुआ विकार संस्कार प्राणीको सत्पथसे बार बार विचलित कर देता किन्तु यदि आत्मा अपनी शक्ति पर दृष्टिपात करे और पक्का संकल्प आत्महितका करले तो कोई बाह्य साधन ऐसा नहीं जो उसे सत्पथसे विचलित कर सके।

आत्मा स्वयंसिद्ध एक सत् है वह दूसरेकी परिणतिसे न परिणमता तथा न अपनी परिणतिसे दूसरे को परिणमाता अतः किसी द्रव्यकी अरक्षा है नहीं सब सुरक्षित हैं, परिणाम अरक्ष्य है, वह तो विनाशीक ही है। परि-परिणामका मेरे से रंच संबद्ध नहीं उसके विनाशका अनुभवन मेरे में हो नहीं सकता। निजपरिणाम का भी विनाश अवश्यभावी है उसका यद्यपि क्षण-मात्रका संबंध है तथापि मैं ध्रुव चित्स्वरूप हूं उसरूप नहीं।

मैं ज्ञानमात्र अजर अमर अकल अखल अचल अछल अटल अबल अमल निजस्वभाव मात्र हूं।

मैं-अ-इ-उ-ऋ-क-ख-च-ध-म हूं।

ता० २२–५–५६

नानामत

जैन–दिगम्बर, श्वेताम्बर स्थानकवासी

बौद्ध–वैभाषिक, सौत्रांतिक, माध्यमिक, योगाचार

सांख्य–ईश्वरवादी, निरीश्वरवादी

भट्ट–शब्दभावनावादी, अर्थभावनावादी

प्रभाकर–कार्यवादी, प्रेरणावादी, उभयवादी, अनुभयवादी

वेदान्ती–अध्यात्मवादी, ब्रह्मवादी, देवतावादी

मीमांसक–क्रियाकाण्डी, बलिवादी, नियोगवादी, भावनावादी

नैयायिक–सृष्टिवादी, तर्कवादी

वैशेषिक–ईश्वरवादी, निरीश्वरवादी

चार्वाक–नाना प्रकार के हैं।

आज जैनसिद्धांत को छोड़कर अवशिष्ट अन्यसिद्धांत लोगोंके व्यवहार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

—आचारमें संकररूपसे होगये हैं और आज यह नहीं कहा जा सकता कि ये अमुक हैं क्योंकि नाना सिद्धान्तोंको कहीं कुछ कभी कुछ इस तरह मान लिया है। जैसे कभी सत्त्व रजो तमोगुण को सिद्धांत बनाकर सांख्य बन गये हैं तो वे ही कभी सृष्टिकर्ता ईश्वर मानकर नैयायिक बन गये और वे ही कभी पूजा यज्ञ विधिसे मीमांसक बन जाते और वे ही कभी प्रवाह देखकर बौद्ध बन जाते आदि इस प्रकार तो यह चार्वाक का रूप बन जाता। अथवा यों कह सकते हैं कि जैसे प्रथकके पांच संस्थानोंमें विभिन्नता याने किसी शरीरमें कोई अवयव न्योग्रोधपरिमंडलका है व कोई स्वाति या अन्य का है आदि तो वह हुंककसंस्काम होजाता है, इसी प्रकार कुछ सिद्धांत किसी तत्त्वका कुछ सिद्धांत किसी का माने एक मौलिक सिद्धांतपर न टिक सके तो वह चार्वाक ही है—एक विशुद्ध चार्वाक वह है कि आत्मतत्त्वकी बात कुछ न माने सब भौतिक-विलास देखे।

ता० २३–५–५६

ज्ञानावरण कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिके समय कृतयुग्मराशिवाले हैं। ज्ञानावरण कर्म की जघन्य स्थितिके समय कलिओजराशिवाले हैं।

यद्यपि आत्मोको ही सब जानते हैं, आत्मामें प्रत्यय करते हैं आत्मा की ही परिणति करते हैं तथापि अखंडचैतन्यस्वभावमयतासे स्व को जाने माने आचरण किये बिना सत्य शांति प्राप्य नहीं हो सकती।

श्री मद्भगवत्कांदत्वदेवेनात्मनो यत्स्वरूपं "णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो। एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सोउ सो चेव" इति गाथायां प्रोक्तं तथा सर्वगुणपर्यायादिभेदकल्पनानिरपेक्षं ज्ञायकभाव मयं स्वं जानीहि, प्रत्येहि, अनुचर च। अन्यथा साध्यस्यात्मनः सिद्धिर्न भविष्यति।

ता० २४–५–५६

ननु कोऽयमात्माचारः कथमाचरितव्यश्च स्यादिति चेदुच्यते—आचारो हि श्रद्धानुसारी भवतीति प्रथममभेदचैतन्यस्वभावोऽयमात्मा श्रद्धातव्यो तथा रागादिसद्भावासद्भाव सकलविकल्परहितस्वाश्रयतया श्रद्धातस्तथैव प्रज्ञया संगृह्याभीक्ष्णं तत्रैवाभेदलक्ष्यदार्ढ्यमात्माचारः।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न हि परसाहाय्यविकल्पैः पारतन्त्र्यं व्येति पराश्रयजभावानां स्वयं पारतन्त्र्यस्वरूपस्वात् । न च विषमभावेषु स्वात्मा चकासतेऽनात्मीयभावेष्वात्मदर्शनाभावात् ।

गुणनखण्ड-व्युत्क्रमसे—

$४क^२+४क\ ख+ख^२=(२क)^२+२(२क)(ख)+(ख)^२=$
$(२क+ख)\ (२क+ख)=(२क+ख)^२$

घटाना—

$(९)^२-(४)^२=(९+४)\ (९-४)$
$=(१३)\ (५)=६५$
$(१०८)^२-(९८)^२=(१०८+९८)\ (१०८-९८)$
$=(२०६)\ (१०)=२०६०$

$(अ)^२-(ब)^२=(अ+ब)\ (अ-ब)$
$=अ(अ-ब)+ब(अ-ब)$
$=अ^२-अ\ ब+ब\ अ-ब^२$
$=अ^२-ब^२$

ता० २५–५–५६

$४अ^२-९ब^२=(२अ)^२-(३ब)^२$
$=(२अ+३ब)\ (२अ-३ब)$ ।
$६४क^२-८१ख^४=(८क)^२-(९ख^२)^२$
$=(८क+९ख^२)\ (८क-९ख^२)$

गुणनखण्ड—

$(४+५^२)=(४+५)\ (४+५)=८१$ ।
$=४(४+५)+५(४+५)=८१$ ।
$=(९)\ (९)=८१$ ।
$=१६+२०+२०+२५=८१$ ।
$=(९^२)=९+९+९+९+९+९+९+९+९=८१$ ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

$(४अ+५ब)\ (४अ+५ब)$
$=४अ(४अ+५ब)+५ब(४अ+५ब)$
$=१६अ^{२}+२०अ\ ब+२०अ\ ब+२५ब^{२}$
$=(४अ+५ब)\ (४अ+५ब)$
$=(४अ)^{२}+२(४अ)\ (५ब)+(५ब)^{२}$
$=१६अ^{२}+२(२०अ\ ब)+२५ब^{२}$
$=१६अ^{२}+४०अ\ ब+२५ब^{२}$

$(३क+७ख)\ (३क+७ख)=९क^{२}+४२क\ ख+४९ख^{२}$
$=(३क)^{२}+२(३क)\ (७ख)+(७ख)^{२}$
$=९क^{२}+२(२१क\ ख)+४९ख^{२}$

ता० २६–५–५६

वर्गित समवर्गित—

$[(१६)^{१६}]=\overline{१६}|^{१}$

इसमें १६ बार १-१ रख कर ऊपर १६-१६ रख कर सोलहों को परस्पर गुणित करे जो लब्ध हो वह $\overline{१६}|^{१}$ है।

$\{(१६)^{१६}\}^{\{(१६)^{१५}\}}=\overline{१६}|^{२}$

इसमें उक्त $\overline{१६}|^{१}$ बार १–१ रखकर ऊपर $\overline{१६}|^{१}$ – $\overline{१६}|^{१}$ रख कर परस्पर गुणा करें जोलब्ध हो वह $\overline{१६}|^{२}$ है।

$\overline{२}|^{१}=२\times२=४=१\ \ {}^{२\times२}_{१}=४$
$\overline{२}|^{२}=४\times४\times४\times४=२५६$
$\overline{२}|^{३}=[(२५६)^{२५६}]=\overline{२५६}|^{१}$
$\overline{२}|^{४}=\overline{२५६}|^{२}\quad=(२५६)^{२५६}\ (२५६)^{२५६}$
$\overline{२}|^{५}=\overline{२५६}|^{३}$

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ता० २७-५-५६

लघुत्तम समापवर्त्य—

८=२×२×२

१२=२×२×३

२४=२×२×२×३

अ^{3}४=अ×अ×अ×स

अ^{2}ब^3=अ×अ×ब×ब×ब

अ^{2}ब=अ×अ×ब

अ ब^2=अ×ब×ब

अ^{2}ब^2=अ×अ×ब×ब

ता० २८-५-५३

ॐ नम सहजसिद्धाय

सहजसिद्धसहस्त्रनामस्तोत्रम्

सहजः सहजानन्दः, सच्चिदानन्द ईश्वरः ।
सदाशिवः स्वयंसिद्धः, परमः पारिणामिकः ॥१॥ ८
एकः समयसारश्च प्रतिभासस्वरूपकः ।
अनादिनिर्विकारश्च, स्वसहायः स्वयम्प्रभुः ॥२॥ १५
भवसृष्टिकरोऽस्त्रष्टा, भवसृष्टिहरोऽहरः ।
शिवसृष्टिहरोऽमर्त्यः, शिवसृष्टिकरः शिवः ॥३॥ २३
महाशिवः स्वयंज्योतिर्धर्मकी प्रभामयः ।
योगीन्द्रार्चित आनन्दी, सिद्धार्थश्च शुचिश्रुतिः ॥४॥ ३१
सर्वशास्त्रमणिः कर्मा–गम्यदुर्गः सुमंगलः ।
असन्मानस्तनूमात्रोऽनपमानः स्वसत्क्रियः ॥५॥ ३८
सत्याशीः परमो मुक्तः स्वयम्भावक्रियामयः ।
ब्रह्मश्रुतेश्च संकेतः, शीलकोषोऽद्भुतोदयः ॥६॥ ४४
सहजज्ञानसाम्राज्यः, सहजानन्दचिन्मयः ।
जगन्निःस्नेहशुद्धात्मा, नयराशेरगोचरः ॥७॥ ४८

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्यग्वृत्ताश्रयः सम्यग्ज्ञानाश्रय उपाश्रितः ।
सहजचिद्विलासात्माऽनन्तवीर्यस्वभामयः ॥८॥ ५३

नित्यानन्दैकरूपात्मा, स्वसामान्यविशेषणः ।
असच्छुभाशुभोऽपुण्य–पापश्च परमः शिवः ॥९॥ ५८

अदीक्षितो दुराधर्षः, सिद्धद्रव्यः शिवेशिता ।
निर्गुणः सगुणः श्रेष्ठः, पुष्टो निष्ठः सदोदयः ॥१०॥ ६९

सर्वादिर्विश्वभूतस्थः, प्रभूष्णुर्विश्वतोमुखः ।
सुभुक् सहजसिद्धश्च, सत्यात्मा महसाम्पतिः ॥११॥ ७५

स्वेष्टो गारिष्ठो बंहिष्ठः, सिद्धांतः सिद्धशासनः ।
ज्ञानेश्वरोऽव्ययो दिव्योऽनुत्पन्नः पूत शासनः ॥१२॥ ८५

निस्तरङ्गो ध्रुवो नित्यो, निर्विकल्पः परात्परः ।
चित्स्वरूपश्चिदानन्दो, निरंशश्च निरन्तरः ॥१३॥ ९४

गुणपर्यायिसाम्यश्च, सिद्धाश्लिष्टो मुनिप्रियः ।
पुरुषोऽत्यन्तशुद्धश्च, समीक्ष्यो महतांप्रियः ॥१४॥ १०१

इति सहजादिशतम् ॥१॥

ॐ ह्रीं सहजादिशतनामवाच्याय सहजसिद्धपरमदेवाय नमः

चैतन्यं सहजज्ञानं, चिच्चमत्कारमात्रकम् ।
अन्तःप्रकाशमानंचिज्ज्योतीरूपं चिदात्मकम् ॥१५॥ १०८

विश्वतश्चक्षुरद्वन्द्वः, सर्वश्रेष्ठश्च शाश्वतः ।
भव्यबन्धुरचिन्त्यश्च, सर्वज्येष्ठोऽचलस्थितिः ॥१६॥ ११६

विश्वज्योतिरमेयश्चा–नुपमोऽसीमसर्वकः ।
प्रभूष्णुरच्युतोऽमोघो, हितः साध्यो विभावसुः ॥१७॥ १२६

अमतात्मा विनेयात्म–बन्धुर्मेशोऽचलद्युतिः ।
पुराणश्चाचलज्योति–र्निष्कामो हि निरामयः ॥१८॥ १३४

कलिघ्नः परमं धाम, कर्मारिर्वागगोचरः ।
स्वाश्रितो विशदज्योति–र्योगिगम्यो ह्यकिञ्चनः ॥१९॥ २१४

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उदारोऽध्यात्मगम्यश्चा–गम्यात्मा नैकरूपकः ।
चैतन्यचिह्न एकात्मा, लोकधातैकरूपकः ॥२०॥
चिन्तामणिर्महादेवोऽरिञ्जयोऽभीष्टदोऽमितः ।
क्षेमङ्करो निराहारः, सन् पुण्यापुण्यपारगः ॥२१॥ १५९
यदभावसुषुप्तश्चा–चेष्टो यद्भावजागृतः ।
अनाकुलस्वसंवेद्यो, मिथ्याभीताभमयप्रदः ॥२२॥ १६४
प्रमेयत्वाद्यचिद्रूपो, ज्ञानदर्शनचेतनः ।
पूर्वापरौघबोधात्माऽमित्रो ज्ञानसुधानिधिः ॥२३॥ १६९
नानात्मशक्तितादात्म्यः, ॐ तत्सच्चिदभावभित् ।
पक्षान्तोऽमृतचन्द्रज्यो–तिरभेषश्च भावभित् ॥२४॥ १७९

ता० ३०–५–५६

समीकरण —

$४\text{अ} = ८ \therefore \text{अ} = २$

$६\text{अ} = १६ \therefore \text{अ} \frac{१६}{६} = \frac{८}{३}$

$४\text{क}^{२} = २५ \therefore \text{क}^{२} = \frac{२५}{४} \therefore \text{क} = \pm \frac{५}{४}$

$५\text{अ} \; २५ = ० \therefore ५\text{अ} = २५ \therefore \text{अ} = ५$

$८\text{अ} + ४० = ० \therefore ८\text{अ} = -४० \therefore \text{अ} = -५$

—<●>—

श्रेकिसंकलन—

२+४+६+८+१०+१२+१४+१६=
=२
२+२
२+२+२
२+२+२+२
२+२+२+२+२
२+२+२+२+२+२
२+२+२+२+२+२+२

Report any errors at vikasnd@gmail.com

२+२+२+२+२+२+२+२

प्रथमपद व अन्तिमपदके जोड़के आधेमें गच्छका गुणा करे

२+१६=१८÷२=९=८=७२

ता० ३१-५-५६

मनुष्य जन्म पाकर श्रद्धान ज्ञान चारित्र उज्ज्वल बनावो पहिले श्रद्धानसे गिर गये उसका सोच मत करो। पसिले चारित्र से गिर गये इसका सोच मत करो। अब तक श्रद्धानसे च्युत रहा इसका सोच मत करो। अब तक चारित्र से च्युत रहा इसका सोच मत करो। सम्यग्ज्ञानको ठीक रहो सब काम ठी हो जायगा। आत्मा प्रतिसमय वर्तमान पर्याय मात्र है। उसमें पहिली पर्यायोंका अभाव है तब गलतियां जो कीं उसका अस्तित्व अब कहां है अब तो यदि गलती कर रहे हो उसका अस्तित्व अब कहां है। यदि वर्तमान स्वभावदृष्टिका परिणाम है तो वर्तमान गलती भी नहीं है। पहिले निर्मल परिणाम थे किन्तु अब गलत परिणाम है तो पहिले का अब फल नहीं है वर्तमान गलत परिणामका गलत फल है।

सोच मत करो महान् अपराध हुए अब कैसे उद्धार होगा। ज्ञान की बड़ी महिमा है, ज्ञानको ठीक बनाओ। गत अपराधका तो अस्तित्व नहीं, वर्तमान अपराध रहने न दो फिर क्या सोच को रहा।

आत्मन्! कुछ करनेको नहीं पड़ा। वस एक निजस्वभाव को पहिचानो और उससे अभीक्ष्ण उपयोगी बने रहो।

ॐ शांतिः, ॐ शुद्धं चिदस्मि, ॐ शांतिः

ता० १-६-५६

ॐ नमः सन्मतिनाथाय। — संसार के प्राणी चाहते हैं कि हमें अत्युत्तम सुख प्राप्त है। और इसके लिये ही प्रयत्न करते हैं परन्तु सफल नहीं होपाते। इसका कारण यह है—अत्युत्तम सुख के स्वरूप का अपरिज्ञान और उसके उपाय का अपरिज्ञान। भगवान महावीर स्वामी ने सत्यसुख और उसके उपायका उपदेश दिया और इससे पहिले वे स्वयं सुखी, सर्वज्ञ हो गये। इस विशेषताके कारण उनकी प्राणमिकता पूर्ण जानकर जन जन उनका कृतज्ञ है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सन्मतिनाथ ने दिव्यवाणी में प्रकट किया—कि हे आत्मार्थियो ! आत्म-कल्याण के लिये सबसे पहिले अपना और परका यथार्थ ज्ञान करो। यथार्थ ज्ञान का साधन स्याद्वाद है। इसका भी कारण यह है कि प्रत्येक वस्तु अनेकान्तात्मक है। अनेकधर्म वाली वस्तु का यथार्थ ज्ञान अपेक्षावाद बिना नहीं कराया जा सकता है। जैसे लोक में—अमुक पुरुष पुत्रकी अपेक्षा पिता है, पिताकी अपेक्षा पुत्र है मामाकी अपेक्षा भानजा है आदि अपेक्षावादसे उस पुरुषका पूरा ज्ञान कराया जाता है। इसी तरह आत्मा आदि पदार्थोंका अपेक्षावादसे पूरा ज्ञान कराया जाता है। प्रत्येक पदार्थ अनेकान्तात्मक है। यथा—आत्मा द्रव्यदृष्टिसे नित्य है और पर्यायें बदलती रहती हैं सो इस अपेक्षासे अनित्य है। यह सब निरूपण स्याद्वादसे ही हो सकता है। आत्माकी अनंत-शक्तियोंका परिज्ञान करो जिससे फिर आत्माके ध्रुव एक चैतन्यस्वभावकी प्रतीति हो जावे। इस प्रतीतिके होने पर हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह इन पांच पापोंसे निवृत्ति होती है। पश्चात् स्वभावमें लीन होनेपर शरीर, कर्मकी भी उपाधियां भी समाप्त हो जाती हैं। उस समय यह परमात्मा होकर अनंत सुखी हो जाता है।

ता० २–६–५६

सुख वही है जहां आकुलता नहीं होती है और जहां राग द्वेष मोह नहीं है वहां आकुलता नहीं होती। अतः भव्य आत्मावो ! स्याद्वादके उपायसे अनेकान्तत्मक निज आत्मा को पहिचान कर अपरिग्रह व्रतके द्वारा पूर्ण अहिंसा का पालन करो। यह श्री महावीर भगवान्‌के दिव्योपदेशका सार है। जो आत्मा इस उपदेशके अनुसार चलेगा वह परमसुखी होगा।

भगवान महावीर प्रभुका उपदेश सभी जीवोंके उपकारार्थ था। जिन प्रभुके अहिंसा तत्त्वको उपयुक्त कर आज स्वराज्य मिला, यदि उनके उपदिष्ट धार्मिक सभी ज्ञान विज्ञानोंका पालन करें तो निश्चय ही स्व का राज्य अर्थात् आत्माका राज्य प्राप्त होगा। इसके लिये सबसे पहिले जगतकी विभूतियोंको असार जानकर ज्ञानार्जन में लगनेकी महती आवश्यकता है।

वीर–सन्मतिनाथ की भक्तिसे सबको सन्मति प्राप्त हो यही मेरी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भावना है।

ता० ३-६-५६

चैतन्यैकरसः साक्षा-द्धर्मो भुवनभूषणः।
अखण्डितप्रतापश्च, समाधिव्यक्त उत्पदः ॥२५॥ १८५
वीतरागचिदानन्दैक-स्वभावः सदाद्युतिः।
परापोहकचैतन्यः, सहक्रमगवृत्तिगः ॥२६॥ १८९
मध्याद्यन्तविभागान्त-श्चैतन्यैकसुचिह्नतः।
निजचैतन्यलोकस्थस्थः, स्वयंगुप्तः सुरक्षितः ॥२७॥ १९४
आकस्मिकापदातीतः, शुद्धचिच्चिन्मयः स्वजः।
शुद्धज्ञानघनो रागा-द्यनिमित्तः स्वचेतकः ॥२८॥ २०१

इति चैतन्यादिशतम् ॥२॥

ॐ ह्रीं चैतन्यादिशतनामवाच्याय सहजसिद्धपरमदेवाय नमः

गुणपुञ्जोऽव्ययीभावः, शिवशङ्करदृष्टिदः।
स्वचतुष्टयमात्रः श्री-गर्मो धाता परो वृषः ॥२९॥ २०९
अविनाशी स्वतःसिद्धो, विभक्तो ज्ञायको विभुः
एकत्वनिश्चितोऽखण्डोऽनादिमुक्तः समः शिवः ॥३०॥ २१९
असंख्यातप्रदेशश्चा-नन्तगोऽनन्तचिल्लघुः।
पार्श्वोऽधिभूरधीशानो, न गुरुर्न लघुर्गुरुः ॥३१॥ २२९
एकस्वरूप एकाकी एकी सकत्वनिश्चितः।
अशिष्योऽशासकः शास्ता शूरदेवः स्वभूः श्रितः ॥३२॥ २३९
उपयोगलक्षणोऽमूर्त-स्वभावश्चिन्महोनिधिः।
नवतत्त्वगतोऽद्वैतो, नवतत्त्वसमावृतः ॥३३॥ २४५
रूपापरिणतो द्रव्ये-न्द्रियारूपित उद्धरः।
गन्धापरिणतो द्रव्ये-न्द्रियाघ्रात उमापतिः ॥३४॥
द्रव्येन्द्रियाश्रुतोऽशब्द-पर्यायो मुक्तिकारणम्।
शब्दापरिणतः स्पर्श-परावृत्तस्त्रयीमयः ॥३५॥ २५७

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रसापरिणतो द्रव्ये-न्द्रियास्पृष्टः सुधावहः ।
द्रव्येन्द्रियारसः श्रीयुग्भावेन्द्रियनिराश्रितः ॥३६॥ २६३
कर्मनिर्जीर्णतामूलं, निर्ममो गुणवाहकः ।
स्वव्याप्यानेकपर्यायो, मुक्तामुक्तस्वरूपकः ॥३७॥ २६८

ता० ४-६-५६

वेदाङ्गी सर्वतोभद्रो, वेदान्तः सुप्रभो मनुः ।
ज्ञानिविख्यातगोत्रः स्व-रूपगुप्तश्च कामदः ॥३८॥ २७६
विज्ञानघननिर्मग्नों गुणसम्पन्न उत्तमः ।
ज्ञानमात्रस्वभावश्च नानाशक्तिसमाहितः ॥३९॥ २८१
नवतत्त्वसमाच्छन्नोऽभिवन्द्यो मूलमङ्गलम् ।
सुदृक्कल्णाणसर्वस्वोऽध्यात्मगम्यः स्वधर्मराट् ॥४०॥ २८८
निगमः सिद्धसाम्यश्चा-खिलोपाधिविवर्जितः ।
परमाह्लादसत्स्त्रोतश्चैकवच्छुद्धपर्ययः ॥४१॥ २९३
ज्ञानमात्रात्मवस्तुत्वो, नीरन्ध्रः सुफलो गुरुः ।
निःसहायो निरारम्भो, गुणराशिर्निरङ्कुशः ॥४२॥ ३०१

इति गुणपुञ्जादिशतम् ॥३॥

ॐ ह्रीं गुणपुञ्जादिशतनामवाच्याय सहजसिद्धपरमदेवाय नमः

अनन्तः परमानन्दो, निःसङ्कल्पो निरास्त्रवः ।
अहेतुको वृषोऽकर्ता, भूतसृष्टिस्वकारणः ॥४३॥ ३०८
अभेदोऽविचलः शुद्धो, निरूपोऽप्रतिघातकः ।
अबद्धो नियतोऽस्पृष्टोऽसंयुक्तोऽतीतकल्मषः ॥४४॥ ३१८
अभोक्ता वृषभः शम्भु-र्गतसर्वनयोऽमरः ।
अशत्रुः साम्यसत्स्वास्थ्वो, निजकल्याणमन्दिरम् ॥४५॥ ३२६
अयुग्विधिनिषेधात्मा प्रकाशस्थ उपेक्षकः ।
अनन्तानन्तरूपश्चाऽ-बोधाव्यक्त उदाधृतः ॥४६॥ ३३३
अस्तभेदविकल्पोऽना-सङ्गो भूतहितोऽफलः ।
अस्खलितैकवस्तुत्वो, भावापायोऽव्ययोऽकुलः ॥४७॥ ३४१

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनन्याधिकृतो ज्ञानप्र–माणः शैवकारणम् ।
अनष्टज्ञानप्राणश्च, स्वतस्त्राणमयः स्वभूः ॥४८॥ ३४७
अहेतुज्ञानरूपैकोऽ–हेतुज्ञपर्येकसत्क्रियः ।
अखण्ड नित्यसामान्यः संसारच्छेदकारणम् ॥४६॥ ३५१

ता० ६–६–५६

सभी जीव सुख चाहते हैं परन्तु संस्कृत धारणा ऐसी रहती है कि अपने पूर्वसंस्कार के विरुद्ध अन्य बात पर विश्वास अथवा उसकी जानकारी के लिये तैयारी नहीं करना चाहिते।

धार्मिक मामलेमें कुछ पढ़े लिखोंका उपर्युक्त हाल विशेषतया होता। आजकल के अनेक ऐसे समझदार जो धार्मिक मामलेमें रुढि पद्धतिसे जानकारी नहीं रखते अथवा कुछ भी धार्मिक जानकारी नहीं किन्तु प्रतिभा समझनेकी है वे पक्षको छोड़कर सत्य समझनेके लिये तैयार हैं किन्तु सत्यधर्मी ऐसे उदासीन हैं कि उनकी ओरसे प्रचारका विशेष प्रोग्राम नहीं होता। कुछ तथ्य यह भी है कि सत्य समझने पर बाह्य प्रक्रियाओंसे उपेक्षा हो जाती है। पुन-रपि-सत्य समझ होजाने पर भी राग रहता है तो उसे विषय कषाय में न लगाकर परको शांतिके पथ को बनाने के उपकार में लग जावो।

ता० ७–६–५६

हे परमात्मन् तेरी भक्ति मुझे अनेक संकटों से बचा सकती। संकट हैं विषय कषाय। भक्ति विषयकष्तय की विपत्तियोंसे बचा ही देती है। अहो यह भक्ति व्यवहार मेरा शरण है। यह जानकर भी कि परम तत्त्व कारण-समयसार का अवलम्बन सकल क्लेशोंसे दूर कर सकता, संसार के बन्धन से पृथक् होनेके लिये इसी परम निर्विकल्प तत्त्वका शरण होना ही होगा। तथापि इस परिस्थिति में हम हैं कि मुक्त प्रभुको भक्ति बिन प्रेक्टीकल कृति गिर रही है। प्रभुभक्ति स्वभावदृष्टिका द्वेषी भाव नहीं है। प्रभुस्वरूप को चितार चितार उत्साह होता है वीतरागतामें आनेको और मन करता है अभेदवृत्ति में जमनेको।

हे अर्हन् हे सिद्ध हे निर्मल हृदयमें विराजो क्योंकि मुझे अन्य पर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चिन्ता सुहाती नहीं है तुम्हारे विराजने पर परचिन्ता राक्षसी ढूंक नहीं सकता ।

मेरा किसी परसे हित नहीं सो लो यह तो मैं सर्व परसे मुख मोड़ बैठ ही जाता हूं ।

अपने आप जो हो सो हो मैं तो कुछ भी विचार नहीं करना चाहता ।

ता० ८–६–५६

आत्मन् कहां जाने में तुम्हारा लाभ है ? तुम्हारा तुम्हीं में रहने से लाभ है । जानेके विशेष वितर्क न करो ।

आत्मन् किससे बोलनेमें तुम्हारा लाभ है तुम्हारा तुम्हींमें मौन होनेसे लाभ है । न बन सके यह, तो खुद के लिये हितनिकटकारी अन्तर्जल्प कर लो बोलनेके विशेष वितर्क न करो ।

आत्मन् किसे सोचने में तुम्हारा लाभ है ! तुम्हारा तुम्हीं में निर्विकल्प रहनेमें लाभ है । सोचने की कसरत न करो । न बन सके यह तो सोचो आत्मस्वभाव । अन्य कुछ सोचनेका फन्द न लगावो ।

आत्मन् किसे देखने में तुम्हारा लाभ है ? तुम्हारा तुम्हीं में तुम्हारे दर्शनसे लाभ है संयमसे अर्थ देख लो, अधिक से अधिक स्वाध्यायके लिये देख लो, बाकी तो अपने पर दया करो ।

आत्मन् क्या खाने में तुम्हारा लाभ है तुम्हारा तुम्हारे ही स्व के अनुभवके भोग में तुम्हारा लाभ है । अब गले पड़ गया शरीर, क्षुधाका उपसर्ग होगया तो खालो शुद्ध भोजन किन्तु खानेके विशेष वितर्क न करो ।

ता० ९–६–५६

देखो भैया ! तुम्हारी दया के लिये आंख पर पलक हैं और मुंह पर ओंठ हैं । पलकों से आंख बन्द करो ओंठों से मुंह बन्द करो–देखना बन्द करो बोलना बन्द करो । देखना बन्द करके भी तुम्हें अन्दर अनुपम प्रभु देखनेको मिलेगा । बोलना बंद करके तुम्हें अन्दर अनुपम प्रभु से भेंट हो सकेगी ।

एक बार तो सब विकल्प छोड़कर अभेद ज्ञानस्वभाव स्व के अनुभव द्वारा अनाकुल सहज आनन्दको देखले । यदि तुझे वहां कुछ क्लेश मिले तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

फिर सदाके लिये उससे मुख मोड़ लेना और संसार बंधन में डटे रहता फिर कुछ न कहूंगा। तू ने बहुत बार भी तो अन्य सब जगह उपयोग दे देकर परीक्षा कर डाली उन अनन्त वारों के सामने यह एक बार तुझे भार हो जायगा ?।

इन्द्र सारिखी संपदा चक्रवर्ति के भोग। काक वीट सम गिनत हैं सम्यग्दृष्टि लोग। (अज्ञात)

तुझे कोई जाने नहीं उसमें और अधिक सहूलियत है यदि अन्तर्दृष्टि पाली।

क्या कभी एक म्यान में २ तलवारें रह सकती हैं ?

क्या कभी एक उपयोगमें प्रभु और शैतान दोनों रह सकते हैं ?

ता० १०-६-५६

जब चित्त थम जाता है अच्छे विचारोंमें आगे नहीं बढ़ता तब आकुलता होती है उसे मेटनेके लिये चित्त चाहता है—कुछ लिखने बैठो, लिखने भी बैठे तो क्या लिखा जाय। न भी कुछ लिखने का विषय हो तो भी आश्रय कुछ समय बाद मिल ही जावेगा।

शरीर को आराम में मत रखो तपस्या में लगा दो। यद्यपि तपस्या आत्माकी होती है तथापि इच्छानिरोध के कालमें जो विषयप्रवृत्ति रुक गई उससे जो कामकी अनेक स्थितियां आती हैं उन्हें भी उपचारसे तपस्या कहते हैं। आत्मीय तपस्यामें रहकर जो मन विश्राम को पाता है उससे काम भी आराम में रह जाता है।

समस्त परके विकल्प छोड़ निर्विकल्प आत्मस्वभावमें उपयोग कर फिर सहज निर्विकल्प हो जावेगा।

अभेद स्वभाव निज की दृष्टि तपस्या है।

अभेद चैतन्यस्वभाव की दृष्टि तपस्या है।

ज्ञानदर्शन स्वभाव की दृष्टि तपस्या है।

ज्ञानदर्शनस्वभाव की विचार तपस्या है।

निरीह परमात्मा की भक्ति तपस्या है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होने वाली इच्छाको ज्ञानबलसे रोक देना तपस्या है अगर ऊपरकी तपस्यामें न रह सको तो नीचे वाली तपस्याओं में चलो। कहीं ऐसा मत कर बैठना कि चौबे गये छबे होनेको वे दुबे ही रह गये।

ता० ११-६-५६

क्या कभी दूसरोंके मर जाने पर जैसा वह शरीर शीघ्र लेजाकर गृहस्थों द्वारा जला दिया जाता है—अपने सम्बन्ध में भी विचार किया ? क्या यह विश्वास है कि इस शरीरसे मेरे जुदे होने पर यह शरीर दूसरोंके द्वारा पाला पोषा जावेगा या जलाया, गाढ़ा या बरबाद न किया जावेगा। अथवा क्या यह विश्वास है कि इस शरीर से मैं जुदा न होऊंगा।

जब ये दोनों बातें होनेकी नहीं तब किस भरोसे प्रमादमें पड़ा। विषयकषायकी वृत्तिरूप प्रमादको छोड़। इस शरीर से बिलकुल मोह तज। क्या करना पड़ता है क्या करना पड़ेगा। सच जान यदि अन्तर्दृष्टि रखो तो वस्तुतः आराम मिलेगा।

तेरा वश ज्ञाता द्रष्टा रहने तक है किसी वस्तुका कुछ परिणमन कर देना भी तुम्हारे वशका नहीं, राग द्वेष कर लेना भी तुम्हारे वशका नहीं जिस कार्यके तुम्हीं तो उपादान हो और तुम ही निमित्त हो वह कार्य तुम्हारे वश का है। कारन द्रव्य परिणमन सामान्यका सामान्य द्रव्योंका सामान्य हेतु है अतः उसकी विवक्षा प्रायः सर्वत्र गौण रहती है।

राग न होने देने में तुम क्या वश चलावोगे, राग का कर्मोदय के साथ निमित्तनैमित्तक सम्बन्ध है। कर्मोदय है तो रागादि होगा ही। हो इस समय भी तुम ज्ञानवलको संभालो तो रागादिके ज्ञातामात्र रहकर आकुलता से पिण्ड छुटा लोगे। यद्यपि रागादि आत्माके चरित्र गुण की परिणति है तथापि ज्ञान रागका साथ न दे तो रागको मिटना ही पड़ता है उसके संतान नहीं होगी।

ता० १२-६-५६

बाह्य जड़ समागम मिट जाना है मित्र बन्धु आदि का समागम भी मिट जाना है, नामवरी भी मिट जानी है। करतूतें भी मिट जानी है, यह विज्ञानबाजी भी मिट जाती है, शरीर तो बुरा ही हाल पाकर मिटना है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

फिर रह क्या जाना है विचारा कभी।

देखो रह जाना है किसी योग्यता वाला उपादान जिसको कारण पाकर योग्यताके अनुकूल परिणमनका सर्जन होगा। सो अब करना क्या है—योग्यता उत्तम बनावो। योग्यता उत्तम कैसे बनानाबनानेके यत्नसे नहीं बनेगी—आप तो अपने ध्रुव स्वभावको पहिचान कर—जो कि सहज अविकारी है—उसकी दृष्टि किये रहो। योग्यता उत्तम होवेगी भविष्यमें सुगति होगी आत्मदृष्टि रहेगी। आत्मस्वभावावलंबनके प्रसादसे संसारबंधनोंसे मुक्त हो जावेंगे स्वतन्त्र, सहजानन्द हो जावोगे।

मनुष्य कमजोरी का घर है माना किन्तु तुम मनुष्य तो नहीं हो, आत्मा हो—आत्माकी शक्ति विचार कर सामर्थ्य संभालो। मैं कमजोर हुं ऐसा सोच कर शिथिलतासे नयन मिलावोगे तो संभलना कठिन है—आत्मा शक्तिमान है ऐसा मानोगे तो कहा चित्र शिथिलता भी हुई तो भी संभल जावोगे।

ता० १३–६–५६

आत्मोद्धारके लिये पुरुषार्थ वर्तमान का करता है—पूर्व कृत अपराध तो व्यय अवस्थाको प्राप्त होगये उनका तो लेश भी वर्तमान में नहीं है। वर्तमानमें तो वर्तमान अपराध है और वह अपराध भी क्या है ? आत्मदृष्टि से च्युत रहना जो कि परदृष्टिरूप या विकल्पोंपयोगरूप है। यह अपराध परम स्वभाव निज पारिणामिक भावकी दृष्टि से दूर होजाता है। जिसमें उपयोग में चैतन्य प्रभु हैं उस उपयोग में अपराध शैतान नहीं ठहर सकता है।

अहो देखो आत्मवीर्यकी वर्तमान संभालकी कितनी बड़ी महिमा है कि शुद्ध प्रभु परमात्माके दर्शन हो जाते। इतना ही नहीं कुछ समय तक प्रभुके दर्शन बने रहें तो सर्वक्लेशबंधन सदाके लिये दूर हो जाते।

आत्मामें अपराधरूप कमजोरी होनेपर प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान, प्रायश्चित, अलोचना होना चाहिये सो एक यह स्वभावालंबन ही निश्चयतः, अमोघ प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित, आलोचना है। इस उत्तमार्थ में विराजे रहो अपराध भी न होंगे तुम्हारा परम अभीष्ट तुम्हारे में सहज मिल जावेगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निरपराध परमात्मन् ! हृदय में विराजे तबतक विकल्परूप अपराध रहे ।

ता० १४–६–५६

जगतमें द्रव्य अनंतानंत हैं–अनंतानंत जीव, उनसे भी अनन्तगुणे अनन्तानन्त पुद्गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य, असंख्यात-काल द्रव्य । ये प्रत्येक द्रव्य सामान्यविशेषात्मक हैं । सामान्य २ प्रकारका है अभेदसामान्य, त्रैकालिक सामान्य । विशेष २ प्रकारका है भेद विशेष, अध्रुव विशेष । पदार्थकी शक्ति आदि गुण भेद भी न करके अभेद रूप से देखनेपर अभेदसामान्य देखा जाता है । पदार्थमें गुणोंका भेद करके अनेक गुणरूप देखनेपर भेदरूप विशेष देखा जाता है । एक ही पदार्थकी सब अवस्थाओं में याने तीनों कालोंमें एक स्वभावरूप रहनेवाले तत्त्वको त्रैकालिकसामान्य कहते हैं । एक पदार्थ में प्रतिक्षण होनेवाली अवस्थावोंको अध्रुवविशेष कहते हैं ।

त्रैकालिक सामान्यका दूसरा नाम ऊर्द्धतासामान्य है । अध्रुव विशेष का दूसरा नाम ऊर्द्धताविशेष है ।

अभेदसामान्य २ प्रकार का है–१–एक अभेद, २–जाति अभेद । अभेद सामान्य का दूसरा नाम तिर्यक्सामान्य है ।

भेदविशेष २ प्रकारका है १–गुणभेदविशेष २ पृथक्सत्ताक विशेष । भेदविशेषका दूसरा नाम तिर्यग्विशेष है ।

ता० १५–६–५६

सामान्यविशेषका विवरण इस प्रकार हो गया–

१ त्रैकालिकसामान्य (ऊर्द्धतासामान्य), २ अध्रुव विशेष (उर्द्धता-विशेष), ३ एक अभेदसामान्य ४ जाति अभेदसामान्य, ५ गुणभेदविशेष, ६ पृथक्सत्ताक विशेष । इनका दिग्दर्शन इस प्रकार है—१ अनाद्यनंत आत्मा सामान्य, त्रैकालिक सामान्य है । २ एक ही आत्मा के नारक मनुष्य आदि पर्याय क्रोधी मानी आदि पर्याय अध्रुव विशेष है । ३ सर्वगुणोंका अभेद एक पिण्ड आत्मा एक अभेद सामान्य है । ४ सब आत्मावोंको जातिकी मुख्यता से आत्मा कहना जाति अभेद सामान्य है । ५ आत्मामें ज्ञानगुण दर्शनगुण सुख

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गुण आदि भेद करना गुणभेदविशेष है। ६ अनेक आत्माओंका नारकी तिर्यञ्च मनुष्य आदि पर्यायोंसे उन उन रूप कहना–पृथक्सत्ताक विशेष है।

वस्तुमें सामान्यस्वभाव स्वतःसिद्ध है और विशेष स्वभाव भी स्वतः सिद्ध हैं।

वस्तुका सामान्य ध्रुव है वस्तुका विशेष उत्पाद व्ययलक्षित है। वस्तु का विशेष उत्पादव्ययवाला पर्याय है और वस्तुका सामान्य अंश होने से पर्याय है तब उत्पाद व्ययध्रौव्ययुक्तं सत् यह पर्यायदृष्टिसे लक्षण हुआ।

ता० १६–६–५६

परवस्तुविषयक मोह छोड़ा क्यों नहीं जाता इस बातपर ज्ञानियोंको आश्चर्य होता और अज्ञानियों के सिर पर बीतती है विपदा।

मिर्चके शौकीन जैसे आंसू बहाते जाते और मिर्च खाते ऐसे ही अज्ञान भावके शौकीन आकुलता सहते जाते और मोह करते जाते।

गाली देने के शौकीन जैसे गाली देते जाते और डंडे सहते जाते ऐसे ही विषय भोगनेके शौकीन अपमान सहते जाते और विषय भोगते जाते अन्य को तुच्छ समझना भी एक तुच्छता है। आत्मन्! पर विषयक विकल्प क्या तेरा लाभ है या हानि।

अपना काम सम्हाल ले देख असावधानी न कर। सर्व विशेष सामान्य हो जाय तेरी नजरमें सो ही उद्यम कर।

कहां पड़ा है शरीर चिन्ता मत कर
कहां खड़ा है निमित्त चिन्ता मत कर
कहां मड़ा है संयोग चिन्ता मत कर
कहां गड़ा है कर्म चिन्ता मत कर
कहां घड़ा है परिणाम चिन्ता मत कर
कहां चड़ा है चित्त चिन्ता मत कर
कहां जड़ा है राग चिन्ता मत कर

तू एक ध्रुव निजभावही को तो देखता रह, जो भी अच्छा होता है वही होकर रहेगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ता० १७–६–५६

कोष्ठक नियम—

१ कोष्ठक के समक्ष यदि "+" चिन्ह हो तो कोष्ठक तोड़नेपर चिन्ह ज्योंके त्यों रहेंगे। जैसे : —४+(५—२)=—४+५—२=—१। —अ+(ब—स)=—अ+ब—स दो कोष्ठक क समक्ष यदि "—" चिन्ह हो तो कोष्ठक तोड़नेपर कोष्ठक के भीतर के सभी पदोंके सामने के चिन्ह बदल जाते हैं। जैसे :— +१०—(६—४)=१०—६+४=८। अ—(४—२अ)=अ—४अ+२अ=—अ ३ कोष्ठकके समक्ष यदि कोई चिन्ह न हो तो कोष्ठक के बाहर रखे हुए पदसे उसके भी तरके समस्त पदोंके साथ चिन्हानुसार संक्रण न होता है। जैसेः —४(—५+६)=९—१०=—१, —क(—क+ख—क²)=+क²—क ख+क³ ४–यदि कई कोष्ठक हों तो सबसे पहिले छोटे कोष्ठक तोड़ना चाहिये और अन्त तक ऐसा ही क्रम रखना चाहिये। कोष्ठक का किसी भी जगत स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है जब तक कि वह तोड़ न दिया जावे। जैसे : +८—[१०+(५—ब)+९]= ८—[१०+५—ब+९]=८—[२४—ब]=८—२४+ब=—१६+ब।

४अ—[५ब+(१०—६ब)—८]=४अ—[ब+१०—६ब—८]= ४अ—[—ब+२]=४अ+ब—२।

६—[८+{१०—(६—अ)—४}+१०]=६—[८+{१०— ६+अ—४}—१०]=६—[८+१०—६+अ—४+१०]=६—[१८ +अ]=६—१८—अ=—१२—अ।

चंचलता ही क्षोभ उत्पन्न करवाती है और चंचलता ही धैर्यके लिये उत्साहित करती है। जिनके चंचलता नहीं उनके न क्षोभ है और न धैर्यके लिये यत्न है। बहिदृष्टि नहीं है उनके न परके उपाकारकी बुद्धि है और न परके अपकार की बुद्धि है। रागसे ही संसारका मार्ग चलता है और रागसे ही मोक्षका मार्ग चलता है जिनके राग नहीं उनके किसी मार्ग पर जानेका यत्न नहीं।

आत्मन् यह नरजन्म कल्पवृक्ष है और ऐसा अनुपम कल्पवृक्ष है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह बिना मांगे ही उत्तमफल देता है और मांगनेपर देता नहीं है।

इस मनुष्यदेह के वशमें रहे याने इसके अनुरागी रहे तो देख यह देह तो विनसेगा ही फिर तेरे हाथ क्या रहेगा ? पापकलंक। इसका फल क्या होगा दुर्गति। उसमें क्या रहेगा वहिर्दृष्टिसे होनेवाला महान् संक्लेश। वह तुम्हें रुचेगा नहीं दुखी हो ओगे।

ता० १९–६–५६

अब ममत्वत्यागरूप महान् तप कर लो जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा ही मानते रहो।

सभी पदार्थ अपनी अपनी ही सत्तामें रहते हैं अतः प्रत्येक का सबमें साथ अत्यन्ताभाव है। ऐसा अत्यन्ताभाव जिसकी समझ में है प्रत्येक पदार्थ की स्वतन्त्रता जिसके प्रतिभास में है उसे मोह सता नहीं सकता।

मोह ही एक मात्र दुःख है। मोह गया दुःख गया। मोह हुआ उसके साथ ही दुःख आया।

ज्ञानानुभूति ही परम आनन्द है ज्ञानानुभूति नहीं तो वहां परम आनन्द भी नहीं, ज्ञानानुभूति हुई उसके साथ ही परम आनन्द होगया।

जब तक मोह विकार है परसंयोग छूट नहीं सकता, मोह विकार गया परसंयोग छूटनेमें विलम्ब नहीं।

संसारमें समता ही सार है शेष सब असार है संसार मोहके अनुसार है अन्यथा ज्ञानका प्रसार है। संसार अपनेपरिणामका विसार है शेष सब उपसार है। संसार मिटनेका स्वसमय आसारहै शेष सब निःसार है।

ता० २०–६–५६

मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि–सर्वधन
आदी अन्ते सुद्धे वट्टिहिद रूवसंजुदे ठाणे–गच्छ
आदिधनोनं गणितं पदोनपदकृतिदलेन संभाजितं–चय
व्येकपदार्धघ्नचयगुणितगच्छ उत्तरधनं–चयधन
व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं धनं–अन्तधन
पदाभाजितं चयधनमादिधनं–आदिधन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आदिधनं पदाभ्यस्तं पूर्वधनं–सर्वआदिधन

स्वयं स्वमें लीन हो जावे बाह्य विकल्प न रहे यही एक काम रह गया करनेको बांकी तो सब धोका है विपदा है।

खुद खुदमें कैसे लीन हो सके इसका उपाय पर से हटना है। पर से कैसे हटा जाय? सम्यग्ज्ञानी होकर विकल्प हटालो। यदि यह तुझ से नहीं बनता तो और तो कोई उपाय नहीं। करना तो यही पड़ेगा। आगे यह करोगे तो अभी से क्यों नहीं कर लेते हो।

स्व के लिये स्व ही महान् है परन्तु वह स्व तेरे लक्ष्यमें कैसे आवे? स्व के अनुभवके लिये तो बाह्य परिचय-विश्वास-चक्र-छोड़ना पड़ेंगे। पदार्थ को जैसा का तैसा जानते रहो फिर कोई बिडंबना नहीं रहेगी। क्या करना! पदार्थको किसीको भी एकको देखो उस एकको ही जानो स्वतन्त्रता देखो सब उचित परिवर्तन अभी हो जावेगा।

ता० २१–६–५६

जीवका नारक तिर्यंच मनुष्य देव होना निमित्तनैमित्तक भाव से औटोमेटिक होता रहता है–आप कुछ चाहोगे और कुछ बनोगे तुम्हारावश वहां नहीं। हो आप कुछ न चाहोगे तो निर्मल अवस्था मिलेगी वहां जरूर वश है। जैसे भाव करोगे वैसे कर्ममें स्वयं बन्धना होगा–जैसा कर्म उदय होगा वैसी गतिभ्रमणा होगी। यह निमित्तनैमित्तक सम्बन्ध की गति है। तुम्हें अनन्त दुःख नहीं चाहिये उसकी एक ही कुंजी है स्वशुद्धात्म सम्यक्-श्रद्धानज्ञानानुष्ठान रूप एक ज्ञातापरिणाम। तुम्हें अनन्त दुःख चाहिये हो तो उनकी अनेक कुञ्जी हैं–विविध मिथ्यात्व अविरति व कषाय।

जरा यहीं मनको समझा लो तो अनन्तक्लेशों से बच जावोगा–जरा मनको ढीला कर दो तो संभव है कुछ पता भी न चलेगा कितना पतन हो जावेगा।

धर्मपथ में चलते हूए कष्ट आवें तो जरा कष्ट सहलो अन्यथा क्या पता कैसे कष्ट आवेंगे जिनका पार भी न पा सकोगे।

इज्जत पाई तो गर्राहट मत करो नहीं तो नहीं तो उस आकुलता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के कारण तुम तुच्छ होगे जिससे अच्छे तो वे जिनकी इज्जत नहीं है।

ता० २२-६-५६

धन पाया तो गर्राहट मत करो नहीं तो उसके आकुलता के कारण तुम तुच्छ होगे जिससे अच्छे तो वे जिनके धन नहीं है।

आजकल लोग इसमें विवाद करने लगे हैं कि पूजा से पुण्य होता धर्म नहीं होता है एवं पूजासे धर्म होता है। वास्तविकता तो यह है पूजाकी कुछ न पूछो पूजक आत्माकी पूछो बात। पूजक आत्मा सम्यग्दृष्टि है तो उसके पूजाके समय दो धारा चल रही है ज्ञानधारा अनुरागधारा। दोनों धारावों के पर्यायरूपमें भी एक साथ चलने में कोई विरोध नहीं है क्योंकि ज्ञानगुणका व चारित्रगुणका परिणमन तो चलेगा ही उसमें क्रमवर्तिता नहीं है। तो जब ज्ञानधारा व अनुरागधारा दोनों एक साथ चलते हैं फिर ज्ञानधारासे होनेवाले धर्म के व अनुरागधारासे होनेवाले पुण्यके एक साथ होनेमें कोई विरोध नहीं है। पुण्य व धर्म के एकसाथ होनेको बात तो कुछ जल्दी भी समझमें आ सकती किन्तु देखो तो सम्यग्दष्टिके जब कदाचित् पापपरिणाम भी हो तो वहां भी ज्ञानधारा व अशुभ परिणामधारा दोनों एक साथ चल रही और वहां पाप व धर्म एक साथ होजाते हैं। देखो सत्यता दोनोंमें है किन्तु नयबोध का उपयोग न लेनेसे व्यर्थ ही विवादका अड्डा बनाया है।

ता० २३-६-५६

कुछ लोग जरासा ज्ञान पाकर जिनतीर्थधारामें भी कुछ विलक्षणता दिखवाकर अपनी बहिर्दृष्टि पोषकर अपना अकल्याण करते हैं। अपनेको जिनतीर्थधारामें ऐसे घुल मिलकर रखना चाहिये था कि किसीको पृथक्रूप से बातका तो क्या अपना भी पता न रहता।

मैं दुनियांके लिये कुछ नहीं, मैं हूं बस अपने लिये। अहो यह वाक्य सुननेमें भद्दा लगता किन्तु वस्तु स्वरूप की दृष्टि रखकर इसका मर्म आजाय तो भैया भद्दा याने भद्र-कल्याण होजावे।

तुम अपने स्वभावको पहिचानो और स्वभावके अनुसार चलो। तुम्हारा कुल चैतन्य है तुम अपने कुलको पहिचानो और कुलके अनुसार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चलो। तुम्हारी जाति चेतना है तुम अपनी जाति पहिचानो और जातिके अनुसार चलो। तुम्हारा धन वैभव तुम्हारा सामर्थ्य है तुम अपने धन वैभव को पहिचानो और धन वैभवके अनुसार चलो। तुम्हारे भाई बंधु तुम्हारी चेतनामें बसनेवाले अनन्त गुण हैं तुम अपने भाई बन्धुवों को पहिचानो और उनके अनुसार चलो। तुम्हारी रमणी तुम्हारी निजकी सहज परिणति है तुम अपनी रमणी को पहिचानो और उसके अनुसार चलो।

ता० २४–६–५६

निर्विकल्प होना तो चाहते हो और यत्न भी करते हो निर्विकल्प होनेके लिये। सो भैया देखो प्रथम तो निर्विकल्प होना चाहते हो यह भी एक विकल्प है फिर निर्विकल्प होनेका यत्न है वह भी एक विकल्प है। फिर भी निर्विकल्प होनेके लिये उस विकल्पको मना नहीं करते। वह तो होवेगा किन्तु उसे प्रतिषेध्य जानो। और भी देखो तुम्हारा वश सर्वत्र ज्ञाता रहनेमें चल सकता है सो निर्विकल्प होने के भाव और यत्न होनेपर भी जो निर्विकल्प नहीं हो पाते हो और उसकेएवज विकल्प तक रह जाते हो सो घबड़ावो तो हो न, तुम तो जो हो रहा है उसके ज्ञाता बन जावो। मान जावो तुम्हारा काम बनेगा।

एक नेत्रेन्द्रियकी छुट्टी कर दी जावे याने उससे काम न लेवे तो आत्माको बड़ा विश्राम मिल सकता है। लोग कहते हैं कि स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रिय खराब हैं किन्तु देखो स्पर्शन और रसना को उत्तेजना देनेवाली कौन इन्द्रिय है। अच्छे रूपको देखा सुहावना लगा और स्पर्शनइन्द्रियको उत्तेजना मिली। अच्छे पकवान को देखा या अच्छी गन्धता ली रसना-इन्द्रियको उत्तेजना मिली अब बढ़िया पकवान खाने की रीस उत्पन्न हो गई। नेत्रेन्द्रिय से देखनेका काम न लेवे तो स्पर्शन रसना तृष्णा उत्पन्न न हो। अभ्यास करो जितना हो सके अधिकसे अधिक उतने काल नेत्रको बन्द रखो।

ता० २५–६–५६

इन्द्रिय देखती और जानती नहीं है किन्तु इन्द्रिय एक चश्मावत् है। जैसे चश्मा स्वयं देखता नहीं है किन्तु चश्मा उपकरण को निमित्तकरके नेत्र

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इन्द्रिय ही स्वयं देखती है वैसे इन्द्रियको निमित्तपाकर आत्मा ही स्वयं देखता व जानता है। अस्तु

नेत्रेन्द्रियका प्रथम उपयोग उत्तम होना चाहिये फिर अन्य इन्द्रियोके उपसर्गकी आशंका नहीं।

आत्मबल ही सत्यबल है अपना। समस्त परकीय विचार दूर कर केवल अनादि अनंत अहेतुक निज पारिणामिकभावकी दृष्टिके प्रसादसे आत्मवीर्य प्रकट होता है आत्मरक्षाके लिये।

हे आत्मन्! आत्मस्वभावदृष्टिसे च्युत होकर जो विकल्प होते हैं वे ही विपदायें हैं। उन विपदावोंसे बचने के लिये आत्मस्वभावका आश्रय करो। धन्य हे सम्यग्ज्ञान! यदि तुम न होते तो जीवके उद्धारका कोई उपाय ही न था राग द्वेष आदि फन्दसे नहीं बच सकते तो ज्ञान तो यथार्थ कर लो यह ज्ञान तुम्हारी अवश्य रक्षा करेगा।

ॐ नमः सम्यग्ज्ञानाय, ॐ नमः सम्यग्ज्ञानमूर्तये। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

ता० २६–६–५६

१—कुछ मतविचारो आराम से बैठ जावो पश्चात् निर्विकल्प स्थिति का अनुभव भी हो सकता।

२—अपने विशेष को याने पर्यायको अपनेसे परिणमी ऐसा देखो पश्चात् निर्विकल्प स्थितिका अनुभव भी हो सकता।

३—अनादि अनंत चैतन्यमात्र हूं ऐसा अपनेमें देखो पश्चात् निर्विकल्प स्थिति का अनुभव भी हो सकता।

४—निरावरण परमात्माकी आंतरिक स्थिति देखो वह सब विशेष होकर भी सामान्यवत् है। उनके यथार्थ विशेषके देखनेसे सामान्य देखना रह जावेगा। सामान्य फिर सामान्य हो होता है वहां इसका सामान्य उसका सामान्य यह बुद्धि नहीं होती इस प्रकार निरावरण परमात्माके यथार्थ विशेषके विचार के पश्चात् निर्विकल्प स्थिति का अनुभव भी हो सकता।

५—जिसको देखते हो या विचारते हो वह पर्याय है पर्याय अध्रुव है जितना देखते हो उतना एक अखंड सत् नहीं है सो वह Version 1 गया असत्यार्थ

http://sahjanandvarnishastra.org/

है उसमायाके मूल एक एक द्रव्य हैं उनमेंसे किसी भी एक द्रव्यको देखो पश्चात् निर्विकल्प स्थितिका अनुभव भी हो सकता।

ॐ निर्विकल्पात्मने नमः, ॐ सामान्यदर्शनज्ञानात्मने नमः, ॐ नमः परमपारणािमकभावाय। ॐ सत्यार्थाय नमः, ॐ सत्यार्थम् नमः। सत्यार्थमनुकूलयितुं नमः।

ता० २७-६-५६

त्यागवृत्ति आराममें निभति परंतु आराम में नहीं निभति कष्टोंके बीच आराममें मनोवृत्ति निर्मल हो सकती है।

आत्मन् ! बहुत सब कुछ करते हुये अनंतकाल होगया ना, जो कुछ करना सोचा जाता है वह अनोखा तो नहीं है अतः उसका विकल्प छोड़ अब अपने निज परम चैतन्यस्वभावमें उपयोग को स्थिर कर।

जो लोग मानते हैं कि आत्मा न पूर्व भव में था और न अगले भव में रहेगा उनकी दृष्टि रखकर भी देखो इतनी सी उम्र की ही बात विचारो आखिर सुख तो वही कहलावेगा जहां आकुलता न होवेगी। अब परीक्षा कर लो परकी दृष्टिमें आकुलता रहती कि निज प्रतिभाससामान्यकी दृष्टि में आकुलता रहती परको विचारो तो पर का परिणमन अपनी परिणति से तो होता नहीं—इसके लिये साइन्स का सहारा ले लो—परीक्षा करलो—फिर होगा क्या तुम विचारोगे कुछ, पर परिणमेगा कुछ, तब आकुलता ही रही ना। जब पर तुम्हारे अनुकूल परिणमेगा तो वहां तुम और प्रकारके विचार कर आकुलता बढ़ावोगे। तब कुछ तुम्हारे अनुकूल भी पारिणम जाय जितना कि तुम्हारे संयोगमें है तो अन्यकी वाञ्छा करने लग जावोगे। न भी अन्यकी वाञ्छा करोगे तो जो अनुकूल परिणमता उसकी खुशीमें तुम अपना वलि-समर्पण-चेष्टामें बढ़ाकर आकुलता पावोगे। आखिर आकुलतामें ही इतनी उम्र जावेगी। सो परका विकल्प न करो।

ता० २८-६-५६

बुद्धि पाई है तो विरक्त अनुभवी सत्पुरुषोंकी संगति करो और वाणी सुनो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विभूति पाई है तो विभूति रहित गरीब लोगोंकी परिस्थितियां जानो और विभूति त्याग कर स्वसमाधिके यत्नमें रहनेवाले संतों की बात भी देखो।

शरीर पुष्ट पाया है तो शरीरके अपुष्ट होनेका यत्न मत करो, अर्थात् ब्रह्मचर्य का घात न करो। शरीर स्वयं अपुष्ट होता हो तो होने दो। आत्मा को–अपनेको पुष्ट बनाओ, इसमें शरीरदृष्टि छोड़ना प्रथम यत्न है।

लोग अपना अपना कार्य चाहते हैं अपनी इच्छासे प्रवर्तते हैं यह तो वस्तुके परिणमन की यथार्थ बात है ऐसा देखकर मनमें उद्विग्न मत होओ और न ऐसा भाव लावो कि यह तो मेरे अधिकारमें रहनेवाला है यह ऐसा क्यों करता है या अपना ही उत्कर्ष क्यों चाहता है। कोई किसीके अधिकारमें नहीं है तथा सभी प्राणी अपना ही उत्कर्ष चाह सकते व अपना ही कार्य कर सकते। जिस परिणाममें दूसरोंको भला करनेका भाव हो रहा है वहां भी वह अपने गुणोंका परिणमन कर रहा है, अन्यका कुछ नहीं कर रहा है और न कुछ कर ही सकेगा। ॐ विविक्तात्मने नमः, ॐ स्वपरिणताय नमः। ॐ स्वतन्त्राय नमः।

ता० २९–६–५६

ब्रह्मचर्य ही परम आनन्द का उपाय है परम आनन्द है स्त्री सम्बन्धी अशुभ अनुराग न करके उस विपदा से विराम लेना ब्रह्मचर्य है।

किसी भी पर देहका राग न करके उस विपदासे विराम लेना ब्रह्मचर्य है।

जिस परक्षेत्र में निज आत्मा वस रहा है उस इस देहका राग न करके उस विपदासे विराम लेना ब्रह्मचर्य है।

जिस अध्रुव विकार भावरूप परिणति में यह आत्मा रहता है उस विकार का राग न करके उससे विराम लेकर अपने में रमना ब्रह्मचर्य है।

जिस गुणपरिणति में यह आत्मा रहता है उस परिणतिमें न अटककर अपने ध्रुव स्वभावमें रमना ब्रह्मचर्य है।

जिन अनंतधर्मों स्वरूप यह आत्मा है उन धर्मों के भेद विकल्पमें न अटककर कर अपने अभेद स्वभाव में रमना ब्रह्मचर्य है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सारी अटकोंसे निवृत्त होकर जो एक जाना गया उस एक विषयक विकल्पसे भी दूर होकर निर्विकल्प अनुभवन रह जाना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्यं परं तपः, ॐ नमो ब्रह्मचर्यधर्माय, ॐ नः परमब्रह्मचारिणे, ॐ नमः परमब्रह्मचर्य परिणताय, ॐ नमः परमब्रह्मणे, ॐ नमः परमपारिणामिकभावाय। ॐ तत् सत्।

ता० ३०-६-५६

मैं आत्मा सनातन चित् हूं इसमें हो रहीं औपाधिक परिणतियों से मेरी बरबादी है। नेत्र इन्द्रिय से किसे देखूं जिससे मेरी आत्मा शान्त रहे, कुछ भी देखने से मेरा हित नहीं। कषायका वेग हो तो देखना पढ़ने लिखने देवगुरूदर्शनमें नेत्रेन्द्रिय का प्रपात करो। सूंघने से मेरा हित ही क्या है, मुझे कुछ सूंघने को नहीं चाहिये। मैं क्या सुनूं सुननेसे भी मुझे क्या? कषायका वेग ही है तो ज्ञानस्वरूपकी स्तुति व वैराग्यप्रद शब्द ही सुननेमें कान को अवसर रहो। रसना इन्द्रिय हायरी रसना तू मानेगी नहीं—क्या किया जाय भोजन शोधनेको देखना पड़ता है, नहीं तो तेरे विषयको मैं देखता भी नहीं—खैर मुझे स्वादसे क्या प्रयोजन? स्वाद मेरा क्या साथ देगा? स्वाद अनित्य है यह तो मिट जानेवाला ही भाव है अभी ही मिट जायगा मिटने-वालेको क्या अपनाऊं। चिन्मात्र परमपारिणामिक भावकी दृष्टि व आश्रयसे सहज उत्पन्न हुआ आनन्दका मैं अधिकारी हूं मैं अभी सहज आनन्द भोग सकता हूं—उस परम स्वादके सामने रसनास्वादकी कुछ कीमत नहीं—भोजन चले जावो पेटमें, धर्मसाधन के योग्य स्वास्थ्य को बनानेके निमित्त बनना—स्वाद नहीं चाहिय मुझे स्वाद नहीं चाहिये मुझे। स्पर्शनको तो जीतना बड़ा सरल है—इसका सहायक नेत्रेन्द्रिय है—नेत्रों पर पलक का ढक्कन है इन ढक्कनोंको मैं खोलूंगा नहीं कुछ दिखेगा नहीं—स्पर्शनको आश्रय क्या मिलेगा विकार भाव क्षणिक है खुद मर मिट जानेवाले दुष्ट पर विचार ही क्या करना है। हे विकार परिणाम जावो मुझे आनन्दका उत्तम स्थान स्वाधीन प्रभुका प्रसाद मिल गया है। रही शीत गर्मकी बात—सो शीत भी सही जा सकती है किन्तु उसका फल असमयमें नरपर्यायका वियोग हो सकता है उसकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भी परवाह नहीं किन्तु संयम साधना मनमाफिक नहीं कर पाया वह करना है—अतः एक खंश और फूससे बचा लिया जासकता है। गर्मीका सहना जो कुछ कठिन लगता है साधारण गर्मीकी तो परवाह नहीं। कठिन गर्मीमें किसी अच्छे स्थानपर दिन भर बैठा रहूंगा—। परन्तु स्पर्शन ! अब तेरे वशमें सर्वथा यह आने का नहीं।

दुःख कषायका है—कषायका मूल—इन्द्रियविषय है—इन्द्रियविषयोंकी प्रबलता वहां है जहां परीषहजय नहीं है—अतः परीषहजयमें उत्साह रुचि करो। मिथ्यात्व तो हट चुका क्योंकि मुझ चिन्मात्रसे सर्वपदार्थ अत्यन्त भिन्न हैं यह वस्तुस्वरूप देखकर दृढ़ प्रतीति होगई अब तो स्वभावमें स्थिरता-की कमी है। सो अब यही प्रोग्राम उपयोगमें घूमता रहता है कि स्वभावम स्थिर उपयोग रहे।

ता० २–७–५६

हे प्रिय निज आत्मान् ! तुम्हारे ही खुश करनेको मैंने अनेक चेष्टायें कीं परन्तु मिथ्यात्वमें तेरे बिगाड़का ही काम करता रहा। ईमानदारीतो मेरी पहिले भी थी क्योंकि सर्वत्र में तेरी खुशी के लिये कमर कसे रहा बेईमानी करके भी खुश तुम्हीं को करना चाहा, परकी दृष्टिकरके भी खुश तुम्हींको करना चाहा, परको खुश करने की चेष्टा करके भी खुश तुम्हीं को करना चाहा। परन्तु मिथ्यात्वमें वह सब चेष्टायें उल्टी ही होती रहीं। अब जाना मैंने खुश (प्रसन्न) होनेके मर्मको। अब तो तेरे स्वभावकी पद्धति से ही तुझे प्रसन्न करना चाहता हूं। अन्य बातें क्यों बीचमें आती हैं। पर्याय बदमाश बात मतकर, अब अट पट गट पट नहीं चल सकती। मैंने जान लिया मैं क्या हूं—मैंने मान लिया जो मैं हूं। अब मैं हे पर्याय तुझसे कुछ थराई नहीं करूंगा —क्या तुझसे चाहूंगा—तुमतो एक क्षण बाद मर मिटने जा रहे हो।

मैं औपाधिकभावोंसे रहित चैतन्यमात्र हूं, औपाधिक होते हैं तो होओ —मैं तो चेतनामात्र हूं ऐसा भी तो बहुतों को होजाता है कि शिरमें चोट लग जावे और पता भी न पड़े तो चोट से क्या खराबी हुई रागादिक होते हो तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होओ उनकी बला से मैं चेतनामात्र हूं मेरेको क्या खराबी। दुष्टके पास रहो तभी ना कोई उपद्रव शिर पर आवेगा। मैं तो अपने स्वरूपके पास हूं विकारसे पास जाना ही नहीं।

ता० ३–७–५६

उद्धारकी भी घबड़ाहट न करो उद्धार तो हो ही रहा है जब तुम वस्तुस्थिति पहिचान गये और ज्ञाता दृष्टा रहते हो व ज्ञाता दृष्टा रहने यत्न करते हो। रहो ज्ञाता दृष्टा–उद्धार है। मैं सर्वसे पृथक् चैतन्यमात्र हूं–कर्मोदय को निमित्त करके जो विभाव होता है वह होता है होओ–निमित्त-नैमित्तिकसंबंधकी बात है वह मेरा ज्ञेय रहो–निमित्त ज्ञेय–नैमित्तिक ज्ञेय। यह शरीर मैं नहीं हूं–मेरा नहीं है– मैं शरीरको देखना भी नहीं चाहता। मैं अमूर्त चेतन हूं।

शरीरमें आत्मा वसता है और ऐसा वसना है जैसे इन्धनमें आग लग जावे तो आग इन्धनमें वसती है। जितनेसे लिये दृटान्त है उतना ही देखना तात्पर्य आत्मा देहके एक क्षेत्रावगाह में बस रहा है, वहां भी यद्यपि शरीर क्षेत्र भिन्न है आत्माक्षेत्र भिन्न है किन्तु संयोग से देखो एक क्षेत्रावगाह हो रहा है। केवल बाहर के बाल नाखून और अतीव पतली चमड़ी में आत्मप्रदेश नहीं है। मगर फिर भी देखो जब अङ्गोपाङ्गनामकर्मका उदय नहीं रहता ऐसा जो गुणस्थान अयोगकेवली वहां आत्मप्रदेश यद्यपि शरीरक्षेत्र में है तथापि शरीरसे सम्बन्ध नहीं है उनका। क्योंकि जैसे यहां नाक कान पेट आदि की जहां पोंले हैं वहां आत्मप्रदेश नहीं है वैसी बात अयोगकेवाली गुणस्थानमें नहीं है। वहां तो जहां तक आत्मप्रदेश ऊपर नीचे चारों ओर सर्वत्र फैले हैं उसके अन्दर भी सर्वत्र आत्भप्रदेश है आत्मप्रदेशोंसे पोल नहीं है ठोस है। फिर इतना का ही इतना गुणस्थानातीत होजानेपर भी अनंतकाल तक सिद्ध अवस्थामें बना रहता है। आत्ममर्मके लिये बड़े बड़े लोग फकीर हुए–उस आत्ममर्मको जैनाचार्योंकी परमकृपासे तुमने सहज जान लिया यह उत्तमबात है–अब उत्तम जानकर जघन्य न हो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ता० ४–७–५६

हमारा प्रभु निज आतमराम।
परमातम प्रभु से पहिचाना, अन्तर आतमराम ॥टेक॥
प्रभु परिचय बिन सुख जाननको भ्रम्यो अनेकों ठाम
(भ्रमत रहा हर ठाम)
सहज सिद्ध चैतन्य पिण्ड यह अब जाता निज धाम ॥१॥
कीरति रूप गंध सपरस रस शब्द भोग बेकाम
परस रूप रस गंध शब्द कीरति इच्छा बेकाम
इनसे पृथक् स्वतंत्र अमर अज हूं चेतन निष्काम ॥२॥
प्रभुता देखता विपदा भागे, मिले सत्य आराम
सहजानन्दमूल कारणपरमातम आतमराम ॥३॥

इच्छा ही दुःखका मूल है–अब कुछ इच्छा मत करो जगतके ज्ञाता द्रष्टा रहो।

अब तक कितने विभाव किये उनका बता क्या फल क्या लाभ आज तेरे पास है। लाभ तो क्या निर्बलता-हानि ही तुम्हारे को हुई है विभाव से मुख मोड़ स्वभावमें दृष्टि जोड़ अवश्य ही आनन्द होगा यह पक्की साइन्स है।

ता० ५–७–५६

आवश्यक सत् कर्म इतने होना चाहिये कि विषय कषाय को अवकाश न मिले। ज्ञानभावनामें रहे आवो कोई आवश्यक सत्कर्म छूट जाय उस का दोष नहीं है क्योंकि ज्ञानाराधन सर्वोत्कृष्ट आत्मक्रिया है। किन्तु ज्ञानाराधनमें तो रहा न जावे और आवश्यक क्रिया में शिथिल हो जावे उसमें पतनको अवसर है।

वस्तुतः आवश्यक उस कार्य को कहते हैं जो अवश आत्माके हो जाय। अवश कहते हैं जो अन्यके वश न हो अर्थात् शुद्ध चिन्मात्र निजस्वरूप के वश हो इसके अतिरिक्त अन्य परभावके वश न हो उसे अवश आत्मा कहते हैं। उस अवश या स्वाधीन आत्मा को जो कार्य है उसे आवश्यक कहते हैं। अब तो लोगोंने विषयसाधनोंके कार्यको आवश्यक संज्ञा दे रखी है। अनावश्यक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

को आवश्यक मान लिया और आवश्यक को समझा हीं नहीं ऐसे मोही प्राणी अधिक हैं। अब उनकी वोट के आगे आवश्यक शब्द की मलहम पट्टी हो रही है। होओ–आवश्यक तो आवश्यक ही है–किसी मोहीके माननेसे अनावश्यक आवश्यक नहीं हो जावेगा।

ॐ अवशाय नमः, ॐ शुद्धं चिदस्मि

ता० ६–७–५६

कहीं भी होओ कैसी ही परिस्थितिमें होओ निज आत्मा की ओर उन्मुख रहो तो शांति रहेगी। परकी ओर दृष्टिमें निराकुलता हो ही नहीं सकती क्योंकि आकुलताके ही कारण परकी ओर दृष्टि करना पड़ी परकी दृष्टि जब तक है तब तक आकुलता रही और वह पश्चात् अन्य आकुलता का कारण बनी इस तरह आकुलता का पोषण होता जावेगा जबतक पर बुद्धिकी कुटेव न छूटेगी। आखिर तो परद्रव्य छूटना है जिनमें इच्छा रख रहे हो, मरने पर तो परसंयोग इस भवका छूट ही जावेगा और इस जातिकी इच्छा भी छूट जावेगी तब इस अल्पकालके लिये यदि इच्छा पहिले से ही छोड़ दो तब सदा के लिये भला हो जाय।

आत्मन् ! मानो अपने हितकी बात।
आत्मन् ! करो न अपने गुणका घात।
आत्मन् ! तेरी प्रभुकी एक हि जात।
आत्मन् ! तुझसे भिन्न निराला गात।
आत्मन् ! तनवश हो क्यों खट्टा (कटुफल) खात।
आत्मन् ! अपना क्यों आनन्द न भात।
आत्मन् ! तेरी सुख तेरे ही हात।
आत्मन् ! निजरतिमें आनन्द न मात।

सदा अपना ध्यान रखो, गतं न शोच्यं, भावि न काम्यम्।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ता० ७–७–५६

◆◆ समयविभाग ◆◆

प्रातः ४	–	४।	आत्मकीर्तन	} ॥ घं०
४।	–	४॥	कर्तव्य-प्रवचन	
४॥	–	५।	स्वाध्याय आध्यात्मिकग्रन्थ	
५।	–	६।	सामायिक	
६।	–	७॥	शौचनिवृत्ति, शुद्धि, वंदना	
७॥	–	८	जीवस्थान चर्चा की बड़ी क्लास	(॥ घं०)
८	–	८।॥	प्रवचन	(।॥ घं०)
८।॥	–	९।	जीवस्थान चर्चा की छोटी क्लास	(॥ घं०)
९।	से	९।॥	विराम व समाज वार्तालापें	(॥ घं०)
९।॥	से	१०।॥	आहारचर्याः वसतिकागमन	
१०।॥	से	११॥	विश्राम	
११॥	से	१२॥	सामायिक	
१२॥	–	२	लेखन	
२	–	३॥	करणानुयोग आदि का स्वाध्याय	
३॥	–	४	अध्यात्मचर्चा का पाठन	(॥ घं)
४	–	४॥	विश्राम	
४॥	–	५॥	आध्यात्मिक पाठ	
५॥	–	६॥	धर्मिसेवा-संस्थासेवा-दुःखिसेवा	
६॥	–	७॥	प्रतिक्रमण, सामायिक,	
६॥	–	८।	छहढालाके ३ पाठ-भजन	
८।	–	९	तत्त्वचर्चा	(।॥ घं)

ता० ८–७–५६

निज आत्मतत्त्व की दृष्टि रखना आत्मोन्नतिके लिये अतीव आवश्यक है।

अपनी दृष्टि में आत्मा है तो वहीं तीर्थ है। स्थान न कोई बुरा है

और न कोई अच्छा है। विकल्प ही स्थानमें अच्छे बुरे का संकल्प कराता सो विकल्प ही बुरा है और निर्विकल्पता अच्छी है सर्वत्र यही निर्णय करना।

ता० ९–७–५६

आज दुपहरकी सामायिक के पश्चात् जंगल में आया बड़ा अच्छा भाव रहा। आत्मा की ओर उन्मुखता रहे इसकी ही रटन रही इसी काल में लिख भी रहा हूं। भाव ऐसा है कि प्रतिदिन आहारके पश्चात् एक-आधा मील दूरी पर जंगल में या किसी एकान्त बागमें या पेड़के नीचे जाकर रहा करूं शाम होने से पहले ठहरनेके स्थानपर पहुंच जाया करूं। लिखनें, ध्यान करने, स्वाध्यायमें दिनके समय का अधिक उपयोग करूं।

वन उपवनके एकान्तका वातावरणमें आत्माके पर सम्बन्ध की समक्षता न होने से विभावोंकी न्यूनता हो सकती है। यद्यपि विभावोकी न्यूनता वास्तव में अपनी निर्मलता योग्यता से होती है। तथापि प्रेक्टींकल करके देख भी तो लो क्या आनन्द आता है एकान्त के वातावरणमें। मुझे तो यह बड़ा सुहाता। हे नाथ तेरे ज्ञानमें ऐसा ही ज्ञेय हुआ हो मैं अपना अधिक समय शहरसे बाहरके एकान्तमें बिताऊं।

अपनी कमाई सबसे बड़ी कमाई है। अपने स्वरूपका अनुभव करो। लाख बात की बात यही निश्चय उरलावो–तोड़ सकल जगदंद फंद निज आतम ध्याओ।

विकल्प कर कर हैरान हो गये होना। हैरान होने पर तो चित्तमें यह आजाती है कि छोड़ो इसका पिण्ड। जरा कुछ समय ऐसा ही तो बिताओ कि विकल्प कुछ न कर आराम में बैठ जावो।

ता० १०–७–५६

आज आहार करके सीधे जंगल में आये ८ घंटा रहा–शांतिका अनुभव तो नहीं हुआ पर अशांति भी विशेष नहीं रही।

इस अमूर्त आत्मामें विकल्प की बनावट क्या है कैसे है ज्ञानवान आत्मामें ज्ञेय आगये अर्थात् जानन हो गया यह तो समझ में आजाती किन्तु विकल्पों का मसला कैसा है। मान लिया कोई सूक्ष्म जड़ पदार्थ कर्म नामक है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उसके आत्मा से वियोग होने का समय आगया वियुक्त हो रहा अब आत्मामें विषाद हर्ष संकल्प विकल्प का कैसे निर्माण व निर्माणका क्या ढंग कैसे तैयार–कुछ पकड़ में नहीं आता। होता तो है–बीत तो रही शिर पर–मानलो किया नहीं जासकता और इसका भी मना नहीं किया जा सकता कि कर्म उदय के निमित्त से है, नहीं तो स्वभाव बनता। और देखो निमित्त होने पर होते हैं उसमें भी तो कैसे हुए क्या निर्माण आदि पर अचरज होता यदि बिना निमित्त की उपस्थिति के होते तब तो कुछ निर्णय का रूपक ही नहीं था। सब कुछ है फिर भी अचरज है विकल्प के स्वरूप पर।

आत्मन्! इन विकल्पों में भी क्या रखा अनकूलता का मार्ग तो नहीं है इस फेर में। छोड़ो जिज्ञासा स्वभावका तो निर्णय है उन्मुख हो जावो स्वभावके।

आत्मन् तेरा सम्बन्ध नहीं किसी अन्यसे तब लाज संकोच उपचिकीर्षा प्रतिचिकीर्षा प्रचिकीर्षा अपचिकीर्षा अनुचिकीर्षा दुष्चिकीर्षा सुचिकीर्षा विचिकीर्षा अधिचिकीर्षा आदि छोड़ निज आनंदधाम चैतन्य परमात्मतत्त्वमें बस।

ता० ११–७–५६

आज आहारके पश्चात् जंगलमें आये सामायिक करते हुए सामने चार चींटे आसपास से कंकण लाकर घोसला बनाते हुए दीखे ये भी अपना काम करनेसे नहीं चूकते। हम अपना काम करनेसे न चूकें।

हम आप जो कोई भी आज निश्चयतत्त्वके मर्मसे परिचित हुवे हैं वे पहिले कुलागत कितने व्यवहारसे गुजरे हैं। आज बालकों को व्यवहारसे छुटाकर अभी निश्चयके मर्म में पहुंचाने की चेष्टा हो तो कुछ कहा नहीं जा सकता कि इसका परिणाम उन पर क्या गुजरेगा। यद्यपि बात यह ठीक है कि व्यवहारबुद्धि छोड़कर निश्चयदृष्टिमें आना चाहिये–यह शुद्ध चित् सत्यार्थ है, फिर भी अपनी अपनी ओर सोचकर अपने अपनेपर गुजरी बातोंको देखकर कुछ जरा विचार करो और उन्हें कैसी औषधि दी जावे कि सभल सभलकर कम उपदेश्यों का चलना बनकर सत्यसे उनका नाता जुड़ जावे। इसमें बड़ी सावधानी की कला चाहिये वक्तामें।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसकी वक्तावोंपर बड़ी जुम्मेदारी है अन्यथा वीर जिनेन्द्रके शासनकी प्रभुताके अपवादकारक वक्ता बनेंगे। जिस रत्नको हमने पाया है उस रत्नकी मट्टीपलीत करा देना औरों को औरोंपर अन्याय है।

अशुभ क्रियावोंके करनेके संस्कार जीवों पर इतने पड़े हैं कि जिनके दूर होनेका मुनाफा मिल जावे इतनी बात की गम हो तो भक्ति दान आदि शुभोपयोग उसका दुश्मन नहीं बन जायगा, किसी रस्सीके टूटने पर एकदम न गिर जावे अतः पार पर आजावे रस्सी भी छूट जावे घटना भी न टूटे ऐसा यत्न करलें। सत्थ तो सत्य ही है उस पर पहुंचनेका यत्न भला करो। ॐ शुद्धं चिदस्मि, ॐ नमः सहजशक्तिमयाय, ॐ ॐ ॐ।

ता० १२–७–५६

जीवका घात इस लिये भी नहीं करना चाहिये कि वह जीव अपने जीवन कालमें कुछ धर्मोन्नतिकर सकेगा तो उसे उस लाभसे वञ्चित रखना उसके प्रति अन्याय है क्यों कि जो अपने लिये भला हो सकता है उस कार्य में दूसरे को असह्य बाधा दी। इस पर यह प्रश्न उठता है कि यह बात सैनी पञ्चेन्द्रिय को तो लागू हो सकती है किन्तु जो असंज्ञी जीव हैं जैसे असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, चौईन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, पृथ्वी जल आदि वे मनरहित होने के कारण धर्मधारणके पात्र ही नहीं है फिर इनका घात पाप नहीं होना चाहिये इसका समाधान थे जीव यद्यपि वर्तमानमें धर्म के पात्र नहीं है किन्तु इनमें भी ऐसा सामर्थ्य है कि एकदम सैनी पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य हो सकते हैं इनका घात करनेसे इनका संक्लेश सहित मरण होगा सब उससे उत्तम भव पाना तो दूर रहो उल्टी और उनकी निम्न दशा होगी। यत्न पूर्वक घात पञ्चेन्द्रियसे लेकर बादर निगोद तक का हो सकता सो संक्लेश वश में निम्न दशामें पहुंच जायेंगे तो इनका और अनर्थ हो जायगा। बाहर निगोद भी उससे निम्न सूक्ष्म निगोदमें पहुंच जायगा। सूक्ष्म निगोदका घात यत्न पूर्वक नहीं हो सकता और उससे निम्न दशा भी और नहीं है। अतः स्वकल्याणार्थी इस दृष्टिसे भी जीवोंका घात नही करता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ता० १३–७–५६

वीतरागदेवकी उपासना का समागम मिलना वीतरागता के उपायकी वाणी मिलना किसी अनुपम सुयोग की बात है। इस अतुल निधि को पाकर यदि इससे अपना लाभ नहीं लिया तो पछताने के सिवाय कुछ हाथ न आवेगा व पछता सकने तक की योग्यता न मिलेगी ऐसी बेहोशी हो जावेगी।

सुयोग पाया है तो वह उपाय करो कि आत्मा ज्ञानाराधनामें बना रहे, अनुराग जगे तो दूसरे भी ज्ञानाराधना पासके इस प्रकार तन मन वचन धनका सदुपयोग करो।

जैनधर्म को पाकर स्वयं उसका लाभ लेना दूसरों को लाभ पहुंचे ऐसा यत्न नहीं करना संकुचितवृत्ति रखना ऐसे स्वार्थी रहना अपने व पर के प्रति अन्याय करना है। अतः उदार बननेके लिये निम्नलिखित ४ बातों पर अमली व्यवहार करो।

१—साधु ब्रह्मचारी त्यागी जनोंको सर्वसाधारण स्थानपर ठहरावो और प्रत्येक प्रवचन सर्वसाधारण स्थान पर ही होने दो जैनसमाज तो मात्र इतना सम्बन्ध रखे कि स्वयं शुद्ध भोजन करे और समयपर उन्हें आहार कराये तथा उनके प्रत्येक प्रवचनमें सम्मिलित होवे। उनके गमनागमनके समय व्यवस्था करे।

२—पांच पांच सो मील में एक एक ऐसा आश्रम होना चाहिये जिसमें रिटायर पेन्शनर गृहनिवृत्त गृहस्थों के अध्ययन धर्मसाधन भोजन निवास का प्रबन्ध रहे।

ता० १४–७–५६

३—प्रत्येक प्रान्तमें पर्वतीय ठंडे स्थान पर गर्मीके दिनों में (१॥ माह) धर्मशिक्षणशिविर (शांतिविद्याशिविर) का आयोजन रहे जिसमें कालेज स्कूलोंके छात्र रात दिवस रहकर नियत चर्या द्वारा अपना ज्ञान व आचरण बढ़ायें। अन्तमें उनकी परीक्षा भी रखी जावे।

४—विविध साहित्य विद्वान कवि नेतावोंके पास पहुंचाया जावे ऐसी सुन्दर व्यवस्था हो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आज नदीपार एक बागमें ११ बजे से शाम ६ बजे तक रहा उपयोग अच्छा लगा अपनी वर्तमान पर्यायको क्षणिक जानकर उसमें रत होने का संकल्प दूर कर देवे। ज्ञानभावना अपनेवशकी बात है। मैं ज्ञानस्वरूप हूं, ज्ञाता द्रष्टा साक्षी रह सकता हूं। अपने चिन्मात्र सनातन स्वभावको देखकर उपाधिवश होनेवाले विकार भावके ज्ञाता मात्र रहो। बस इसी पद्धतिसे चलते जाना कुछ काल तक के लिये कर्तव्य है जब तक कि विकार बुद्धिमें आ सके।

प्रभु खुदमें बसा है इतना भी नहीं किन्तु प्रभु खुद है। यह आत्मा स्वयं सामान्य विशेषात्मक है। जब इसे सामान्यमय से देखो तो यह उपयुक्त है कि प्रभु खुद है। जब विशेष नयसे देखो तो तह उपयुक्त है कि प्रभु खुद में बसा है। सर्व इच्छामें दूर होकर जब मात्र चैतन्य भाव प्रतिभात रहता है तब सत्य प्रभुताईका अनुभव हो जाता है।

ता० १५–७–५६

आज उपवासमें धर्मध्यानसहित काल व्यतीत हुआ।

जीवन थोड़े दिन का है आत्मानुभवके कार्यमें प्रगति करो। इसका उपाय वस्तु के वास्तविक स्वरूपका अध्ययन मनन है। निजज्ञानसाधनाके लिये तन मन धन बचत सब न्योछावर कर दो। जगत में अन्य कुछ सार नहीं है मात्र निज स्वभावदृष्टि ही सार है। निजस्वभावका ज्ञान, श्रद्धान, रुचि, प्रतीति, दृष्टि, लक्ष्य, आश्रय, अवलम्बन करके अभेदस्वभावोपयोगी निर्विकल्प होकर कृतकृत्य हो जाना।

चारित्र चाहे न बन सके किन्तु यथार्थ ज्ञान में तो कुछ कष्ट भी नहीं है वह तो बहुत सुगम है केवल इस ओर ध्यान करने की कमी है। किसी को तो कल्याणकी इच्छा भी हो तो भी बाह्य निमित्त नहीं हो पाते। तुम्हें तो स्याद्वाद परमागम की रियासत भेंट हुई फिर भी प्रमादी रहो तो गजब है।

ता० १६–७–५६

आज आहारके पश्चात १०। बजे जंगल आया ५॥। बजे शाम तक रहा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपने स्वभावमें पहुंचने के लिये आठ घाटी उतरना पड़ती है। यद्यपि सभी घाटियोंमें अपना विकल्प ही सताता है उस विकल्प से दूर होना है यथापि विकल्पका जो विषय पड़ता है उसे भी घाटी जानना। क्योंकि जिस जाननेमें उनकी उन्मुखता नहीं उसी जाननकी बात चलाना है। वे घाटियां ये हैं:—

१—अत्यन्ताभाववाले सोना चांदी मकान आदि जड़।

२—पुत्र मित्र स्त्री आदि अन्य प्राणी।

३—यह खुदके द्वारा अधिष्ठित स्थूल शरीर।

४—परभवमें भी साथ रहनेवाला सूक्ष्म शरीर।

५—कर्म

६—कर्म उपाधिवश होनेवाले रागादि विकार

७—विज्ञानकलायें

८—केवलज्ञान आदि स्वभाव पर्यायें

इन सबसे पृथक् स्वरूपवाला अनादि अनन्त एकस्वभाव चेतन हूं। सामान्य-द्रव्य-निश्चय दृष्टि से गम्य सबसे न्यारा चैतन्यमात्र हूं। अन्य कुछ परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है।

निज और परके यथार्थ ज्ञानमें मोह-आकुलता-अज्ञान-अशरणता आदि कोई विपदा नहीं ज्ञानभाव विपत्तियोंका स्थल नहीं वह तो सत्य आनन्दका धाम है। निजज्ञानस्वभावकीरुचि करो।

ता० १७-७-५६

स्वार्थी शब्दके अनेक अर्थ हैं:—

१—स्व याने धन का चाहने वाला (अर्थी)

२—पर को स्व मानकर चाहनेवाला

३—अपनी इन्द्रियोंके विषयों का साधन चाहनेवाला

४—अपनी देह का आराम पोषण चाहनेवाला

५—अपनी इन्द्रियोंके विषयोंकी पुष्टि चाहनेवाला

६—परके कार्यमें अपना हित समझकर पर उपकार चाहनेवाला

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

७—अपना लौकिक महत्व अभ्युदय चाहनेवाला
८—अपना पारलौकिक महत्व अभ्युदय चाहनेवाला
९—अपना कल्याण चाहनेवाला
१०—अपने कल्याणमय आचार का चाहनेवाला
११—अपने स्वभावकी दृष्टि चाहनेवाला
१२—अपना स्वभाव चाहनेवाला
१३—अपना निराबाध प्रयोजन करनेवाला

पहिलेके ७ प्रयोजनोंमें यदि इतना मोह है कि पर आत्मावोंसे मात्सर्य हो जावे परके प्रति कुछ बीते इस ओर करुणा नहीं रहे और अपना ही प्रयोजन देखे तो उसे लोकमें खुदगरज कह डालते हैं। पहिलेके ७ प्रयोजनोंमें कुछ हित नहीं है। ८वें प्रयोजनमें कुछ कह सकते हैं। ९वें से १३वें तक पांच प्रकार के स्वार्थी उत्तम है और इन पांचोंमें भी उत्तरोत्तर पूर्व पूर्व से उत्तम हैं। यहां यदि प्रश्न हो कि परका उपकार चाहने में हित कैसे नहीं। उत्तर परका मैं कुछ कर सकता हूं इस भावमें तो मिथ्यात्व आगया सो महादोष है। श्रद्धा वस्तुस्वरूपके अनुकूल रहकर यदि पर उपकार बने तो वह अन्तर आत्माका घातक नहीं है। दूसरों के धन अन्नका समागम जुटानेमें भी उनका सच्चा हित नहीं है। हां योग्य साधनमें अधिक संक्लेशन न रहे उतना हित है किन्तु राग हो जाय तो वह अहित है।

ता० १८–७–५६

जीवकी अनेक पर्यायें दुःखपूर्ण आंखों के सामने भी दिखती हैं इनसे शिक्षा लो यदि विवेक न धारण किया तो ऐसे ही दुःखपूर्ण अवस्थायें मिलेंगी क्योंकि निमित्तनैमित्तिक भाव भी एक अटल व्यवस्था है परन्तु दुःखी और निराश होने की कोई बात नहीं कारण कि तुम अपने इस निमित्तिनैमित्तिक-भावके क्लेश को स्वाधीन होकर सुगमतया नष्ट कर सकते हो। निमित्त या नैमित्तिक भावपर लक्ष्य रखोगे तो निमित्तनैमित्तिकको परम्परा होती जावेगी। किसी भी पर या निमित्त परभाव या नैमित्तिकपर दृष्टि न दोगे मात्र अविकारी निजस्वभावका आश्रय लोगे तब निमित्तनैमित्तिक का क्लेश या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

संतान मिट जावेगा।

निमित्त नैमित्तिक नहीं है सो ऐसी बात नहीं हैं, वे हैं तो सब किन्तु क्लेशके निमित्त हैं सो क्लेश चाहता हो तो उन्हें गले लगावो, आनन्द चाहना हो तो उनका उपयोग छोड़ो।

देखो भाई तुम्हें जो ये सब दिखते हैं इनमें तो तुम पक्का यही निर्णय रखो कि ये समागत पदार्थ कुछ निमित्त नहीं होते हैं तुम्हारी कषाय होती है तो उससमय जो भी तुम जानते हो उसे तुम कषायपूर्तिमें निमित्त बना डालते हो। क्योंकि ये पदार्थ निमित्त होते तो सबको एकसा वही कार्य करवाते किन्तु देखा जाता है कि उसी पदार्थ को देखकर किसी को वैराग्य होता है तो किसीको मोह होता है आदि। अब रही कर्मकी बात सो उसमें भी कमसे कम यह तो है ही कि उसकी ओर या नैमित्तिक भावकी रुचि न करो उसके मात्र ज्ञाता रहो तो वह भी टिक नहीं सकता न क्लेश कर सकता, आगे और भी विचारना।

ता० १९-७-५६

वेद केवल ज्ञानका नाम है विद् ज्ञाने धातुसे वेद शब्द बना है जो स्वयं परिपूर्ण ज्ञान है वही वेद है। वेद स्वयं अर्थ नहीं कहता है, वेद स्वयं शास्त्र नहीं है, किन्तु वेद जिनके प्रकट हुआ है ऐसे परमात्माके जब तक देह रहता है तो तब यथावसर उस देहके सर्व ओर श्रुति निकलती है वह श्रुति भी सहज एकरूपसी है वह भी विभिन्न अर्थ नहीं बताती मात्र श्रोतावोंके श्रोत्रका पहिले निरक्षरी रूपसे विषय होता है श्रोतमें पड़ते ही वह साक्षरीकारूप रख लेती है। श्रोता भी सब प्रभु हैं कारण परमात्मा हैं उनकी जितनी योग्यता प्रकट हुई है उसके अनुकूल उनमें ज्ञानविकास का अपूर्व प्रकट होता है और ज्ञानविकास भी। वह ज्ञान विकास जिस अन्तर्जल्पके साथ प्रकट हुआ उन उन अक्षरों रूप परिणमानेकी विशिष्ट निमित्त वह श्रुति है। श्रोतावोंमें सर्व प्रधान गणेशगणधरा हैं। वे गणेश देव अपने अन्तरंग में स्मृतिकी रचना करते हैं। यद्यपि स्मृतिकी रचना सभी श्रोता करते हैं तथापि सर्वविशिष्ट स्मृति गणेश देव की होती है। गणेश जी अपने भावमें समस्त स्मृति याने

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्वादश अंग और अंगबाह्य समस्त भावश्रुत की रचना कर लेते हैं पश्चात् इन सब स्मृतियोंको महर्षियों एवं अन्य महाश्रोतावोंको प्रकट करते हैं। कितने ही काल तक स्मृतियोंका इसीप्रकार प्रवाह चलता रहता है, प्रवाहकी मन्द वेग होनेपर कृपालु महर्षि पुराणोंकी रचना करते हैं। पुराण केवल चरित्र का नाम नहीं है किन्तु पुराण पुरुषों की समस्त रचनाओंको पुराण कहते हैं। इस तरह अबाधित वस्तु गत सिद्धान्तों का मूल वेद होने के स्याद्वादगम्य वस्तु सिद्धान्त प्रामाणिक है।

ता० २०-७-५६

आज गोविन्द बालक काछी व सुख लाल ढीमर ने मांस त्याग दिया बालक होनहार भला है। इसकी सुबुद्धि बड़े।

जबलपुर—लोग पृथक् पृथक् परिणतिवाले ही होते हैं।

प्रत्येक वस्तु त्रिमूर्ति हैं, त्रिमूर्ति देव पहिले कभी हुआ व उसका चरित्र क्या इस विषयमें निःसंदेह धारणा हो नहीं सकती, वास्तविकता वह है जो वस्तु में हो। प्रत्येक वस्तुमें त्रिमूर्तिता सहज बसी हुई है। वस्तु ध्रुव है वह सदा रहती है और वह किसी न किसी हालतमें रहती है वह हालत बदल जाती है नई हालत हो जाती है परन्तु वस्तु वही है। वस्तु में यही तीन मूर्तियां हैं—ध्रौव्य, उत्पाद, व्यय। प्रत्येक वस्तु त्रिमूर्ति है उसका उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहज स्वभाव है। वस्तुका ध्रौव्य उसी स्वभावसे है वस्तु का उत्पाद व्यय भी वस्तुके स्वभावसे होता है क्योंकि वस्तुका असत् की उत्पाद नहीं है किन्तु वस्तुके स्वभावका प्रतिसमयका परिणमन उत्पाद व्यय है। इस तरह यह सिद्ध हो गया कि मुझ वस्तुका उत्पाद व्यय ध्रौव्य मेरे स्वभावसे है अन्य सब वस्तुवोंका उत्पाद व्यय ध्रौव्य उनके स्वयंकेस्वभावसे है अतः अन्य कोई भी वस्तु मेरा हो ही नहीं सकता इस पृथक्त्वविज्ञानसे अहंकार मम कार दूर होजाता है तब परम विश्राम प्रकट होता है जिस त्रिमूर्तिके ज्ञानके प्रसादसे समस्त क्लेश दूर होते हैं वह त्रिमूर्ति देवता जगतके जीवोंके उपयोग मन्दिर में विराजमान रहे। ॐ त्रिमूर्तिदर्शनाय नमः।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ता० २१—७—१९५८

आज एक ऐसा वातावरण जबलपुर में हो गया करीब १ वर्ष से। जिससे सभी को सामाजिक कार्यों में अनुत्साह है।

आज से २० अगस्त तक याने १ माह को पकवान मिठाई का त्याग। मेरा अन्तर ऐसा कहता है कि राजा अशोक पहिले जैन था उसने जैनधर्मका एक विशाल स्तूप बनाया था जिसके ऊपर चार सिंह के आकारके चहरे गनाये। महावीर स्वामी की मूर्ति निश्छाय ऊपर विराजमान करते तो किसी समय टूटने का अंदेशा था अतः महावीरप्रभुकी मूर्ति न बनाकर वीर प्रभुके चिन्ह शेर का आकार बनाया। समवशरण में प्रभुका ऐसा अतिशय है कि चारों ओर प्राणियोंको उनका मुख दीखता है। सभा भी वीर प्रभुके घेर फेर गोलाकार भरी रहती थी। चिन्हके नीचे २४ आरावाला चक्र बना है जिसका उद्देश्य चौबीसवें तीर्थंकर का तीर्थ संकेतित करना है। अशोक किसी समय बौद्ध साधुवोंकी दुःखित जनसेवा देखकर बौद्ध हो गया था। इतिहासकारोंको इस ओर ध्यान देकर यथार्थ निर्णय करना चाहिये।

ता० २२—७—१९५६

आज जबलपुर समाजने गुरुपूर्णिमाका प्रयोगसे स्मरण करा दिया। मुझपर श्रीमद्गणेश वर्णी पादों का अनुपम छाया है।

परमपद्ब पांच हैं १ तो वह पद है जहां बाह्यवस्तुवोंमें चित्त नहीं जमता फलस्वरूप सब आरम्भ, परिगृह का त्याग होना गात्रमात्र रहकर स्वसद्ध्यान में लींन रहते हैं व उसका यत्न करते हैं। २—जब कुछेक साधु होते हैं तो यह प्राकृतिक बात है कि उनमें एक प्रमुख होता है जो कि सर्व प्रकार सुयोग्य हो सब उसे प्रमुख मानते हैं। ३—तथा यह भी प्राकृतिक बात है कि बहुतों में कुछ अनेक ऐसे भी होते हैं जो विशिष्ट ज्ञानी होते हैं उनसे दूसरों की शिक्षा का उपकार होता है। ४—उक्त तीनों प्रकारके साधुवोंमें जो कोई निर्विकल्प परम समाधि में विशिष्ट जीव हो जाता है वह पूर्ण निर्दोष वीतराग सर्वज्ञ परम आत्मा हो जाता है। ५—ये सदेह वीतराग परमात्मा ही अल्पकाल पश्चात् विदेह (देहरहित) हो जाते हैं ये पांचों उपास्य आत्मा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

त्रिमूर्ति हूं। सब त्रिमूर्ति हैं। सच्चा श्रद्धान, सच्चा ज्ञान व सच्ची स्वरूपाचरण याने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र इन तीन मूर्तियों स्वरूप हैं। ये पांचों त्रिमूर्ति परमाराध्य हैं। सामान्यतया सभी आत्मा त्रिमूर्ति हैं। श्रद्धान ज्ञान आचरण सभीके होता है इतना अन्तर है कि किसीके मिथ्या होता और किसीके सम्यक् होता। सामान्यदृष्टि से देखें तो सहजश्रद्धा, सहजज्ञान, सहजचरित्र इन तीन मूर्तियोंके अभेद पिण्ड सभी आत्मा हैं विशेषदृष्टि से देखें तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्सारित्र इन तीन मूर्तियोंसे अभेद स्वरूप पांच विशिष्ट आत्मा हैं। ॐ त्रिमूर्तये नमः।

ता० २३–७–१९५६

आजसे जीवस्थान चर्चा का अध्ययन लोगोंने व महिलाओंने प्रारम्भ किया। अध्येता आत्म विद्यार्थियो समस्त संख्या ३५ हुई।

धर्मको निश्चय व व्यवहार की संधिकरके देखो और इसे २ भागों में समझो। १ साधारण धर्म, २ आत्मधर्म।

१–वत्थुसहावो धम्मो है वस्तुका जो स्वभाव है वह वस्तु का धर्म है वस्तुका स्वभान उत्पादव्य धौव्यका है वस्तु इन तीन रूपोंमें गुम्फित हैं वस्तुमें सदा तीनों बातें पाई जाती हूं। आजकल का भारतीय राष्ट्रध्वज इन तीनों का प्रतीक बन रहा है। राष्ट्रध्वजमें तीन रूप हैं—हरा लाला (पीला) सफेद। हरा उत्पादका लाल व्ययका संकेत करता है साहित्य उत्पत्तिहर्ष वृद्धि को हरे रंगसे और नाश को लालरंगसे वर्णन करगा है। सफेद रूप ध्रौव्यका सूचक है जिसपर उत्पाद व्यय–हरे लालरूप चढ़ सकते हैं। ॐ त्रिरूपाय सर्वधर्मध्वजाय नमः।

२–सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि धर्मः है आत्माका सम्यग् विश्वास ज्ञान आचरण धर्म है शान्ति देनेवाला है मोक्षका मार्ग है। भारतीय ध्वज इसका भी संकेत करता है—सम्यग्दर्शन शुद्धात्मा की रुचि को कहते हैं रुचिका वर्णन साहित्वमें पीले रंक न है शुद्धात्माके ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं ज्ञानका वर्णन सफेद रंग से होता है। शुद्धात्माके अनुष्ठानको सम्यक्चारित्र कहते हैं इससे आत्माकी अपूर्व उन्नति है इसका वर्णन हरे रंगसे है। देखो सफेद बीच

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में है जैसे ध्रौव्य बीचमें है वैसे ज्ञान बीच में है। ॐ निरूपायात्मधर्मध्वजाय नमः।

ता० २४–७–१९५६

मरण २ प्रकारके हैं—१–आवीचिमरण, २–तद्भवमरण। तद्भवमरण तो उसभवसे आत्माके निकलजाने को कहते हैं उसभव की आयुके निषेकोंके पूर्णतया खिर जानेको कहते हैं। आवीचिमरण प्रतिसमय आयुके निषेक जो खिर रहे हैं (जिससे जो भवका समय गया वह पुनः नहीं आता वह तो निकल ही गया) उस प्रति समयके भववाले मरण को कहते हैं। हमारा आवीचिमरण प्रतिसमय हो रहा है। मरण समयमें समाधि होनेसे याने समाधिमरण होनेसे आत्मा का हित है सो अपना हित चाहो तो प्रतिसमय मरतो रहे हो। समाधिमरण से मरते रहो अर्थात् प्रतिसमय समाधि रहना चाहिये।

यदि आवीचिमरणका मरण समाधिमरण बन जावे तो उस समाधि-मरण के फलकी प्रतीक्षा नहीं करनी है उसका फल उसी समय मिलता जा रहा है। सर्व आपदाओं से रहित अनुपम आनन्दका अनुभवन होता चला जा रहा है।

प्रतिसमय का मरण हो रहा है इसे कभी न भूलो जो क्षण गये वह फिर नहीं आयेंगे। इसका सोच नहीं कि क्षण गये फिर न आवेंगे। यदि कल्याण तो हो न पावे और मनका वियोग हो जावे तो उसका हाल व सोच है कि फिर शाश्वत समाधिका आरम्भ भी न हो सकेगा। अतः अभी श्रेष्ठ मन मिला है, मनके सदुपयोग से मनका उपयोग बंद करसे न संज्ञी न असंज्ञी जैसे परम अनुभव अमृतका स्वाद लेलो और अनुपम अमर हो जावो।

ता० २५–७–१९५६

आज मुनि श्री आदिसागर जी भी आगये। आपका भाव अध्ययनकी ओर भी विशेष है।

अपने पुराय पुरुषों को तो देखो उन्होंने विषय कषायसे दूर होकर विशुद्ध आत्मध्यानमें ही आनन्द माना था व इसी प्रकार का यत्न किया था।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यद्यपि उनका शरीर मजबूत था लेकिन शरीरका काम करनेकी बात तो नहीं कह रहे हैं बात तो ज्ञानकी न मनकी हो रही है सो ज्ञान व मन की दृष्टिसे तुम कमजोर नहीं हो इसकी बात तो तुम इस युगके पुराण पुरुषोंकी तरह ही कर सकते हो। विषय कषायको अत्यन्त हेय विषफल जानकर इससे दूर होनेके लिये कटिबद्ध हो जावो।

समस्त इन्द्रियोंका व्यापार बन्द करके अन्तर अन्तरमें परम विश्राम पावो। तुम्हें प्रभुके दर्शन होंगे दर्शन ही नहीं ज्ञान द्वारा स्पर्श भी होंगे स्पर्श ही नहीं ज्ञानद्वारा परम सहज आनन्द का स्वाद भी मिलेगा। सर्व आनन्द पूर्ण आनन्द आत्म स्थिरतामें है। हे निज सहज सिद्ध प्रभो जयवंत हो तुम अभी अभी प्रकट हुए हो सो बालरूप हो हमारे उपयोगके झूलेमें झूलो और और प्रसन्न होकर बढ़ते रहो।

ता० २६-७-१९५६

सहजसिद्ध प्रभु अधःकरण अपूर्णकरण अनिवृत्तिकरण में सातिशय मिथ्यात्व की पद्धतिसे गर्भमें आते हैं पश्चात् अविरलसम्यक्त्व गुण स्थानके रूपमें उनका जन्म होता है और उनकी शिशु अवस्था रहती है जब तक अपने पैरसे उठ नहीं आते। पश्चात् देशविरतगुणस्थानके रूपमें उनकी बाल अवस्था चलती है। और इसी ही देशविरत गुणस्थानमें अन्तमें कुमार अवस्था हो जाती है। पश्चात् किशोर अवस्था आती है तब सर्वविरतिका पाणिग्रहण हो जाता है और इस प्रसंगमें वे छटे सातवें गुणस्थानमें रहकर झुंझलाहट व निर्विकल्प दोनोंका आनन्द लेते रहते हैं। बारह भावनाओंके दृढ़ सम्पर्कसे उनका आत्म परिवार बढ़ जाता है। पश्चात् यौवन अवस्था आती है उन्हें शुक्ल चिन्ता होती है और यह आठवें नवें दसवें गुणस्थानके रूप बदलती हुई भी यह शुक्लचिन्ता बढ़ती जाती है। पश्चात् इस महाप्रभु को इस कामके प्रसादसे समस्त परिवार परमब्रह्मचर्यसे एकरूप हो जाते हैं तब सहजसिद्ध प्रभु को अनुपम विश्राम प्राप्त होता है और वहां यह प्रभु क्षीणकषाय गुण-स्थानके रूपमें पूर्ण निश्क्षुब्ध निस्तरंग निर्विकल्प हो जाता है। पश्चात् इस शक्तिशाली वृद्ध अवस्थामें वह सर्वज्ञ हो जाता है। उसकी यह शक्तिशाली

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वृहता अजर और अमर होकर सदा एकसी बनी रहती है ॐ वृद्धाय नमः।

ता० २७-७-५६

वैराग्य परिणामों सहित निर्भय एकान्त निवास बहुत ही उत्तम वातावरण है। अन्तमें तो एकाकी जाना ही है निरंतर एकाकी अनुभव करो। किसीसे स्नेह मत बढ़ावो। किसीको साथ रहने का विश्वास मत दो। अपना ज्ञानध्यानसंयमोपयोगी व अन्य उपयोगी सामान कम से कम रखो स्वयं उठाकर चल सको इतना रखो। चातुर्मास्यमें लिखने पढनेका अधिक काम व्यवस्थित करलो पश्चात् जब जैसा मिले करो। ध्यानमें समय अधिक बितावो।

समस्तसंकल्पविकल्पजालोंसे रहित निस्तरंग जब स्वविश्राम होता है तब पश्चात् समझमें आता है कि उस जैसी परिस्थिति उस जैसा आनन्द अन्यत्र कहीं नहीं है। जिन्हें ऐसा अनुभव होगया उन्हींको यह श्रद्धा है, शेष तो वाशी मठाकी खीरमें ही आनन्द मानगे।

आत्माका ध्रुव यह शुद्ध आत्मा ही है। आत्मा उस उपयोगमें विराजमान रहता है जिस उपयोगमें अनात्मा की गंध न हो। इस परम पिता आत्माको चैतन्यद्वारसे नहीं, वस्तुत्वद्वारसे अनात्मासे बड़ी चिढ़ है जिससे यह प्रभु चिढ़ता हो उसीको तुम उपयोग में स्थान दो तो प्रभु तेरी ओर ढूंकेंगे भी नहीं। अनात्माके उपयोगमें अनन्तकाल तो बिताया। अब अपनेपर दया करके अपनेको समझो जानो मानो बनो। ॐ अकर्त्रे अभोक्त्रे धात्रे पित्रे हितदात्रे प्रमात्रे विश्वाधिष्ठात्रे त्रात्रे ज्ञात्रे अहितहर्त्रे आनन्दभर्त्रे नमो नमः। ॐ तत् सत्।

ता० २८-७-५६

आज मढियाक्षेत्र गये मन्दिरोंके निर्माणमें लोग समझते हैं कि जब तक मंदिर रहेगा मेरा नाम रहेगा। विद्यादान की उपेक्षा है सम्यग्दृष्टिके जघन्यज्ञानपरिणमनके दृष्टान्त—

१—सेठका मुनीम, २—विवाहमें गीत गानेवाली पड़ोसिन, ३—पीहर से ससुराल (अपने घर) जाती वाली रुदन करती हुई बहू, ४—सगाईसम्बन्धका समाचार सुन लेनेवाली कन्या, ५—युद्धमें लड़नेवाले सिपाही, ६—विषभक्षण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करने वाला मंत्रवादी विषवैध, ७—औषधिमें मद्य पीनेवाला पुरुष, ८—वेश्या का प्रेम, ९—जलमें रहने वाला कमल, १०—आराममें रहनेवाला रईस रोगी, ११—कीचड़में सोना, १२—ठगके यहां पला हुआ सेठपुत्र, १३—काम करता हुआ कैदी, १४—मरेके फेरे में जाने वाली महिलायें, १५—इस्टवियोगके दुःखीका भोजन आदि, १६—आक्रामकका पहिचाननेवाला सिंह, १७—दूसरे सांझेदारका कपट जाननेवाला सांझेदार, १८—सन्धयाकी लाली, १९—जड़कटेवृक्षका हरापन २०—भ्रमसे एक नदी बहा समझकर सिर फोड़नेवाले फिर सही ज्ञान करनेवाले दश कोली, २१—बादमें नौकर द्वारा पकड़े गये चोर द्वारा लुटा पिटा सेठ, २२—रात्रि उन्मार्गमें भूला किन्तु क्षणिक विद्युतप्रकाशमें सुमार्ग देख लेनेवाला पथिक, २३—छतपर जानेके लिये सीड़ी पर चढ़नेवाला मनुष्य, २४—हजार रुपया के दण्डसे बचनेकेलिये १००) दे देनेवाला पुरुष, २५—नाटकमें राजा भिकारी के पार्ट करनेवाला मनुष्य।

ता० २९—७—५६

सम्यग्दृर्शनका दर्शन—

१. जीवादि तत्त्वोंका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

२. विपरीत अभिप्रायरहित जीवादि तत्त्वार्थ का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

३. जीवादि पदार्थोंके यथार्थ श्रद्धान स्वरूपमें आत्मा परिणाम जाना सम्यग्दर्शन है।

४. भूतार्थसे जाने गये जीवादि पदार्थ सम्यग्दर्शन है।

५. जीवादिपदार्थोंके भूतार्थसे जाननेपर जो एकताका अनुभव है सो सम्यग्दर्शन है।

६. भूतार्थसे जाने गये पदार्थोंसे शुद्धात्माके भिन्नपनेका अवलोकन सम्यग्दर्शन है।

७. विकारकी उपेक्षा करके केवल स्व स्व अभेदकी मुख्यता से नव तत्त्वोंका प्रतिभास सम्यग्दर्शन है।

८. ज्ञानचेतनाका अनुभूमि सम्यग्दर्शन है।

९. ज्ञेय ज्ञातृत्वकी यथार्थ प्रतीति सम्यग्दर्शन है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

१०. आत्मस्वरूपकी उपलब्धि सम्यग्दर्शन है ।

११. शुद्धात्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन है ।

१२. शुद्धात्माकी रुचि सम्यग्दर्शन है ।

१३. देव शास्त्र गुरूका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है ।

१४. आत्माका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है ।

१५. श्रद्धानकी जिस परिणतिके प्रगट होने से निज शुद्ध आत्मा का प्रतिभास हो वह सम्यग्दर्शन है ।

१६. पूर्ण आत्मस्वरूपका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है ।

ता० ३०–७–५६

१७. निमित्त, विकारीपर्याय, अपूर्णपर्याय, गुणभेदके लक्ष्यसे हटकर निज अभेद अनुभव होना सम्यग्दर्शन है ।

१८. चैतन्यमात्र आत्माकी प्रतीति सम्यग्दर्शन है ।

१९. स्वरूपकी यथार्थ प्रतीति सम्यग्दर्शन है ।

२०. स्वरूपका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है ।

२१. परसे भिन्न निज आत्मामें रुचि सम्यग्दर्शन है ।

२२. विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावरूप निज परमात्मा की रुचि सम्यग्दर्शन है ।

२३. शुद्ध जीवास्तिकायकी रुचि सम्यग्दर्शन है ।

२४. भगवान परमात्मस्वभावके अतीन्द्रियसुखकी रुचि करनेवाले जीवमें शुद्ध अन्तरंग आत्मिक तत्त्वके आनन्द के उत्पन्न होनेका धाम जो शुद्ध जीवास्तिकाय है उसकी दृढ़ प्रतीति सम्यग्दर्शन है ।

२५. अनंतानुबंधी क्रोध मानमाया लोभ मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्प्रति इन सातके उपशम, क्षयता क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई निर्मलता सम्यग्दर्शन है (उपशमसम्यक्त्व आदि की ५ प्रकृतियोंके उपशमसे भी हो सकता है जब की अन्त की २ प्रकृति सत्तामें न हों) ।

इत्यादि अनेक प्रकार से सम्यग्दर्शन का लक्षण है, सम्यग्दर्शनका स्वरूप तो एक है किन्तु अपेक्षा से हैं इनमें यह देखना कि कोई ज्ञानकी मुख्यतासे, कोई दर्शन की मुख्यतासे, कोई चारित्र की मुख्यतासे कोई आश्रय-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

को मुख्यतासे तो कोई उपाधिके वियोगकी मुख्यतासे लक्षण कहा गया है।

ता० ३१–७–५६

स्वाधीनतामें परीषहें आयें उन्हें जीतना और स्वाधीनता बनाये रहना हितका वातावरण है। आरामसे रहना पराधीन विश्राम पाना आत्मीय निर्मलताका निमित्त नहीं है। स्वाधीनताके लिये कमसे कम इन बातों पर लक्ष्य अवश्य हो—१. कम से कम परिग्रह जो स्वयं लेजाया जासके। २. कम से कम वस्त्र जिसका सुगमतया धोना रखना बन सके। ३. लिखने वा प्रतिदिन के पाठ का कुछ शाधन पास रहे। ४. विशेष ग्रन्थ जहां जो मिल सकें उनका उपयोग करना व उपयोग हो चुकने पर या वहां से प्रयाण करने पर उन ग्रन्थों को वहीं दे देना। ५–नगरमें भोजन भाषण चैत्यवंदन आदि कार्यवश जावे रहे, शेष समय नगर के पास वन उपवन आदि विविक्त स्थानों पर रहना यदि रात्रिनिवासकी व्यवस्था वन उपवन में उचित न जचे तो शाम नगरके किसी उचित स्थान में आजाना रात्रि व्यतीतकर पूर्वोक्त व्यवस्थासे चलना। पूर्ण स्वाधीनता तो निर्ग्रन्थ दिगम्बर ही कर सकता है।

आत्मन् तेरा जगतमें कोई शरण नहीं है, तेरा उत्थान अनुत्थान सुख दुख साता असाता सब तेरे स्वके आधीन है, पराधीनताका भी अनुभव स्ववशसे करता है। परका तेरेसे कुछ संबंध ही नहीं है न था न होगा, मात्र तू विपरीत-मान्यता रखता है जिसका सारा विसंवाद है।

ता० १–८–५६

तुझे मन मिला है तो मनको इस चिन्तनामें लगावो मैं चैतन्यमात्र हूं सर्व पर मुझसे अत्यन्त भिन्न है ये सर्व पर मेरे कुछ भी नहीं है उनका चतुष्टम उनहीं में है। परमाणुमात्र भी परमाणुमात्र मेरा नहीं है। अरे ओ हो अब किसे मनमें रखें। कुछ अन्य मनमें रखने लायक तो है नहीं। यह मन और कुछ नहीं, ज्ञानका एक प्रकार है। द्रव्य मनकी चर्चा नहीं कर रहे वह तो जड़ है उसे समझाना क्या ?। हे मन तू जिस ज्ञानका प्रकार है उस अपने परमपिता को अपने में रख। क्या तू यह सुनकर तो नहीं घबड़ाता कि परमपिताके परमप्रसाद में मनका नाश हो जाता है। तू इस ढंग से देख

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मनका नाश नहीं होता किन्तु इतना श्रेष्ठ मन होजाता है कि फिर संकल्प विकल्पका दुःख नहीं रहता। संकल्प विकल्पकी गड़बड़ बनी रहे इतना ही जिन्होंने मन माना है वैसा मन तो जरूर मिट जावेगा। किन्तु तू मनको वह मन क्यों जानता। जान मन ज्ञानका एक प्रकार है यह कुछ रद्दी प्रकार है यदि ज्ञान का उत्कृष्ट प्रकार सर्वज्ञता आती है तो उसमें उत्कर्ष मान। नहीं समझमें आता तो बस एक यह बात मान–मन को तू ज्ञान समझ। अथवा हे मन दुःखोके अनुभव से तो नाश ही अच्छा–सो नाशका प्रयत्नकर अर्थात् परमपिता कारणपरमात्मा को तू अपनेमें रख लाक में कहते हैं जब चींटाकी मौत होनेको होती है, तो उसके पंख उग आते हैं। सो जब मनका नाश होनेको होता है तब आत्मा अनात्मा का विवेक होजाता है।

ता० २–८–५६

यद्यपि यह सत्य है कि जो जन्मता है वह मरता है और जो मरता है वह जन्मता है तथा कोई किसीका जन्म नहीं करता और न कोई किसीके मरणको करता तथापि ऐसी प्रतीतिवाला विकल्पोंसे परे होजाता है न कि इस बोध के कारण किसीको मारने व दुःख देने में अथवा विषयसाधनोंके संग्रहणमें जुटता। यदि कोई इस बोधको देने व मानने पूर्वक युद्ध करता है मारता है तो वह तत्त्वकी ओरमें स्वच्छंदता है।

सामान्यका व्याख्याता द्रव्यार्थिकनय है, विशेषका व्याख्याता पर्यायार्थिक नय है। द्रव्यार्थिकनयके उभेद हैं–नैगम, संग्रह, व्यवहार। जब अभेदमें भेद व भेदमें अभेदका आरोप करके एक विषय बनाया जाता है वह नैगम नय है। मात्र अभेदका विषय करनेवाला संग्रह नय है। उत्तरप्रभेदोकी अपेक्षा अभेदको स्पर्शता हुआ भेदका विषय करनेवाला व्यवहारनय है।

किये हुए निक्षेपके अनुसार जो अर्थ को लेजावे उसे नय कहते हैं। नयसीति नयः।

नय प्राण है तो प्रमाण जीवन है। नय मंत्री है तो प्रमाण राजा है। प्राणोंसे जीवन है तो नयों से प्रमाण है। मंत्रियोंकी अनेकसम्मतियोंसे निश्चित सम्मत एक राजा है तो नयोंकी अनेक दृष्टियोंसे निर्दिष्ट ज्ञाता एक प्रमाण है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्राण अनेक हैं जीवन एक है। नय अनेक हैं प्रमाण एक है।

ता० ३–८–५६

समानमें होनेवाले ग्रहण को अथवा समानके ग्रहण को सामान्य ग्रहण कहते हैं यही दर्शन है। जितने पदार्थों के ज्ञान हैं उतने ही ज्ञाताके क्षयोपशम हैं तो पदार्थज्ञान के समान क्षयोपशम हुए। जितना क्षयोपशमजज्ञान है उतना आत्मा है क्योंकि आत्मा ज्ञानभाव है। तब क्षयोपशमप्रभाव आत्मा हुआ। इस तरह पदार्थ ज्ञान के समान (बराबर) क्षयोपशम हुआ। क्षयोपशम के समान (बराबर) आत्मा हुआ। इस तरह समान मायने आत्मा है उस समान आत्मा के ग्रहण को दर्शन कहते हैं जिसका स्पष्ट भाव है—अन्तर्मुख चित्प्रकाश-को दर्शन कहते हैं। उक्त पद्धति छद्मस्थों की है। अथवा पदार्थ सामान्य-विशेषात्मक है उसके केवल सामान्य अंशका जब ज्ञान किया जावे तो वह ज्ञात किया जानेवाला सामान्य किसी वस्तु का जाना जा रहा है यह विशेष-भाव नहीं रहता। सामान्य-सत्ता का बोध किसीवस्तुका सम्पर्क बनाकर नहीं होता अन्यथा वह आवान्तरसत्ता ही हो जावेगी। इस पद्धतिमें देखनेपर सामान्य सत्ता का आधार द्रष्टा ही रह जाता है यहां भी द्रष्टाकी सत्ता यह विशेष न लेना अन्यथा वह सामान्य सत्ता नहीं रहेगी। इस तरह द्रष्टाका प्रतिभास सामान्य प्रतिभास हुआ। इसके भी यही प्रसिद्ध हुआ—अन्तर्मुख चित्प्रकाशको दर्शन कहते हैं।

ता० ४–८–५६

जबलपुर वर्षायोगमें बाहरसे पधारे हुए संयमी एवं ब्रह्मचारी—

१—मुनि श्री आदिसागरजी, २—क्षुल्लिका श्री चन्द्रमतीजी, ३—ब्र० लाभानन्दजी, ४—ब्र० विवेकानन्दजी, ५—ब्र० राजधर वाणीजी, ६—ब्र० अच्छेलालजी, ७—ब्र० सुकलाल जी, ८—ब्र० जयानन्द जी, ९—ब्र० करोड़ी मलजी, १०—ब्र० नाथूराम जी, ११—ब्रह्मचारिणी बाई जी, १२—ब्र० दामोदर प्रसादजी छापछौल, १३—ब्र० गुणभद्र, १४—ब्र० वालचन्दजी, १५—ब्र० चुन्नीलाल जी। इन सब व्रतियोंके समागमसे आनन्द रहा।

शरीर तो जड़ है, आत्मा चेतन है, यह मनुष्य असमानजातीय द्रव्य-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर्याय है। शरीरको क्लेश नहीं होता, आत्माका क्लेश स्वभाव ही नहीं, असमानजातीय द्रव्यपर्याय अध्रुव है—माया है। दुःख का मूल कुछ नहीं है, इन तीनों में से कोई ईमानदारीसे दुःखी नहीं है। इनविषयक भ्रम दुःखका मूल है। सब कुछ भ्रमजाल होने पर भी दुःखका टिपारा आत्माके शिर पड़ता है अतः भ्रमको दूर भगा दिया जावे तो यह सारा इन्द्रजाल भी समाप्त हो जावेगा।

द्रव्य जाना जावे और वह अपने ही गुण पर्यायमें एकत्वसे परिणत है इस प्रकारकी स्वतंत्रतासे देखा जावे वहां आकुलता को स्थान नहीं मिलता।

ता० ७–८–५६

आनन्द का मार्ग केवल स्वाश्रय है। स्व से हटकर बाह्यमें उपयोग लगाया तब विकल्प हुए और उनही में तो आकुलता भरी है। विकल्प टूटे बिना शांति न होगी।

आत्मामें ज्ञानकी कला है और वह ज्ञानकला ऐसी है कि उसका स्वभाव पदार्थोंको जाननेका है और भूत, भविष्यत्, वर्तमानकी पर्याय को जाननेका है। इसका प्रमाण तो यह है–कि अभी देखलो आपमें भी कुछ भूत व कुछ भविष्य को जानने की पद्धति है ना। भविष्यकी बात चाहे गलत निकल जावे। अभी हम आपकी जानी हुई किन्तु यह तो सिद्ध ही है ना कि जाना करते हैं भूत और भविष्यकी बात।

अब देखो—हमारे ज्ञान पर आवरण है अर्थात् ज्ञानावरणके क्षयोपशमको लिये हुए उदयको व उदयको निमित्त पाकर ज्ञानका योग्य विकास नहीं है तो भी यह सब जाना जा रहा है तब जिस प्रभुके ज्ञानावरणका विनाश हो चुका उसके तो यह ज्ञान पूर्वविकासको प्राप्त हो जावेगा। ऐसे सर्वज्ञ प्रभु के ज्ञानमें सब झलक चुका। अब जो होना है वह वे जान ही गये। याने जो देखा है वह होगा ही, विकल्प क्यों करना।

ता० ८–८–५६

अक्रियः परिणामात्मा, चित्स्वभावस्त्रिदैवतः।
अगदोऽस्खलितैकत्वोऽ–परिणामी कलानिधिः ॥५०॥ ३५६

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अवेदो वेदवेद्यश्च, वेदो वेदमयो विधिः ।
अकषायस्तटस्थश्च, वामस्त्रिभुवनेश्वरः ।।५१।। ३६८

अजीवज्जीवितोऽचिह्नोऽ–गम्यो गन्ता स्थिरः क्रतुः ।
अनन्यकर्तृकर्मा स्व–ज्ञेयनिष्ठो महोदयः ।।५२।। ३७८

अनादिनिधनो ज्ञाता–ऽग्राह्योऽशोको निजाश्रितः ।
अनन्तः परमः प्राणो, वर्द्धमानोऽचलद्युतिः ।।५३।। ३८७

अमितः सिद्धिदः सत्य, शरण्यो निरुपद्रवः ।
अग्रजोऽनुपमः पाता, पावनो निरुपप्लवः ।।५४।। ३९३

अकलङ्को जगन्नाथो, गुप्तः स्पष्टश्च पुष्टिदः ।
अक्षोभो विश्वशीर्षश्च, शक्तो नेता च सुश्रुतः ।।५५।। ४०३

इति अनन्तादिशतम् ।।४।।

ॐ ह्रीं अनन्तादिशतनामवाच्याय सहजसिद्धपरमदेवाय नमः

शुद्धः शुद्धात्मतत्त्वं च, शुद्धजीवपदार्थकः ।
शुद्धात्मद्रव्यमापूर्जः, शुद्धजीवपदार्थकः ।।५६।। ४०८

शुद्धबुद्धैकभावोनन्तज्ञानादिस्वभामयः ।
शुद्धात्मा परमो विष्णुः परमं ब्रह्म निस्तमाः ।।५७।। ४१४

शुद्धान्तस्तत्त्वसद्धारो, निश्चयो धर्मरूपकः ।
शुभाशुभगतः कर्म–चक्रमुक्तः समप्रभः ।।५८।। ४२०

शुभाशुभपरो लोको–द्योतमूलमनायकः ।
शुद्धाभोऽनुप्रभोलोका–तीतः सिद्धेश्वरः समः ।।५९।। ४२८

टङ्कोत्कीर्णसमः सिद्धोऽमूर्तः सत्यः परः शुचिः ।
अविशिष्टो विश्वसारो, विश्वयोनिर्गुणात्मकः ।।६०।। ४३८

दर्शनमय अपूर्णो, निजकार्यसुकारणम् ।
हानोपादानशून्यश्च, शैवसाधनमूलकः ।।६१।। ४४२

सर्वशुद्धात्मभावश्चा–नादिमुक्तो निरामयः ।
स्वयंभूष्णुः परं ज्योति–र्भगवान् विरजाः प्रभुः ।।६२।। ४५०

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

९ अगस्त १९५६

श्रीशोऽभयो निरंशश्च, विश्ववन्द्यो बुधार्चितः ।
स्वविलासो विसङ्गश्च, जगदाराध्य ईशिता ॥६३॥ ४५८
स्वप्रतिष्ठः प्रकाशात्मा, शिवदः शान्तिदः स्वराट् ।
श्रेयोनिधिश्च कल्याण–मूर्तिरनघो मुनीश्वरः ॥६४॥ ४६७
सर्वलोकातिगः सर्व–लोकस्थः क्षेमकृज्जयः ।
श्रीनिवासोऽप्रतीघातः, स्वाधिष्ठाता सुखावहः ॥६५॥
भावकर्मविनिर्मुक्तो, द्रव्यकर्मविवर्जितः ।
नोकर्मरहितः शुद्ध–चैतन्योऽनन्तवीर्यभाक् ॥६६॥ ४७९
विश्वावतंस ॐमूर्ति–मूर्तिशून्यश्च धर्मगः ।
धामेश्वरो निराबाधो, निर्लिङ्गः स्वचतुष्टयः ॥६७॥ ४८७
विश्वास्यः परमो विश्वा–वेद्योऽतिमहिमालयः ।
स्वसर्वस्वैकभावश्चा–मृतसङ्गाऽक्षयो निधिः ॥६८॥ ४९३
भ्राजिष्णुरजरोऽमर्त्यो–ऽसंभूष्णुरजरोऽरजाः ।
वरदः परमो देवो, ज्ञानदर्शनभाक् पुमान् ॥६९॥ ५०३

इति शुद्धादिशतम् ॥५॥

ॐ ह्रीं शुद्धादिशतनामवाच्याय सहजसिद्धपरमदेवाय नमः

धर्मो धर्माकरो धर्मी, धर्मात्मा धर्मनायकः ।
धर्मेश्वरश्च धर्मश्री–धर्ममूर्तिः स्वधर्मभाक् ॥७०॥ ५१२
निःसपत्नस्वभावश्च, नानापर्यायनिष्ठितः ।
नियतस्वप्रदेशश्च, पराशिष्यो निजोन्मुखः ॥७१॥ ५१७
संसारसिन्धुपोतश्च, लोकमात्रप्रमाणितः ।
अतद्भिन्न उदाराध्यो–ऽकः परप्रतिपादकः ॥७२॥ ५२३
द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तो, निर्मुक्तोऽभवकारणः ।
निरुपाधिमहानन्दः, सच्चिदानन्दमूर्तिकः ॥७३॥ ५२८
त्रैकालिकः स्वयम्भूश्च, ज्ञानपुञ्जो निरावृतः ।
शान्तिस्रोतो जगत्त्राता, दुर्गो दीप्तश्च केवलः ॥७४॥ ५३७

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

१० अगस्त १९५६

धर्मशास्त्रिजगद्बन्धुः, सार्वो भावो गुणो गुणी ।
आनन्दमय ईशानोऽनन्ततेजोमयोऽच्युतः ॥७५॥ ५४७
सुधामा स्वकुलोऽमोहो–ऽतृष्णोऽकोपोऽमृतोऽसमः ।
निष्कर्माऽशङ्क इज्यार्हो–ऽरात्रोऽद्वेषोऽछलोऽमदः ॥७६॥ ५६१
धीरो वीरः सरः सारो–ऽमलोऽदोषश्च भूतभूत् ।
नयातिक्रान्त इष्टेशः, कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥७७॥ ५७२
कामधेनुर्महाशीलो, ज्ञानग्राह्यश्च निष्क्रियः ।
सिद्धधर्मा, स्वयंसिद्धो, महेज्यो विश्वतोमुखः ॥७८॥ ५८०
स्वगुणैकप्रमाणो नि–श्चयसद्दर्शनाश्रयः ।
निजषट्कारकोन्मग्नो, ज्ञानिव्यक्त उदाश्रयः ॥७९॥ ५८५
यदौन्मुख्यसमानन्दो, भव्याराध्यो विनामकः ।
लीलानिधिः परो बन्धुः, परं मित्रं परं तपः ॥८०॥ ५९२
कूटस्थः पञ्चमो भावो–ऽमूलः सन्तानशासकः ।
संसारतरणोपायः, स्वरूपस्थितिकारणम् ॥८१॥ ५९८
अनीश्वरो महेशश्च, समाराधित आप्रभः ।
ज्ञानित्ववेदनाशीलो–ऽवध्यबोधवपुः शमी ॥८२॥ ६०५

इति धर्मादिशतम् ॥६॥

ॐ ह्रीं धर्मादिशतनामवाच्याय सहजसिद्धपरमदेवाय नमः

रामः समञ्जसज्ञानी, द्विपादश्च स्वयम्प्रभुः ।
परः शिवमयः सूक्ष्मो भवदाहहरो हरः ॥८३॥ ६१३
परिणामभवो द्रष्टा, परिणामयुतो विभुः ।
परिणायगतो ज्ञाता, परिणामरहो विधिः ॥८४॥ ६२१
मह्योऽमेयो महामन्त्री, महाधर्मो महामहाः ।
महो महान्महाधामा, महावीर्यो महाबलः ॥८५॥ ६३१
मुद्रातीतो महाबुद्धः, स्वसंवित्तिमयोऽचलः ।
मन्त्रमूर्तिरलक्ष्यात्मा, संयमो मङ्गलोदयः ॥८६॥ ६३९

Report any errors at vikasnd@gmail.com

महद्दानो महानन्दो, महाज्ञानो महागुणः ।
महार्हः सहजज्योति–रक्षोभ्योऽचिन्त्यवैभव ॥८७॥ ६४७

११ अगस्त १९५६

पुरुषार्थमयो वर्य–स्त्रिगुणः परमेश्वरः ।
प्रजापतिर्नयातीतो, दृशिज्ञप्तिचरित्रयुक् ॥८८॥ ६५४
असद्विकल्पसंकल्पः, शुद्धरत्नत्रयाश्रयः ।
प्राप्यमाणस्वभावोऽवा–ग्गोचरः संवरात्मकः ॥८९॥ ६५९
स्वदीयमानभावत्वो, भावोद्भूवनसाधकः ।
उपायोपेयभावात्मा, भावाधार अनाननः ॥९०॥ ६६४
भावान्तरच्छिद्वस्वप्नोऽकृतको व्यापकोऽधिपः ।
पूर्णज्ञानघनः सिद्ध–प्रतिच्छन्दः स्वभावभुक् ॥९१॥ ६७२
पुण्डरीकः प्रधानश्च पिता पाता पतिः प्रियः ।
प्रेयान् परिवृढः पूतः पारकृच्च परं रहः ॥९२॥ ६८३
अमोघः प्रथितो देवः, शेमुषीशश्च शंकरः ।
प्रमाता विक्रमी वर्यः, स्ववरः परमेश्वरः ॥९३॥ ६९३
प्रकृतिः प्रणवोऽनिन्द्यः, प्रमाणं भवतारकः ।
कर्मगः कारणं कर्ता, महेन्द्रमहितो मुनिः ॥९४॥ ७०३
सुवृत्तसहजावस्थो, मौनमानमनःस्थितः ।
व्रताव्रतविनिर्मुक्तो, भावाभावविबन्धनः ॥९५॥ ७०७

इति रामादिशतम् ॥७॥

ॐ ह्रीं रामादिशतनामवाच्याय सहजसिद्धपरमदेवाय नमः

महेशो विभवो भास्वान्, वृषेशोऽजितशासनः ।
श्रेयोमयो विदेहश्च, वीरो धीरः सनातनः ॥९६॥ ७१७
ज्ञानी ज्ञानमयो ज्ञानं, धर्म्यः कल्याणनायकः ।
गुणमूर्तिरनन्तौजा, नित्योद्योतश्च दर्शकः ॥९७॥ ७२६
चैतन्यवपुराधारो, निर्मलः सुगनः सुहृत् ।
मूलकर्ता स्वयंकर्मा, स्वाधारो मूलकारणम् ॥९८॥ ७३४

Version 1

ज्ञानात्मा निराबाधो, निष्कलश्चाचलस्थितिः ।
भूतनाथो विविक्तात्मा, विश्वसृड्विश्वनायकः ॥९९॥ ७४२

१२ अगस्त १९५६

द्रव्यका एक समयमें एक परिणमन है, जब द्रव्य जिन योग्यताओंवाला होता है उनमेंसे किसीरूप परिणमजाता है। वह किसरूप परिणम जावे यह योग्य निमित्तको पाकर होता है सो उन योग्यतावोंमें कलहका अवसर नहीं आता।

ऐसा होनेपर भी यह विशेषता अपादानकी है निमित्तकी नहीं। निमित्तभूत द्रव्य तो ३ खुद अपनेमें अपने चतुष्टय से परिणम रहा है वह अन्यमें कुछ असर नहीं करता। परिणमान उपादान स्वयं अपना असर प्रकट कर लेता।

द्रव्य सत्। जो सत् है, वह अनादिसे है व अनन्तकाल तक रहेगा। प्रतिसमय सत् एक एक अवस्था याने पर्याय में रहता है। सो द्रव्यकी अनादि निधनता के प्रकट ज्ञानके अर्थ यह परिचय होता है कि तीनकालोंकी पर्यायोंका समूह द्रव्य है। जो द्रव्य है व अनिर्वचनीय है।

द्रव्य एक सत् है और वह प्रतिसमय एक पर्यायरूप है। द्रव्यमें भूत भविष्य की सब पर्यायें रहती है ऐसी बात नहीं। किन्तु यह बात है कि द्रव्यमें भूत भविष्य की परिणति होनेकी शक्ति है सो शक्तिमें यह निश्चित नहीं होता कि इस पर्याय के बाद यही पर्याय हो। होता यद्यपि ऐसा ही है कि जब जो होना उसी क्रम से होना। किन्तु जो साइन्सपूर्वक हुआ व होगा उसको अभी ज्ञानमें लेलिया इस ओरसे देखो—जिस क्रम से जो होना वह होता ही है इस विषयकी पद्धति ठीक जान ली जाय तो सम्यक है। पद्धति विपरीत हो तो सम्यक् नहीं।

१३ अगस्त १९५६

वस्तुस्वरूप तो वस्तुमें होता है सो किसी वस्तुका वास्तविक ज्ञान करना है तो उस वस्तु की बात उसी वस्तुमें देखो। आत्मवस्तुके सम्बन्धमें भी ऐसा देखा—ऐसा देखने पर परकी ओर दृष्टि न रहनेसे परका आश्रय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उपयोग होगा नहीं तब रागादि विभाव का अभ्युदय छीन होकर नष्ट होजावेगा। क्योंकि यहां स्वका आश्रय आगया ना। निमित्तदृष्टि नैमित्तिकभावको बढ़ाती। केवल स्वदृष्टि नैमित्तिभाव को हटाती हुई होती।

आत्मन् ! तुम अकेले हो तुम्हें अपनी शांति चाहिये। तुम अपना ही तो कुछ करसकते। आओ स्थिरचित्त होकर निजध्यानमें रत होजावो। देख लो अपने आपको एक देखलो जैसे कि तुम ध्रुव हो। देखलो जैसे कि तुम हो। परका तुममें अत्यन्ताभाव है। सो परके संयोगकी बातके ढिग भी न आना।

करलो चतुराई, देखलो जुदाई। या लो प्रभुताई।

ॐ शुद्धं चिदस्मि।

१४ अगस्त १९५६

कल्याणप्रकृतिर्भद्रोऽकृतोऽबन्धो निरन्तरः।
परमुक्तः स्वयंभूश्च, कलातीतः कलाधरः ॥१००॥ ७५१
धर्मपालश्च लोकेशः सर्वगो लोकनिर्गतः।
लोकातिगः पुराणाद्यो, विश्वज्येष्ठः सुदर्शनः ॥१०१॥ ७५९
कर्महा सुभगोऽनन्त-धर्मा कान्तश्च पौरुषी।
त्यागशीलो बृहन्नाथश्चाधियो ज्ञानबल्लभः ॥१०२॥ ७६८
ज्ञानगर्भोऽव्ययोऽभेद्यः, सत्यार्थो मंगलोदयः।
स्वाश्रितः परमानन्दः, श्रीधरो महितोदयः ॥१०३॥ ७७७
वरेण्यो निर्गुणोऽगण्यो, गुणग्रामो गुणाकरः।
पारगो गहनो गुह्यो, गणज्येष्ठो निराश्रयः ॥१०४॥ ७८७
इत्यः स्तुत्यः स्वयं स्रष्टा, कः खं गः स्वविलासकः।
श्रीमांल्लक्ष्मपतिर्जिष्णु-रचिन्त्यात्मा निजो जिनः ॥१०५॥ ८००
निर्द्वन्द्वः सहजज्ञानं, शक्तिमात्रममूर्तिकः।
सच्चिन्नियमसारश्च, प्रतिभासस्वरूपकः ॥१०६॥ ८०८

इति महेशादिशतम् ॥८॥

ॐ ह्रीं महेशादिशतनामवाच्याय सहजसिद्धपरमदेवाय नमः

चिन्मयः सुगतः स्वामी, वीराराध्यः सदाद्युतिः।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्तमार्थः प्रसन्नस्वो–ऽक्षय्यो जय्यः पराक्रमी ॥१०७॥ ८१८
विश्वभृद्विश्वतःपादो, योगाधारो महाक्षमः ।
वियोगः परमस्तुत्यो, जगद्योनिः सुसंवृतः ॥१०८॥ ८२६
त्राता च परमोपास्यो–ऽजर्यो यज्ञः समाधिदः ।
शंवेशः परमाराध्यः, स्वयम्मन्त्रश्चिदात्मकः ॥१०९॥ ८३५
वेदेशो विश्वरूपात्मा, विद्यानिधिरुमेश्वरः ।
अप्रतर्क्यो जगच्चक्षु–र्निबन्धो जिनपालकः ॥११०॥ ८४३
अदीक्ष्योऽदीक्षितोऽदेहो, दिव्यौजास्तुङ्ग आत्मभूः ।
अनाकांक्षो निदानो नि–ष्कषायविषयोऽतुलः ॥१११॥ ८५३
भूतावस्थत्वशक्त्यात्मा, दुष्प्राप्यो मोक्षदोऽग्रिमः ।
अयज्योऽयाजकोऽयाज्यो, द्विजाराध्यः सदाश्रयः ॥११२॥ ८६२

१५ अगस्त १९५६

निःशेषान्तर्मुखोऽच्छेद्य, शुद्धान्तस्तत्त्वभूमिकः ।
परद्रव्यनिरालम्बः, शुद्धभावसुचेतकः ॥११३॥ ८६७
शुद्धरत्नत्रयात्मा सु–श्रीरुपयोगकारणम् ।
ध्यानध्येयविकल्पाती–तोऽन्तर्बाह्यक्रियासुमुक् ॥११४॥ ८७२
स्वभावानन्तचातुष्कः, परद्रव्यपराङ्मुखः ।
जिनधुर्योऽगतिस्तीर्थो, जिनधर्मो जिनोद्वहः ॥११५॥ ८७९
शुभशुद्धाशुभध्याना–तीतोऽभेद्यो निरर्गलः ।
चैतन्यनित्यतादात्म्य–श्चोपयोगैककारणम् ॥११६॥ ८८४
शुद्धान्तस्तत्त्वविष्णुश्च, दृग्ज्ञप्तिचरितात्मकः ।
परमस्वभावशक्त्यात्मा, कारणशुद्धचेतनः ॥११७॥ ८८८
सतताान्तर्मुखाकारः, साहजचिद्विलासितः ।
नित्योन्मीलितशुद्धज्ञा–नोऽपर्यायश्च पर्ययी ॥११८॥ ८९३
अतीन्द्रियस्वभावः स्व–स्थः साक्षान्मोक्षमूलकः ।
स्वभावसत्त्वमात्रो नि–र्गलनश्चानपेक्षकः ॥११९॥ ८९८
नयपक्षाक्षतोऽनङ्गो, मुक्तिकारणकारणम् ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भव्याभव्यविकल्पान्तो, मुक्तामुक्ताविकल्पितः ॥१२०॥ ६०३

ज्ञानज्ञेयमयाद्वैतो, वाङ्मनःकायतः पृथक् ।

सर्वव्याप्येकचिद्रूपो भगवान् पारमार्थिकः ॥१२१॥ ६०८

इति चिन्मयादिशतम् ॥६॥

ॐ ह्रीं चिन्मयादिशतनामवाच्याय सहजसिद्धपरमदेवाय नमः

सुहितः श्रीनिवासश्च, प्राकृतोऽसंस्कृतोऽहृतः ।

सुसंस्कृतः स्वसंवेद्यो, योगेन्द्रोऽजात उत्तमः ॥१२२॥ ६१८

स्वसंवेदनसिद्धः शं, सन्तप्तहिमशीतलः ।

स्वतःप्रसिद्धकैवल्यो, निरपायोऽभयास्पदम् ॥१२३॥ ६२४

निर्विषयः स्वयंश्रेयः, सर्वंसारस्तृतीयकः ।

तोषमूलमनाहारोऽखण्डितोऽकर्मकोऽप्रजः ॥१२४॥ ६३३

१६ अगस्त १६५६

जो जो देखी वीतरागने सो सो होती वीरा रे ।
अनहोनी नहिं होसी कबहूं काहे होत अधीरा रे ।

लौकिक प्रकाश प्रकाश नहीं; आत्माका प्रकाश ही एक अपूर्व प्रकाश है जिसमें सब कुछ प्रतिभासित होता है ।

आत्मन् ! कुछ सोचना ही तत्काल अहित है । तू कुछ सोच ही मत । किसे सोचना है क्या कोई पर वस्तु तुममें कुछ परिणमावेगी ही नहीं । सब तुमसे भिन्न है किसे सोचते । जिस समय सोचने का परिणमन होता है उस समय कुछ तो क्षोभ रहता ही है वह बिगाड़ है । सोचना एक अध्रुव परिणमन है वह होकर तुरन्त नष्ट होजाता है । किन्तु तुम्हें क्षुब्ध कर जाता है और आगेके क्षोभकी परम्पराका कारण बन जाता है । ऐसे अध्रुव असार कार्यको तुम करो ही न । प्रियतम ! तेरा अटका ही क्या है जो अपने बीच किसी पर पदार्थको किसीरूपमें बसाते हो तुम तो स्वयं आनन्दमय, सच पूछो तो परका सोचना ही तुम्हारे आनन्दका साक्षात् अन्तराय है ।

इतने अज्ञानी न बनो, अपने आपपर इतने मत रूठो । 'विभाव विदेशियोंनें तुम्हें गुलाम बना दिया है–उस गुलामीको तोड़ो अपने सत्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वरूपको देखकर उसी सत्य का आग्रह करो।

१७ अगस्त १९५६

संसारमें जितने जीव हैं सबका एक लक्ष्य है शांति। यह अच्छा है कि सबका लक्ष्य स्वभावतः शांतिका है। अतः वास्तविक शांतिके मार्गमें लगना कठिन नहीं है। शांति तो आत्माका स्वभाव ही है। शांतिकी वधिका केवल परात्मबुद्धि है। परात्मबुद्धिके त्यागके लिये परसंयोग त्यागनेका यत्न होना चाहिये। इसके अर्थ चरणानुयोगकी सम्मतिसे कदम बढ़ाना चाहिये। भगवंत अरहंतका प्ररूपित मार्ग पूर्ण सत्य है। इस ही मार्गसे उद्धार संभव है।

अब तक अनेक विकल्प हुए, वे सब विकल्प पाप हैं। शुभविकल्प हुए वे भी स्वास्थ्यसे दूर रहनेके कारण बने।

हे निजहाथ जब तक शक्ति खोलकर आगे नहीं आते तब तक ही मुक्तिमार्ग, निर्विकल्प परिश्रम, साम्य अब कठिन दीखते। शक्ति खोलकर बढ़नेमें संसार भाव विकल्प परिणाम, वैषम्यभाव सभी कठिन होजायेंगे।

एक बार का पुरुषार्थ भर करना है फिर तो उपादेय मार्ग सरल व उपादान बनता चला जावेगा।

जगतमें कोई किसीका साथी नहीं है। सर्व माया है। कितना भी चित्त जाताहो परकी ओर सदा ध्यान रखो, वह सब माया है धोका है, स्वयं है।

अब किसे क्या बताता, सभी समस्यावोंका कर ले अभी हल, खुदका पन्थ चल, क्या चिन्ता करता क्या होगा कल, मोहतम दल, फिर न रहेगा मुझमें विकल्प खल, जो विभाव होते हैं उन्हें जाने दो टल, वे स्वयं रहते नहीं है एक भी पल, प्राप्त कर अपने ज्ञान का वल उपाधियां स्वयं ही जांयगी गल, पायेगा अपने स्वभाव का अमृत फल।

१८ अगस्त १९५६

धर्ममार्गमें एक चित्त होकर लग जावो, परके लिये कुछ गुंजायश न रखो विकल्परूप।

हे नाथ! सर्वज्ञदेव! उवार लेना मुझे! आपका ध्यानका सहारा बना रहे मुझे। मैं कुमार्गमें भी भटक गया हूं तो भी आपकी डोर मैंने छोड़ी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं थी। आपके ज्ञानमें भी ऐसा ही झलक रहा ही होगा। क्यों न झलकेगा। मेरी बात मैं जानता हूं ना। वह ऐसा ही है। जो जैसी है वैसी अरहंत भगवंन के ज्ञानमें झलकेगा ही। इसमें तो कभी भ्रम हो ही नहीं सकता। अब समझे नाथ ! उबार लेना मुझे।

अनेक समय के एकत्रित, संचित भी पाप क्षण भर के आत्मानुभयसे एक दम समाप्त हो जाते हैं। कितना भी भ्रम लिया हो, भटक लिया हो, घबड़ानेकी बात तो कुछ भी नहीं। जो कुछ हुआ होना ही था हुआ, निमित्त-नैमित्तिक भावकी असफलता नहीं होती, नहीं हुई। अब तो इसकी आलोचना करने लगे। सो यह तो निश्चित हो गया कि ज्ञानविकासका समय आगया। अब जोर लगा लो, सदा केलिये दुःखसे छुटकारा पालो।

१६ अगस्त १९५६

नाथ कहते हैं उसे जिसका न अर्थ, आदि नहीं है। वह मैं ही तो हूं। घमंड के साथ, अध्यवसानके साथ नहीं कहता, क्योंकि वह मैं नहीं हूं।

प्रभु उसे कहते हैं जो प्रकृष्ट रूपसे हो सके, जो अभी हो रहा वह मैं नहीं हूं। आगे भी जो होगा वह भी मैं नहीं हूं। प्रकृष्ट रूप भी जो होगा वह भी मैं नहीं हूं। केवल वह मैं हूं जो प्रकृष्टरूपसे होसके, उसका सत्त्व अब भी है, है पर्यायो से तिरस्कृत। किन्तु है, आयगा समय, होगा आविर्भूत। वहां भी जो आविर्भाव है वह मैं नहीं हूं। आविर्भावों में भी जो तिरोभूत है, वह मैं हूं।

अरहंत भगवंत, सिद्ध महंतकी उपासना, उनके स्वरूपकी सच्चिन्तना उत्साह देती है निजनाथ, निज प्रभु की अनन्य सेवाके लिये। हे भगवत्स्वरूप! हृदयमें विराजो। यदि तुम क्षण भर भी मेरे से अलग न होओ तो कोई आपत्ति माने संसारभाव हो ही न सकेगा।

निर्विकल्प परिणाम ही अमृत है। अमृतके सेवन का अवसर योगियोंको ही प्राप्त होता है। तभी तो मर्म की अजानकारीमें पौराणिक कुछ कथायें भी कहीं ऐसी होगई कि अमुक सन्यासीने राजाको अमृत फल दिया आदि।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

२० अगस्त १९५६

लोकमें अनंतानंत तो जीव है, अनंतानंत पुद्गल हैं, धर्मद्रव्य एक है, अधर्मद्रव्य एक है, आकाशद्रव्य एक है, काल द्रव्य असंख्यात हैं। इनम से प्रत्येक द्रव्य अपनी अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे हैं। कोई किसी अन्य के द्रव्य क्षेत्र काल भाव से नहीं है। यह है वस्तुकी स्वतन्त्रता। जब हम किसी अन्य के द्रव्यरूप नहीं है, किसी अन्यके प्रदेशोंमें मेरा वास नहीं है, किसी अन्यके परिणमनसे मैं परिणम नहीं सकता। किसी अन्यके गुणों से मेरा सत्त्व नहीं, मैं स्वयं स्वचतुष्टयरूप हूं, तब परका मुझसे क्या सम्बन्ध ?। अब मोह, अज्ञान को स्थान कहां रहा।

मेरा कुछ भी कहीं नहीं है। मेरा मैं हूं। वह मैं जो मेरा है वह मुझसे अन्य नहीं, इसलिये, यह ही आखिरी बात ठहरी कि मैं मैं हुं। इसका भाव यह हुआ कि मैं मेरे अतिरिक्त अन्य किसी रूप भी मैं नहीं हूं। दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहूं अभिराम।

आत्मन्। तुम इतने ही हो न जितने अभी अनुभवमें भी आये थे, बस उतने ही रहो, आनन्द ही आनन्द बरसेगा।

आत्मा, ब्रह्म, जीव, चेतन, पुरुष, प्रतिभास, कारणपरमात्मा, परम-पारिणामिकभाव, ईश्वर, प्रभु, शिव, ब्रह्मा, धाता, शंकर आदि सब चैतन्य-स्वरूपके नाम हैं।

२१ अगस्त १९५६

दूसरेके अवगुणोंपर दृष्टि रखना अपना पतन करना है। किसी महापुरुषकी शिथिलताका ध्यान करना भी अपना पतन करना है।

दूसरे के सद्गुणोंपर दृष्टि रखना अपना विकास करना है। महा-पुरुषकी शिथिलता अपने ज्ञानमें आके तब "कर्मके उदय बड़ोंको भी भ्रष्ट कर देता है, यह भ्रष्टता पतन है सो कर्मके उदयपर थोड़ा विवेक ही तो रखना है इसी में विजय है" ऐसा विचार कर अपनेको उन्नतिकी ओर बढ़ाये जाना अपना सच्चा विकास है।

आत्मन्! केवल दूसरोंको देख। दोष भी होता है तो वह तेरा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विकल्पपरिणमन है। सद्विकास भी होता है तो वह तेरा समाधि परिणमन अथवा स्वभावोन्मुखताका फल है।

तेरा सुधार तू ही कर सकता है, अन्य कोई नहीं। तेरा बिगाड़ तू ही करता है, अन्य कोई नहीं। आनन्द मग्न तुम ही आप अपने आप अकेले होते हो, वह आनन्द किसी अन्यके द्वारा प्रकट नहीं होता और न अन्य के द्वारा बांटा जा सकता है। ज्ञान भी तुम्हारा तुमसे ही अकेलेसे प्रकट्त होता है, ज्ञान भी अन्य किसीके द्वारा प्रकट नहीं होता और न अन्यके द्वारा बांटा जा सकता है।

अपनी सब प्रकार से अनन्यताको समझकर अपने आपकी ओर ही रह, परके सम्बन्धकी बुद्धि की रस्सी काट।

२२ अगस्त १६५६

आज महान् ऐतिहासिक दिवस है—चतुर्थ काल में एकदा श्री अकंपनाचार्यसंघ जिसमें ७०० साधु थे, घोर उपसर्ग हुआ। स्वयंकी मूर्खतासे अपमानका अनुभव करनेवाले बलि आदि मंत्रियोंने छलकर पद्मनाभ राजासे ७ दिन को राज्य लेकर उनने इस संघ पर उपसर्ग किया। साधु संघ जहां स्थित था उसके चारों ओर व उनके बीचों बीच लकड़ी ईंधन, हड्डी चर्म आदि डलाकर अग्नि लगवा दी। भयंकर दृश्य था साधु समतासे अध्यात्मकी ओर लग गये। उस समय विष्णु नामक साधुने जिनके तपस्याके कारण वैक्रियक ऋद्धि थी, वामन रूप बनाकर साधुसंघका उपसर्ग दूर किया।

यह आत्मा भी साधना में लगा है। भूलसे पहिले जो उपयोगका अपमान हुआ था उसमें जो कर्म बन्ध गये थे उनके उदयकालमें, राज्यकालमें, साधना में लगे रहने पर भी विभावोके उपसर्ग हो रहे हैं यहां अनन्त गुणों पर उसर्ग हो रहे हैं। इस उपसर्ग को बचानेमें विष्णु (ज्ञान) ही समर्थ है वह यद्यपि बड़ी ऋद्धिका धारिक है तीनों लोक व तीनों कालमें एक ही समय फैल जावे इसकी इतनी अद्भुत स्वाभाविक ऋद्धि है तथापि यह ज्ञान वामनरूप बनाये याने केन्द्रीभूत हो जाये तो यह विभावका उपसर्ग समाप्त होजायगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

२३ अगस्त १९५६

आज सोलह कारण व्रत लग रहे हैं। सोलह कारण भावनायें बड़ी पुण्य भावनायें हैं। इन भावनों से पवित्रताकी वृद्धि है। इसका कार्य पवित्रता है तभी तो लोक में सभी पवित्रतावों का व पूर्णतावोंका नाम "सोला" हो गया। महिलायें शुद्ध चौकाके लिये कहतीं कि सोला पालो, धोती सोला की है आदि। लोक में भी देखो लोग कहा करते हैं यह बात सोलह आना ठीक है। सोलह आनेकी मुद्रा होती है। सोलहका बटवारा छोटेसे छोटे अंश तक पहुंच जाता है। सतियोंके नाम अनेक हैं किन्तु सोलह सतियों के नाम पूरे गिनाकर भी सोलहका महत्त्व ऋषिओं ने दर्शित किया है। शृङ्गार भी सोलह उत्तम माने जाते हैं। वस्तुतः शृङ्गार आत्माका यही सोलह कारण अब है। और भी देखो व्यवहारमें कुलीन मनुष्यके सोलह संस्कार फेरके उसे पवित्र बनाया जाता है।

किसीका कोई साथी नहीं, किसीका कोई हितू नहीं। सर्व जीत अपने आपके उपयोगमें परिणमते हैं। कषायका कषाय परिवार है। कषायका कषाय मित्र है। मित्रता (दोस्ती) कर लेना बहुत आसान काम है। मित्रता कहते किसे हैं ? कषायसे कषाय मिल गई, तो मित्रता हो गई। एक मनुष्यका किसी दूसरे मनुष्यके प्रति वैर परिणाम है, यदि कोई दूसरा भी ऐसा मिल जाय जिसका उस अन्यके प्रति वैरका परिणाम हो तो यह लो उस एकका मित्र बन गया।

२४ अगस्त १९५६

दर्शनविशुद्धि भावना उच्चतम पुण्य का मूल है। इस भावना से पढ़कर कोई भी ऐसी भावना नहीं है जो उच्च पुण्यका कारण बने। चाहे अन्य भावनायें संवर निर्जराके अधिक समीप ले जायें यह अन्य बात है।

दर्शनविशुद्धिका अर्थ है—दर्शन सति विशुद्धिरिति दर्शनविशुद्धिः। सम्यक्त्व के होने पर जो उच्चतम शुभोपयोग सम्बन्धी विशुद्धि है वह दर्शनविशुद्धि है।

इन भावनामें यह परिणाम मुख्य रहता है कि देखो समस्त बन्धनोंसे,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आपदावोंके छुटकारा पा लेनेका मार्ग अत्यन्त सरल है समीप है इस, किन्तु इसके जाने बिना जगत दुःखी हो रहा है, कैसे ही, जल्दी ही, जीव इस सरल आसान, स्वाधीन निज चैतन्य मर्म को जान जावे और सर्व जाल, विपदावों से मुक्त होकर अतुल परम आनन्दमय होजावें।

हे आत्मन् ! मत दुःखी होऊ, छोड़ो सर्व विकल्प जालों को, छोड़ो सर्व विचारोंको, छोड़ो सर्व पदार्थों के विचारोंको, हटावो अपने उपयोगसे समस्त पर पदार्थोंको। क्या रखा इस बेवकूफीमें कि सम्बन्ध तो तेरा एक अणुमात्र भी अणुमात्रसे नहीं है और अपने निर्मल चैतन्य प्रभुताई में अनेक जड़ोंको बिठा दिया है। अपनी रक्षाकर, अपने प्रभुकी शान रख, अपने प्रभुकी प्रभुताईमें अब कलंक न लगने दे।

अपना उपयोग अपने चैतन्य महाप्रभुकी ओर रख जोकि बड़ा आसान काम है इसीमें महान आराम है।

२५ अगस्त १९५६

लोग किसीको बड़ा बतानेके लिये व आत्मीयता बताने केलिये कह देते हैं कि हमारा इनसे प्राचीन सम्बन्ध है, हमारा इनसे बड़ा सम्बन्ध है। परन्तु सम्बन्ध शब्द का क्या अर्थ है इसपर दृष्टि होतो निन्दा ध्वनित होती है।

सम्बन्ध— सं+बन्ध=अच्छी तरह जकड़ लेना बांध लेना या बंध जाना। यह अवस्था बिगड़ी अवस्था है इससे ध्वनित हुआ कि कहने वाला भी बिगड़ा है और जिससे कहा जा रहा है वह भी बिगड़ा है।

आत्मा जैसा परसे विभक्त होता चला जाता है उतना ही आनन्दित याने समृद्धि होता चला जाता है। वस्तुतः तो आत्मा पर से विभक्त है ही। आत्मा ही क्या समस्त पर पदार्थ सर्व अन्य पदार्थोंसे विभक्त है क्योंकि सर्व पदार्थों की स्वरूपसत्ता अबाधित एक निरन्तर रहती है। किन्तु उपयोग में मोहीको यह भान न था। अब जैसे भान करके यथार्थताकी, जैसे जैसे उपयोगद्वार से भी पर पदार्थोंसे विभक्त मानता चला जाता है। इस ज्ञानीका वैसे वैसे ही ज्ञान व आनन्द का विकास होता चला जाता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

काम तो पूरा बना बनाया है, मिजाज बगरानेका इलाज कौन करे। किसकी अटकी कि किसीको सुखी करनेको कमर कस ही लेवे। आत्मन् मिजाज छोड़ो, तीन लोक व तीन कालका विचार करो।

२६ अगस्त १९५६

जब तक आत्माकी कमजोरी है तब तक कहीं रहो वहीं कुछ या न कुछ निमित्त बनाकर परिणाम कलुषित करेगा। यदि पंडितोंका समुदाय मिले तब ज्ञान की बातें कह कर अपने मनका विलास करेगा। यदि साधारण बहुत समुदाय मिले तो उसके अनुरूप कह कर मनका विलास करेगा। यदि समुदाय कम मिले तो वहां कुछ भाव बनाकर विषाद करेगा। यदि निर्जन प्रदेश में रहना पड़े तो वहां कुछ नहीं है सो अनुभूत कुछ का स्मरण कर विषाद बनावेगा।

जब आत्मा आत्मयोगी बन जाता है तब कहीं रहो वहीं अपने आत्मारामका शरण पाकर प्रसन्न रहता है। समुदाय उसे न कुछ चीज है। निर्जन प्रदेश उसका सहायक चीज है। समागममें न हर्ष है, विभाजनमें न विषाद है।

ज्ञानीके स्वभावदृष्टि निरन्तर रहती है जिसके प्रसाद से अनतिचार शील और व्रत होना उसके सुगम है।

जिसका चारित्र है उसका सर्व वैभव है। जिसने अपना चारित्र खो दिया उसने अपना सब लुटा दिया। चारित्र हीन सदा संक्लिष्ट रहता है। चारित्रवान सदा बलिष्ठ रहता है।

अनेक उपसर्ग आवें, अनेक दुर्भावनायें आवें हे जगत्! चारित्रकी रक्षा करो, ज्ञानबलसे उपसर्ग एवं दुर्भावनावोंका सामना कर उन्हें दूर हटावो।

२७ अगस्त १९५६

मन ठाली है, कलम लेकर तो बैठ गया, स्याही भी पास में है परन्तु लिखा क्या जायगा यह खबर नहीं। भावमें भी तो कुछ लिखनेको नहीं आरहा। चित्त तो समाधानरूप है, लेकिन यहां पासका यह प्रबन्धकोंका प्रबन्धसम्बन्धी वार्तालाप बाधकसा बन रहा है। वस्तुतः बाधक बाह्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वस्तु नहीं है क्योंकि परका अन्य सर्व परमें अत्यन्ताभाव है। बाधक तो स्वयं का कोई परिणमन स्वयंकी किसी परिणतिका है।

उपदानकी ओरसे देखो तो सर्व परिणमन होते चले जाते हैं वहां कोई किसीका बाधक नहीं।

मरणासन्न मानवके समीप बैठकर समताकी बात कह कर व अन्य वचनों द्वारा उसके भावके स्वास्थ्य होनेमें निमित्त बनना भी एक महनीय कार्य है। इसके स्व पर दोनोंको लाभ है।

अपना उपयोग निर्मल रहे ऐसी चेष्टा बड़ी साधना है। एतदर्थ ही सेवा व परोपकार है। एतदर्थ ही तप और संयम है। एतदर्थ ही अध्ययन व अध्यापन है। एतदर्थ ही यात्रा व सत्सङ्ग है।

जिनके मोह है उन्हें अपनी वर्तमान परिणति ही प्रिय मालूम होती है एवं उन्हें अपना वर्तमान परिणाम अपराध नहीं जचता। न जचे, एतावता उसके फल भोगनेकी जुम्मेदारी समाप्त न हो जावेगी।

सम्मत दोषोंकी खान पर्यायबुद्धि है। इसके रहते कल्याण नितान्त असंभव है।

२८ अगस्त १९५६

संसारमें सबसे बड़ा दुःख है जन्म मरण। जन्म मरणकी जड़ है देहमें आत्मबुद्धि। देहमें आत्मबुद्धिका कारण है अज्ञान। अतः सारा दुःख जिन्हें दूर करना हो उन्हें अज्ञान विनाशका उपाय करना चाहिये। एतदर्थ स्वाध्याय व अध्ययन उत्तम उपाय है।

२९ अगस्त १९५६

जिनका जीवन गुजरनेके अन्तिम क्षणोंमें है उनके परिणाम या तो अधिक पछतावे के होया करते है या निर्विकल्पता की प्रगति को लिये हुए होते हैं। इन दोनोंके २ कारण हैं— (१) जीवनमें यदि कुछ धर्म न कर पाया, विषय कषायोंमें बसा हुआ समल परिणाम रहा आया तो अन्तमें पछतावा के संक्लिष्ट परिणाम होते हैं। यदि जीवन व्रत संयमसहित बीता, माया मिथ्या निदानके परिणामोंमें कलुषित न रहा तो ऐसे परमसंतोषके जीवन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वालेको निःसंगता के भाव, वैराग्य के भाव, आत्मदृष्टि के परिणामोंकी प्रगति के कारण निर्विकल्पताकीप्रगतिके भाव होते हैं।

अपना कल्याण सोचो। दूसरोंपर यदि असर होता है, होगा तो वह तुम्हारे कल्याणमय विचार के हेतु।

अतः स्वकल्याण, निजसदाचारकी प्रवृत्ति स्वपरोपकारिणी है।

कौन कबतक यहां रहेगा। कुछ अन्दाज है। कुछ पता नहीं। तुम्हें अपना भी पता है? ऐं ऐ क्या कुछ निश्चय नहीं तो लो अभी से धर्ममार्गमें लगो।

३० अगस्त १९५६

तत्त्व और अर्थ में क्या अन्तर है? जितना कि भाव व द्रव्यमें।

गुण व गुणपर्यायमें किस किस विषयका अन्तर है? ध्रुव अध्रुवका; अन्वय, व्यतिरेकका; अपरिणामी; परिणामीका; सामान्यविशेषका; सहभू, क्रमभू का; शाश्वत, वर्तमानका और शक्ति, व्यक्तिका।

संयम और तपमें क्या अन्तर है जितना भक्ति और पूजामें।

स्वभाव और विभावमें कितना अन्तर है? जितना स्वच्छता और गन्दगीमें।

अच्छा हुआ कि ज्ञानसे कुछ सत्पथ की बात समझमें आई। परन्तु अच्छा तो तभी है जब आखिरी परिणाम भी अच्छा रहे।

बुरा हुआ कि परिणामोंमें उचित निर्मलता नहीं है पर बुरा तो और सर्वथा जब दृष्टि भी मलीनताकी ओर होती।

अनादिसे भली अस्त चले आये हुए इस आत्माको बड़ा हस्तावलम्बन श्रद्धा है।

यदि श्रद्धाका सहारा न हो तो अधमसे परम होना असंभव है।

हे निजनाथ! अब कबतक भटकना होना हमें और तुम्हें (यह पर्याय और स्वभावकी बातचीत है)।

३१ अगस्त १९५६

जनमनप्रिय! सज्जनमान! मुमुक्षुजनमनप्रिय! मुनिजनमनप्रिय!

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हे चैतन्यप्रभो ! तेरी संचेतनामें ही समस्त आनन्द है। जानता तो हूं पर मान भी जाऊं। मानता तो हूं पर मान भी जाऊं। मानता तो हूं पर मन भी जाऊं। ठानता भी हूं किन्तु निभाऊं और निभा जाऊं। यही तेरी भक्ति है, यही तेरा प्यार है। हे चैतन्य प्रभो अब गरीब न बनो, न बनाओ।

आत्माकी तीन दशायें हैं बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा इन तीनों दशाओंमें द्रव्य तो समान है। स्वभावदृष्टिसे निरपेक्ष तत्त्व परखा जाता है। वह तो मुझमें व परमात्मामें समान है किन्तु कहनेको तो ऊपरी अन्तर और गुजरनेको महान् अन्तर यह आया कहांसे, अरे भैया कहींसे नहीं केवल जानने मानने का फेर है।

हे स्वलोकनाथ ! केवल स्वकी ही खबर लेना। मैं ज्यादह बोझ नहीं डालता तुमपर।

हे आत्मन् ! तुम केवल अपना ही बोझ सम्हाल लो अपने उपयोगमें। इतने से अधिक और कुछ नहीं करना है कल्याण के लिये।

१ सितम्बर १९५६

अन्य कुछ क्या करना है ? कुछ नहीं। क्यों ? यों कि कुछ अन्य कर भी नहीं सकता। लोग तो अन्यको कुछ करते हुए देखते तो हैं ? नहीं फिर क्या बात है वह। वह सब आश्रयकी प्रधानतासे बोलनेका व्यवहार है। तो क्या तुम ऐसा जिन्दगी में व्यवहार न करोगे ? करूंगा तो सही किन्तु मानूंगा यथार्थ। तो क्या यह मायाचारी नहीं हुई ? नहीं हुई। क्यों ? यों कि मानने में तो परमार्थ आता है किन्तु बोलनेमें परमार्थ नहीं आता है। बोलनेकी तुम जहां बात करते हो वहां व्यवहार ही आवेगा। व्यवहार से व्यवहार सत्य है।

व्यवहारभाषाका ठीक भाव समझ लेना ही ज्ञान है।

व्यवहारका कहा परमार्थसे मानो तो असत्य है, व्यवहारका कहा व्यवहार से मानो तो सत्य है, व्यवहारका कहा परमार्थका प्रयोजन बतावे तो व्यवहार प्रयोजनवान है।

सत्यका अर्थ सति भव सत्यम्। सत् में है द्रव्य गुण पर्याय। उसका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निर्वाचन नहीं होता जैसा है तैसा। अतः उसका जो भी संकेत है वह व्यवहार है।

२ सितम्बर १९५६

मनुष्यभवका लाभ मनु याने अवबोधत में है। अवबोध न पाया तो मनुष्य होने का क्या लाभ।

संसार दुःखका घर है, दुःख स्वरूप है किन्तु संसार है क्या? निजका विभाव परिणाम। निजके विभावका व्यय होना जो कि स्वाभाविक पर्यायरूप है वही मोक्ष है।

जितना वैराग्य है उतना कल्याण है, जितना राग है उतना अकल्याण है। आत्मा स्वयं कल्याणमय है परन्तु अपने भ्रमसे अकल्याणमय बन रहा है।

जीवकी भावशक्ति है उसका उपयोग चाहे अच्छा कर लिया जावे या बुरा किन्तु आत्मा विलक्षण शक्तिशाली है इसमें सन्देह नहीं।

सर्व अनर्थोंकी जड़ मोह है। मोहकी पुष्टि अज्ञानसे होती है। अतः मोहका विनाश चाहनेवालोंको अज्ञानके विनाश के अर्थ ज्ञानसाधना करना चाहिये। ताकि अभीक्ष्णज्ञानोपयोग बन सके। अभीक्ष्णज्ञानोपयोग ही कल्याणका कारण बनेगा।

वस्तु—जिसमें अनन्त गुण बसें। वस्तु—जिसमें स्वचतुष्टयसे अस्ति हो और परचतुष्टयसे नास्ति हो।

३ सितम्बर १९५६

अंगुरुलघु—न ऐसा भारी हो जावे कि अपनी सीमाको उल्लंघकर अन्य द्रव्यरूप भी परिणम जावे और न ऐसा लघु हो जावे कि अपना परिणमन भी उड़ा देवे याने परिणमन ही बन्द हो जावे।

पदार्थ है, है का काम अस्तित्वने किया। पदार्थ अपने चतुष्टयसे ही है पर के चतुष्टयसे नहीं यह काम वस्तुत्व गुणने किया।

पदार्थ परिणमन शील है यह काम द्रव्यत्वगुणने किया।

पदार्थ अपने असाधारण गुणोंकी सीमामें ही परिणमते अपना स्वभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

छोड़ अन्य द्रव्य रूप न यह काम अगुरुलघुत्वने किया।

पदार्थका कोई न कोई आकार याने प्रदेशवत्ता रहती ही है यह काम प्रदेशवत्त्व गुण करता है।

पदार्थ किसी न किसीके ज्ञानका विषय होता है यह काम प्रमेयत्व गुणके कारण होता है।

पदार्थोंकी उक्त सामान्य व्यवस्था पदार्थ के इन ६ सामान्य गुणों के कारण हैं।

हम भी एक पदार्थ हैं अतः यही व्यवस्था हमारी है। हम हैं और आगे रहेंगे। किस रूप हम रहेंगे यह जुम्मेवारी हमारी हम पर ही है।

४ सितम्बर १९५६

धर्म अपना परिणमन है। कैसा परिणमन धर्म है इसका निर्णय कर लेना चाहिये। सराग परिणमन अधर्म और वीतराग परिणमन धर्म है। वीतराग परिणमन ज्ञाता द्रष्टारूप है। केवल ज्ञाता द्रष्टा रहना इसमें वीत-रागता स्वयं आजाती है।

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम॥

बाहिरी लोग मुझे अच्छा जानते हैं इससे कहीं अच्छा फल न मिल जायगा और बाहिरी आदमी यदि मुझे बुरा जानते हैं तो इससे कहीं बुरा फल न मिल जायगा।

अपना परिणमन अच्छा बनानेकेलिये पहिले इन्द्रियविषयोंकी वाञ्छा त्यागी जाती है। विषयवाञ्छा यों ही दूर नहीं होजाती। एतदर्थ ज्ञानकी आवश्यकता है। ज्ञान वह है जो अपना कर्ता करण, कर्म व कर्मफल अपने को मनावे। इतना परिणमन होजानेके बाद सत्पथ पर जैसे चलना होता है वह अनायास होता जाता है। आवश्यकता प्रारम्भके सम्हाल की है।

५ सितम्बर १९५६

आज मंगलवारका दिन है, इस दिन लोगों के बाजारकी छुट्टी होनेके कारण लोग आते हैं अतः मौन नहीं रखा।

धर्म करनेकेलिये भी संकोच रहे तो फिर प्रगति किस तरह हो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह भी कमजोरी है, रागका प्रसाद है। बिलकुल मौनका एक दो दिन अभ्यास कभी कभी रखा जावे तो वह स्थिति बाह्य सहायक हो सकती है इस संकोचको मिटाने में।

६ सितम्बर १९५६

आज कल इंगलिश अध्ययनमें विशेष चित्त होजानेसे स्वाध्यायको मौका कम मिलता किन्तु अहर्निशमें कई बात अरहंत प्रभु की भक्ति में कह लेता हूं कि नाथ मुझे ख्याल है कि एक आवश्यक कर्तव्य स्वाध्याय में कर नहीं पाता। इतना ख्याल है इस आनको प्रभो स्वाध्यायमें शामिल जान लेना। मैं प्रवचनके करने को ही स्वाध्याय में मान कर नाथ तेरे शासनको ही इंग्लिश में लिखने के ध्येय से इंग्लिशकी ओर लग रहा हूं।

७ सितम्बर १९५६

प्रभो ! क्या करूं ? जान कर भी ज्ञानमार्ग में अनतिपद्धतिसे नहीं बढ़ पाता इसे क्या मैं चारित्रमोह कहूं या मिथ्यात्व।

सर्व कुछ बिगड़ जावे किन्तु सम्यक्त्व न बिगड़े यही मेरी आखिरी प्रार्थना है हे नाथ।

जीवका शरणसम्यक्त्व है और चारित्र का पिता सम्यक्त्व है। सम्यग्ज्ञानका सहोदर सम्यक्त्व है।

सम्यक्त्व निरपेक्ष सत्य मित्र है। सम्यक्त्वं परमं धनम्।

पराधीन सुखसे स्वाधीन दुःख उत्तम है यह बात निःसन्देह है।

परतन्त्रता, आशा, प्रतीक्षा, इच्छा ये सब दुःखके ही अनर्थान्तर हैं।

स्वतन्त्रता, निराशा, निश्चिन्तता, निरीहवृत्ति ये सब आनन्दकी जननी है।

पराधीनता और स्वाधीनता में नरक स्वर्ग जितना अन्तर है।

८ सितम्बर १९५६

पराधीनता किसी न किसी विषयकी चाहमें होती है। वे विषय ६ प्रकारके हैं— १. स्पर्शन इंद्रिय विषय २. रसनेन्द्रियविषय ३. घ्राणेन्द्रिय-विषय ४. चक्षुरिन्द्रियविषय ५. कर्णेन्द्रियविषय ६. मनका विषय।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्पर्शनेन्द्रियविषय २ प्रकारके हैं एक शरीर पीड़ा निवारक दूसरा कामविषयक।

ये सब इन्द्रियोंके विषय कहलाते हैं। छठा विषय है मनविषयक—अपनी प्रतिष्ठा, इज्जत चाहना नामवरी चाहना मनका विषय है।

उक्त विषयोंमें से किसी विषयकी वाञ्छा हो जावे वह केवल क्लेशकी ही कारण है। तथा वह क्लेश पराधीन है। इसके मुकाबिले वह कष्ट शान्तिप्रद है जो होता भी है किन्तु निजके विवेकबलसे उसका सह लेना या उपेक्षित कर देना अपने आधीन है।

हे नाथ दुःख ही अन्य कुछ नहीं है। केवल पराधीनता ही दुःख है।

आत्मन् आनन्द भी कुछ अन्य नहीं है केवल सत्य स्वतन्त्रता ही आनन्द है।

९ सितम्बर १९५६

नाथ अर्थात् जिसका अथ नहीं याने अनादि तत्त्व हे चैतन्यस्वरूप ! तुम मेरे उपयोगमें निरन्तर बसो। तेरे बसे बिना बड़े अनर्थ हो रहे हैं।

वाजाल, वाचाल, वेंहाल, वेपाल, वेकार वेजार हो रहा है यह। यह सब अज्ञानका परिणाम है।

१० सितम्बर १९५६

आज उत्तम क्षमाका दिवस है। दिवस तो दिवस है इस दिन उत्तम क्षमा मनावेंगे ऐसा संकल्प होनेसे यह दिन भी उत्तम क्षमाका कहलाने लगा।

यदि आत्मामें क्षमाभाव बना रहे तो सारे दिन उत्तम क्षमाके कहलावेंगे।

११ सितम्बर १९५६

मार्दव मृदुपरिणाम, कोमल परिणामको कहते हैं। यह कोमलता घमंड में नहीं रह सकती इस लिये घमंड न करना मार्दव है।

मृदुता एक बहुत उत्तम गुण है। इससे लौकिक शान्ति भी प्राप्त होती है अलौकिक शान्तिका तो बीच है ही।

मृदुता, सहजमृदुता आत्माका स्वभाव है उसे उत्पन्न करनेमें कोई श्रम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं होता। श्रम तो स्वभावके विरुद्ध चलनेमें होता।

१२ सितम्बर १९५६

सरलता आत्माका सहजभाव है। सरलता यद्यपि एक दशा है तथापि स्वभाव तो असरल होता ही नहीं अतः सरलता आत्मस्वभाव ही है।

सरलतासे अनेक सद्गुण प्रकट होते हैं — सरलता आत्मोन्नति की जननी है।

सरलता आत्महित की साधिका है। सरलतासे लौकिक आपत्तियां प्रथम तो चाहे आजावें किन्तु पश्चात्

१३ सितम्बर १९५६

धर्म के नामपर आजकल हिन्दु मुसलिम दंगा खड़ा होगया। इसपर दोनों ओरसे सम्हाल नहीं है। यह दंगा स्वयं धर्म नहीं है। धर्म जीवरक्षा में तो संभव है किन्तु कषाय में जीवरक्षा कहां।

यद्यपि बात और धर्मकी किन्तु व्यवहारमें आना कठिन है।

धर्मके ऐसे ही बाह्यरूपोंकी विडम्बना देखकर विदेशी जन धर्मको झगड़े की जड़ मानने लगे हैं और राष्ट्रसे धर्मकी क्रियाओं को दूर करने लगे हैं।

क्या हो, क्या किया जाय—सोचनेसे क्या होता। फिर भी सोचे बिना रहता कौन।

लोग कहवे हिन्दु गम नहीं खाते तो दूसरी ओरसे देखो मुसलिम गम नहीं खाते।

अनेकों जाने जाती हैं। जो मनुष्य भव बड़ी कठिनाई से पाया है उसका सदुपयोग न किया जावे तो रहना, जीना मरना सब बराबर है।

स्वयं स्वयंकेद्वारा स्वयंकेलिये स्वयं से स्वयं में स्वयंको परिणमाता है। इस के सिवाय अन्य और कुछ नहीं किया जा सकता फिर परकी ओर दृष्टि देना मात्र व्यामोह है।

१४ सितम्बर १९५६

सर्वसंकल्पविकल्पजालोंसे निवृत्त होकर ज्ञाता द्रष्टाकी स्थिति पा लेना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सर्वोच्च विवेकफल है।

विकल्प जालका जाल गहन है। विकल्पोंका यह क्या विचित्र निर्माण है। विकल्पोंका यह रूप कैसे बना। अहो इस ईश्वरकी अद्भुत लीला है, अद्भुत माया है। यह अपनी मायाको फैलाता यही संसार है। यह अपनी मायाको सकोड़ लेता याने विभाव पर्यायोंको विलीनकर देता यही मोक्ष है। खुदके स्वभावमें खुदका आजाना यही ब्रह्ममें लीनता है।

उपशम सम्यक्त्व मोक्षका पहिला पड़ाव है। इसके बाद जो आवश्यक पड़ाव हैं वे ये हैं (२) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व (३) क्षायिक सम्यक्त्व (४) संयम (५) सातिशय अप्रमत्त (६) अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८) सूक्ष्मसाम्पराय (९) क्षीणकषाय (१०) संयोगकेवली (११) अयोग केवली क्रमसे ११ पड़ाव तो मोक्षमार्गीको करना ही पड़ते हैं।

१५ सितम्बर १९५६

जगद्भीतसहायश्च, भूतनाथोऽखिलेश्वरः।
सामान्यदृष्टिदृश्यश्च, ज्ञानानन्दसमुच्चयी ॥१२५॥ ९३८

शंसादिकल्पनाशून्यो, विशुद्धः पारिणामिकः।
जन्ममृत्युजरातीतः, सङ्गातीतो हिताकरः ॥१२६॥ ९४४

आत्माऽनिर्दिष्टसंस्थानः, सप्रदेशो निरञ्जनः।
हेयोपादेयदूरस्थो दर्शनज्ञाननिर्भरः ॥१२७॥ ९४९

ज्ञायकैकस्वभावश्च, सोमः स्वरसनिर्भरः।
स्वान्यषट्कारकोत्तीर्णः स्वद्रव्यादिसुपारितः ॥१२८॥ ९५४

अखण्डप्रतिभासाभो, विकल्पातिक्रमी जिनः।
सर्वङ्कष उदारश्चो–दितद्रव्यत्व ईरितः ॥१२९॥ ९६१

ज्ञानदर्शनसर्वस्वोऽनिर्माता प्रापकोऽग्रणीः।
परास्रष्टात्मस्रष्टा च, गुणपर्यायसंगतः ॥१३०॥ ९६८

तीर्थेशस्तीर्थवेधाश्च, तीर्थसेव्यस्त्रिविक्रमः।
निष्पीतानन्तपर्यायो, धर्माध्यक्षोऽभिनन्दनः ॥१३१॥ ९७५

शम्भवो विश्वभूर्वेद्यो, विश्वविद्येश इष्टदः।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अशब्दोऽनाकुलोऽकायोऽवर्णोऽगन्धो विकल्मषः ॥१३२॥ ६८५
जगद्गर्भोऽस्पृहोऽलेपो, निःसपत्नश्च मंगल ।
योगिवन्द्यः सदाभावी, सदाभोगः सदाजयः ॥१३३॥ ६६४
गभीरो विश्वतः प्रत्य–ग्ज्ञानविस्फूर्तिमात्रकः ।
शुद्धाशुद्धविनिर्मुक्त–श्चित्स्वभावश्च शाश्वतः ॥१३४॥ १०००
सामान्यः सविशेषश्च, शक्तिपुञ्जः समाधिराट् ।
स्वतन्त्रो निर्मलोऽद्वैतः सहजानन्दसाधितः ॥१३५॥ १००८

इति सुहितादिशतम् ॥१०॥

ॐ ह्रीं सुहितादिशतनामवाच्याय सहजसिद्धपरमदेवाय नमः

आर्या

शुद्धात्मतत्त्वभक्तेनानेन जनेन लोककृतनाम्ना ।
क्षुल्लकवर्णिमनोहरसहजानन्देन विहितायाः ॥१३६॥
भक्तेःशब्दैं रचितं सहजसिद्धसहस्रनामस्तोत्रम् ।
ध्यातं सम्मग सहजानन्दानुविशुद्धये भूयात् ॥१३७॥

इत्याशीर्लाभः

१६ सितम्बर १९५६

संसारके समस्त पदार्थोंसे अत्यन्त निरपेक्ष होकर थोड़े समय रह लिया जावे तो ऐसे रहनेकी परम्परा बनकर जल्दी ही किसी समय वह स्थिति बन जावेगी जिस स्थितिमें सत्य सहज आनन्द वर्तता ही रहता है।

प्रभो ! हे ज्ञानप्रभो यद्यपि अर्थ प्रभुका आश्रय मात्र याने ध्यानके विषयके कारण निमित्तमात्र करके ज्ञानप्रभुका निर्माण हुआ है तथापि उद्धारक ज्ञान प्रभु ही है।

यद्यपि जगतके रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द पर्यायवाले पुद्गलोको निमित्त-मात्र करके ज्ञान विषयका निर्माणहुआ है, तोभी पातक ज्ञानविषय है अर्थ-विषय नहीं।

ज्ञानमोक्षमार्ग और अर्थमोक्षमार्ग ये दोनों एक हैं सभी मोक्षमार्ग मोक्ष-मार्ग रह सका है अन्यथा अर्थात् द्वैतभाव हो तो मोक्षमार्ग नहीं बनसकता था।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

१७ सितम्बर १९५६

कमजोर आत्माके परिणमन बाह्य वातावरण पाकर क्षुब्धही होते हैं। आजकल यह हिन्दु मुसलिम दंगा प्रायः सभीके चित्तके विक्षोभका कारण बन रहा है। आज कुछ शान्तिके चिन्ह नजर आ रहे हैं। अज्ञान में जो कुछ हो जाय सो थोड़ा है यह बात ठीक क्यों न हो जब कि ज्ञानमें जो कुछ ज्ञात हो जाय वह थोड़ा है।

ज्ञानकी महिमा अपार है तो अज्ञानकी भी महिमा अपार है। यह निजनाथ ईश्वर अपनी कैसी लीलाओंसे खेलता है। एक शरीर छोड़ा कि दूसरे पुद्गल पिण्डको कैसे अपनासा लेता है, कैसे उस के प्रमाण हो जाता। कैसी कैसी पर्याय बनाता है। उसकी लीला को जानना कठिन है। उसकी लीला अपार है।

१८ सितम्बर १९५६

चौदह गुणस्थानोंसे अतीत दशा सर्वथा शुद्ध दशा है।

चौदहवीं समयसारगाथामें ध्येय तत्त्व पाने का बड़ा ही सरल सुगम उपाय बताया है।

चौदह प्रकारका आभ्यन्तर परिग्रह छूटे ही आत्माका उद्धार संभव है।

चौदह जीवसमासोंसे अतीत जीवकीदशा पूर्ण स्वभावानुरूप दशा है।

१९ सितम्बर १९५६

संसार क्या है? जो कुछ दिखता यह? यह भी संसार है और वास्तवमें संसार वह है जिसपरिणाममें विषमता वर्तती है। हमारा संसार हममें है। इसका विनाश मोक्ष के उत्पादरूप है। मोक्ष हमारा हममें। इसका उत्पाद संसारके विनाशरूप है।

परिणामोंकी निरन्तर निर्मलता रखो। तुम्हारा साथी परिणामोंकी निर्मलताके अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नहीं सकता। परिणामोंकी निर्मलतामें जो आनन्द है वह विशुद्ध है, निरपेक्ष है, सहज है और है अनुपम।

वस्तुस्वरूपके अनुकूल अपने विचार अपना ज्ञान होनेमें निर्मलताको आना पड़ता है। वस्तुस्वरूपके विरुद्ध अपने विचार बनाने में मलिनता को

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पहरेदारी करना पड़ती।

कोई कार्य ऐसा न करो जिसके बाद यह कार्य गुप्त रहे ऐसी भावना उत्पन्न होना पड़े।

कोई वचन ऐसा न बोलो जिसके बोलने के बाद यह बात गुप्त रहे ऐसी भावना उत्पन्न करना पड़े।

ऐसा कोई विचार मत बनाओ जिस विचारसे अशुभकर्मबन्ध हो।

वह सत्य है जो सत् में बर्तता है और वह ध्रुव सत्य है जो सत् में त्रिकाल रहता है।

२० सितम्बर १९५६

सत् और ध्रुव सत् इनमें पर्याय गुण जितना अन्तर है।

मरनेवालोंको देख अपनी मृत्युभी शिरपर है ऐसा कभी महसूस किया या नहीं। महसूसतो उसे होगा जो कि ज्ञानी हो या तीव्र मोही हो।

परिणामोंकी निर्मलता समलता पर सब विधि विधान निर्भर है।

कर्मरेखा का परिवर्तन कठिन है। इसका अर्थ यह है —

२६ सितम्बर १९५६

जैसे लोग कहते हैं कि धनमें धन आता है। वैसे यहां भी यह बात है कि निर्मलतामें निर्मलता बढ़ती है और मलिनतामें मलिनता बढ़ती है।

जैसे यह निश्चित ही नहीं कि धन से धन बढ़े ही। इसी प्रकार यह भी पूर्ण निश्चित नहीं कि निर्मल परिणामके बाद निर्मल ही परिणाम आवे या मलिन ही परिणाम आवे।

जैसे कोई निर्धन भी कदाचित् गोद आदि के उपक्रमसे किसीके धन से एकदम धनी कहलाने लगता।

और धनी भी अकस्मात् धनशून्य निर्धन हो सकता। इसी प्रकार कोई मलिन परिणामी कदाचित् अन्तरङ्ग बहिरङ्ग कारण पूर्वक अकस्मात् मलिन परिणामका व्यय करके निर्मल परिणामी हो सकता है। और निर्मल-परिणामी कदाचित् अकस्मात् अन्तरङ्ग बहिरङ्ग कारणपूर्वक निर्मलतासे च्युत होकर मलिन बन सकता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अतः हे हितैषिन्! ज्ञानस्वभावकी सम्हालमें जागरूक रहो। शिथिलताका कोई अवसर न आ पावे ऐसे सत्सङ्ग व ज्ञानके यत्न करो।

२७ सितम्बर १९५६

अपने आपको अपनी दृष्टिमें पालेना अपना उद्धार है।

जगतमें विषय कषायोंका प्राबल्य कर्मोंके प्रबल बन्धका हेतु है।

सर्वोत्तम सदाचार ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्यके विनाशमें यह जीव खुदकी दृष्टिमें गिर जानेके कारण अपना उत्थान नहीं कर पाता। ब्रह्मचर्यके विनाशमें मानसिक, वास्तविक व शारीरिक तीनों प्रकार शक्तियां शिथिल हो जाती हैं।

ब्रह्मचर्यका ध्वंसक अन्तमें बड़ा पछताना है दुःखी होता है।

जिसका ब्रह्मचर्य गया उसका सत्य भी गया।

ब्रह्मचर्य समस्त सदाचारोंका नायक है। व्यभिचार समस्त अवगुणोंका नायक है।

३० सितम्बर १९५६

जब जब परिणामोंमें शिथिलता आवे उस समय कर्तव्य है कि किसी विशिष्ट निर्मलपरिणामी साधु संतोंके समागममें पहुंच जावे। जब तक सत्समागम न पावे तब तक शुभोपयोगके विशेष कार्यों में लग जावे,+पूजा, भक्ति, विधान, स्वाध्याय, दीनसेवा आदि कार्योंमें लग जावे।

संसारका छूटना सरल चीज नहीं। यदि सरल होता तो कभी का छूट गया होता। यह विभाव आपातकालरमणीय है। अतः छोड़नेको चित्त नहीं चाहा करता। किन्तु विशिष्ट भेद विज्ञान के अतुल सहारेको मजबूत करे और एक बार भी स्वरसका स्वाद लेले तो सदाके लिये दुःख की रस्सी कट जावे।

१ अक्तूबर १९५६

लौकिक कार्य, कार्यफल बड़े यत्नके बाद सिद्ध हो पाता है तो क्या अलौकिक कार्य, मोक्ष क्या बिना यत्नके प्राप्त कर लेगा। इसमें महान् पुरुषार्थ की आवश्यकता है। वह महान् पुरुषार्थ है सम्यक् ज्ञान। वस्तुका यथार्थ बोध करके उस पर निश्चल उपयोग रखना महान् पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थ

http://sahjanandvarnishastra.org/

बिना अनेक महान् महान् यत्न करके भी यह जीव अपना दुःख न मेट सका।

सम्यग्ज्ञानके विकास का साधक है इंद्रियविषयत्याग। इन्द्रियविषय-त्याग का साधक है विषयभूत पदार्थोंका दूर कर देना। एतदर्थ एक नवीन स्फूर्तिकी आवश्यकता है। वह स्फूर्ति सत्संगतिमें अल्प आयाससे सिद्ध होती है।

ज्ञान और सत्सङ्ग ये दो महान् वैभव है। इस जीव पर कुछ भी पाप पुण्य की परिस्थिति गुजरा किन्तु इन दो सुधाकरोंका लाभ मत छूटो।

३ अक्टूबर १९५६

संसरणमें मनुष्यजन्मकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है। ऐसे दुर्लभतम मनुष्य-जन्मको पाकर यदि कोई अलौकिक कार्य न साध पाया तो मनुष्यजन्म व्यर्थ ही गमाया समझिये।

कैसी धारणा! कैसी बोली! कैसा व्यवहार! कैसा प्रेम! कैसा धर्मसाधन! कैसा तप!

अहो उत्तमोत्तम हित साधन, अलौकिक संमयमन इस भवमें ही तो मिला है। ऐसी निधिको समल संसार सागरमें डुबो मत देना।

हाय यदि यहां, कोई उत्थान न किया तो कहां करेगा। कहांकी आशाको जायकि वहां उत्थान होगा।

इस नर भवका लाभ लेना। नरजन्म कल्पवृक्ष है चाहो निगोद का रास्ता ले लो, चाहो स्वर्गका रास्ता ले लो, चाहो सदाके लिये संसार दुःखसे छूट जावो।

५ अक्टूबर १९५६

प्रकृतसे संस्कृत होता है, संस्कृतसे प्रकृत बनता है। किसे पहिलेका कहा जाय इन दोनोंमें से।

परिमार्जन बिना अपभ्रंश क्या? और प्रकृत बिना परिमार्जन किसका?।

संयोग या अपेक्षावोंसे पड़े हुए नाम एक साथ होनेवाली वस्तुको बताते हैं। जैसे पितापुत्र एक साथ, पतिपत्नी एक साथ, भाई भाई एक साथ,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चचा भतीजा एक साथ वैसे ही भगवान भक्त एक साथ हुए।

संसार तो अनादिसे है परन्तु मोक्ष तो संसार पूर्वक है। कोई भी जीव मोक्ष जावे तो कमसेकम आठ वर्ष तो वह संसारमें रहता समझो। फिर मोक्ष कैसे अनादि हुआ यह एक प्रश्न है।

उत्तर यह है कि अनादिके बाद ८ वर्षकी तो बात क्या? अनादिके कोड़ाकोड़ी सागर के बादका भी काल अनादि ही रहेगा। यदि अनादिके कुछ वर्ष बादकी चीजकी कोई सीमा समझी जावे तो पहिला भी अनादि न रहा।

८ अक्टूबर १९५६

इन्द्रियसुख आनन्दरूप नहीं किन्तु क्लेश रूप ही है।

इन्द्रिय सुख की प्रतिकूलतायें कुछ इस प्रकार हैं—

(१) यह सुख पर विषयोंके समागम पर निर्भर है।

(२) यह सुख इन्द्रियोंके स्वास्थ्यके आधीन है।

(३) इस सुख के काल में भोगने की आकुलता है।

(४) इसके योग केलिये अनेक चिन्तायें करना पड़ती हैं।

(५) यह सुख महाकष्ट और संक्लेश करि साध्य है।

(६) यह सुख क्षणिक है इसके भोगके बाद कष्ट होता है।

(७) इस सुखके सम्बन्धसे तृष्णायें उत्पन्न होती हैं।

(८) सुखकी साधनाके यत्नोंमें अनेक भय लगे रहते हैं।

(९) इस सुखकी लालसासे अनेकों दुश्मन बन जाते हैं।

(१०) इस सुखसे तृप्ति कभी नहीं हो सकती।

(११) इंद्रियसुखकी पूर्ति यत्नमें अनेक प्राणियों के आधीन रहना पड़ता है।

(१२) इस सुखके लिये अनेक जगह डोलना पड़ता है।

अतीन्द्रियसुखमें उक्त आपत्तियोंमें से कोई भी आपत्ति नहीं और न रंच कोई मलिनता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

१० अक्टूबर १९५६

किसी भी कार्यकी प्रगति लगन बिना नहीं होती। अतः जिस कार्यको करनेका दृढ़ संकल्प किया हो उसे लगनके साथ सम्पन्न करे।

कार्य व कार्यफल श्रमसाध्य है। श्रम भी स्वयंका है वह। वह श्रम चाहे किसी निमित्तको पाकर हुआ हो या बिना किसी निमित्तके।

पदार्थमें कार्य व कार्यफल प्रतिसमय होते ही रहते हैं। कार्यका दूसरा नाम है कर्म और कार्यफल का दूसरा नाम है कर्मफल। पदार्थमें कर्म व कर्मफल होता ही रहता है। जिस पदार्थमें जो असाधारण स्वभाव है उसके अनुरूप कर्म व कर्मफल होता है।

पुद्गलमें होती है कर्ममूर्तता, कर्मफलमूर्तता। जीवमें होती है कर्मचेतना, कर्मफलचेतना। पुद्गल किसी भी हालतमें हो चाहे शुद्ध परमाणुकी दशामें हो या स्कन्ध की दशामें हो उसके कर्ममूर्तता व कर्मफलमूर्तता सर्वदा होती रहती है। इसी प्रकार जीव किसी भी हालत में हो चाहेनिगोद हो चाहे मनुष्य हो चाहे अरहंत हो चाहे सिद्ध भी हो उन सबके होती रहती है प्रतिसमय कर्मचेतना व कर्मफलचेतना।

19 OCTOBER 1956

Blessed be the Adovoble Vira.
Blessed be the Apostle Gautama.
Blessed be the saint Kundkunda.
Blessed be the Jain religion.

Oh brothers and sisters ! I am a boy of five months from point of View of learning this language in which I am speaking.

Last time I began to study the language having learned the Sanskrit grammer the philosophy, the principles and the scripture etc.

One and half month passed, thinking it to be

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

useless I left learning of English.

Again, after two years ago. I thought "If I Know English I would succeed to explain the Jain religion to those who are aquainted with English."

Then I continued to learn for one month.

Again I left having thought my auspicious goodness can not be at thought other's service, because each man developes and pollutes his own modes."

20 OCTOBER 1956

From some days I was experiencing that the English-knowers are unprejudiced and curious, although they do not observe external character.

Their external character can be refined easily.

Where ever, when ever, as posible a infellowship with them can be for benefit of both.

Having thought this, I contemplated as to whose compassion would make me so capable.

As soon as the comtemplation struck me, the professor Laxmichandra ji came in my vision.

It is quite true if professor sahib had not exerted I could not speak now in English.

There for thanking him I come to my Subject which is in program to day.

But I think that my heart likes to say much

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

and now time is short.

I hope you all will excuse me for what I shall speak to morrow about "our duty for peace". Om.

21 OCTOBER 1956

Friends !

Each living being likes to be in his peace.

They exert always for the sake of peace.

But they to do not attain even little peace. "What is the reason" they have not thought. Illusion is the only reason due to which they do not perceive the substances as they are.

All substances are infinit, but they are of six kinds.

Each substance exists as individual and indestructible.

That is not substance which appears. It is only molecules.

The atoms which are in dividual (although living in the molecules,) whether confined in molecules or unconfind are real substances.

The kinds of entitries are 1. Soul. 2. Atom, 3. Motioncausality, 4. Restcausality, 5. Space and 6. Time causality.

Souls are infinite. Atoms are infinite times the numbers of Souls.

22 OCTOBER 1956

Motion-causality is one. Restcausality is one.

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

Space also is one. Time causalities are innumerable.
The above types of all substances are infinite.
They exiet and modify themselves. Modifies itself.
Any one does not transform by dint of other
things, even if they cause it's modification.
Each substance is independent. There is no
relation among one an other.
In spite of the situation, one who appropriates
and maintain other things identicaly has to suffer.
The wise attains unparalleled peace, because he
has percldved all substances free as they are.
We must perclive the abstract characteristics of
substances, if we wants peace.
Therefore we should understand the substance
to be of three kinds, entity a quality and mode.
About this I shall say some thing Some time
in future Om.

२३ अक्टूबर १९५६

परके प्रति स्नेहभाव दर्शाना ही बन्धन है, विपदा है, शल्य है। स्वयंमें इतना मग्न और प्रसन्न रहना चाहिये कि अवकाश ही न मिले परके साथ सम्पर्क रखने की इच्छा उत्पन्न होनेको।

ऐसी निरपेक्ष वृत्ति उत्पन्न हो कि परकी कोई परवाह न रहे इससे बढ़कर न कोई योग है, न कोई तप है, न कोई उत्थानमार्ग है।

विपदा का मूल कोई भौतिक नहीं, कोई कारपोरल नहीं। विपदा का मूल सूक्ष्म, अरूपी एब्स्ट्रेक्ट भाव है। दृष्टि अन्तरमें दी कि विपदा शान्त, दृष्टि बाहरकी ओर की तो विपदा का पहाड़।

आत्मन्! मान, मान अपना मान मान। मनका मान न मान।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हे निजनाथ ! तुम अद्भुत अपूर्व शक्ति के पिण्ड हो, क्या दशा हो रही है तुम्हारी। परकी आशाके वश होकर बन रहे हो भिकारी विभावकी भूमिका से उठ, अज्ञान की भूमिका से उठ और जुट स्वभावसे जलवामें।

समय थोड़ा है, कहने में सुनने में समय गुजारना भला नहीं, कुछ कर गुजरो। विभाव का आदर न करो। यही बड़ा पुरुषार्थ है।

२४ अक्टूबर १९५६

यद्यपि संस्कृत और हिन्दीमें भी नियम पर्याप्त है। तो भी जो कुछ हो मैंने इंग्लिश भाषा पढ़कर जो जानकारी पाई वह इस प्रकार है —

१—कहां विराम, कहां अर्ध विराम व कहां पूर्ण विराम लगाया जाता है इसका ज्ञान।

२—समूचे वाक्य तक भी कर्म आदि हो जाते हैं उनका बिना हिच-किचाहटके तुरन्त प्रयोग का करना।

३—एक पूर्व वाक्यमें अनेक उपवाक्यों की विशेषतायें।

४—इन्डायरेक्ट स्पीचका सुन्दर प्रयोग।

५—विशेषता बतानेवाले वाक्य का विशेष्य शब्द के अनन्तर ही प्रयोग।

६—प्राय: मुख्यवाक्यका पहिले वर्णन कन्डीशनल वाक्यका साक्षात् वर्णन।

७—कर्ताके बाद क्रिया कहकर विधेयका वर्णन ताकि कर्ता और विधेय-का स्पष्ट बोध हो जाय।

उपरोक्त विशेषतावोंके अतिरिक्त अन्य भी लाभ हैं जब इंग्लिशमें केवल यह दोष है कि बोलते कुछ हैं स्पेलिंग कुछ है। सो स्पेलिंग भी अधिक विरुद्ध नहीं है। कहीं तो उच्चारण की सूक्ष्मता न मालूम होनेसे ऐसा जचता। कुछ जरूर यह परम्परागत यह दोष है। दूसरा दोष अक्षरोंका है जैसे कहते बी है व शब्द से ध्वनित ब है, कहते एच है व एच शब्दसे ध्वनित ह है। इन दो दोषोंके अलावा गहरी दृष्टि से देखेंगे तो गुण अनेक मिलते हैं।

२५ अक्टूबर १९५६

संस्कृत भाषामें इंग्लिशसे अधिक गुण प्रतीत होते हैं —

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

१–समासकी विशेषता संस्कृतकी सर्वोपरि विशेषता है। सुन्दर अनुप्रास वाले अनेक शब्दोंका समुदाय समासमें बड़ा ही रोचक प्रतीत होता है।

२–भिन्न भिन्न संकेत व अर्थ को द्योतिकायें क्रियायें अनेक मिलती है निष्पन्न भी और अनिष्पन्न भी।

३–पदके लिये विभक्ति शब्दमें जुड़ जानेसे अतिसंक्षिप्त पद हो जाता है।

४–संधियोंके करनेकी विशेषता भी एक उच्च विशेषता है। तो जल्दी बोलने में प्राकृतिक मेल बैठा लेती है।

५–एक क्रियाको बनाने के लिये अनेक क्रियायें न रखनी पड़ें एतदर्थ णिजंत, यङंत, भावकर्मप्रक्रिया आदि से निष्पन्न रूपकत्री एक सुन्दर विशेषता है।

६–अनेकविध काल व दशावों की कृति बताने के लिये १० लकारोंकी विधि का प्रयोग।

७–संक्षेप व अलंकारों की सुंदरता को उत्तम गुंजायश उपरोक्त विशेषताओंके अतिरिक्त अन्य भी लाभ है जब कि केवल यही कहा जा सकता है कि इसमें इन्डायरेक्ट स्पीच का प्रयोग नहीं है। सो इसके बिना भी काम अच्छा और ढंगमें भी चलता है।

संस्कृत सर्वोपरि उत्तम भाषा है।

२६ अक्टूबर १९५६

बन्धुवों यह पूर्व अनुभूत है कि हम सब प्राणी आनन्द चाहते हैं, हम जितना भी प्रयत्न करते हैं वह सब आनन्द के लिये करते हैं। यहां तक कि जो जीव पाप करते हैं वह भी आनन्दके लिये और जो जीव धर्म करते हैं वह भी आनन्दके लिये। यह सब होने पर आनन्द क्यों नहीं मिलता, इस पर प्रायः विचार नहीं किया।

बन्धुवर्ग! इसका कारण पदार्थोंके यथार्थ स्वरूप के ज्ञानका अभाव है। हम किसी भी परम्परागत अथवा घटित विश्वासके आधार पर बिना कुछ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निर्णय जीवन बहाते जाते हैं। यदि हमारा आज यह भाव हो गया हो कि मुझे किसीके पक्ष और आकर्षणसे कोई लाभ नहीं है, मैं अपने भले के लिये विज्ञानका प्रयोग कर अपना कदम रखूंगा तो भैया आनन्द के उन्मुख होजांये।

सत्य आनन्दके लिये हमें क्या करना है इसविषयमें यदि मैं संक्षिप्त सार कहूं तो यही कहूं कि विशेषकी रुचि न करके सामान्यकी रुचि की जाय। यह सुनकर कुछ भाइयों को अचम्भा हो सकता है क्योंकि मोहमें यह परखा जा चुका है कि विशेष अच्छा होता है विशेष आदरके योग्य है, सामान्य तो साधारण है उसकी क्या प्रतिष्ठा !। जैसे कोई विशिष्ट पुरुष आया बड़ा आदर कोई सामान्य पुरुष आया तो कोई आदर नहीं आदि बातें विचारी जा सकती हैं।

परन्तु भैया लौकिक अनुभवमें भी देख लो यहां बहुतसे भाव उपस्थित हैं इनमें जब विशेष दृष्टि जाती है कि ये धनी हैं, ये पण्डित हैं, ये आफीसर हैं, ये सिपाही हैं, ये क्लर्क हैं, ये अमुकके अमुक हैं, ये गरीब हैं, ये ब्राह्मण हैं, ये क्षत्रिय हैं, ये वैश्य हैं, ये शूद्र हैं, ये अमुक पार्टी के हैं, ये कांग्रेसपार्टी के हैं आदि तब स्वयं विचार लें कि आत्मा उस समय शांति निस्तरंग रहता है या विविध विकल्प व क्षोभों में पड़ जाता है। आप सोच रहे होंगे कि क्षोभ ही उसका फल है।

२७ अक्टूबर १९५६

अब इस ओर सोचें, सभी भाइयोंके किसी विशेष तत्त्व पर दृष्टि न दी जावे और केवल एक सामान्यपने की दृष्टि से मनुष्यमात्र ही की दृष्टि बने तो उस समय क्या कोई तरंग या क्षोभ हो सकते हैं। यह तो विस्तार की बात कही है अब आयात की ओर चलो और सीधे आत्मतत्त्वकी ओर ही आ जांय। हम आप सब प्रत्येक आत्मा हैं, द्रव्य हैं। जो कुछ है वह प्रति-समय अपना कोई न कोई रूपक बनाये रहता है यह पदार्थका धर्म है परन्तु वह रूपक एक समयको होता है और दूसरे समयमें दूसरा हो जाता है। सो वहां भी जैसे मनुष्यसामान्य तो सदा है किन्तु बाल जवान वृद्ध ये अवस्थायें आती हैं और जाती हैं इसी तरह हम आप सभी सोचें मैं आत्मा सामान्य तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक हूं कभी मनुष्य होता कभी पशु बनता कभी देव बनता सो ये सब अवस्थायें हैं ये विशेष हैं। जो इन विषयों पर लक्ष्य रखता है इसे ही आत्मा समझता है उसके विकल्प और क्षोभ होते हैं। जिसकी ये सब अवस्थायें होती हैं वह एक one and the seine.

२८ अक्टूबर १९५६

उसे जो मैं समझता है वह विकल्प और क्षोभोंसे दूर हो जाता है। वह आत्मा मैं सामान्य ज्ञानस्वरूप हूं।

भैया इस परमतत्त्व तक जो पहुंच जाते हैं उनकी आन्तरिक क्या स्थिति होती इसे एक प्राकृतगाथासे परखिये—दिट्ठी जदेव णाणं जाणइ य इसका स्पष्टीकरण यह है—यथात्र लोके ··

यह सब सम्यग्ज्ञानका प्रताप है। सम्यग्ज्ञान है जो वस्तु जैसी है उसे वैसी समझना—All substances are indivisible, indestructible, perfect, independent and native existent. They are exist and modify themselves, througt themselves, for themselves and in themselves. There is no relation among one an other. जो महात्मा पदार्थको यथार्थ देख लेते हैं उनका व्यवहार भी संतोषपरक होजाता है श्री मत्कुंदकुंददेवने कहा है— णिंदियसंथुयवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुयांकि। ताणि सुणिऊण रूसदि य तूसदि य अहं पुणो भविदो इत्यादि—जिसका स्पष्ट अर्थ है—यथेह वहिर्थो···

तुम अपना ही ज्ञान करते व अपना ही सुख भोगते, ४ लड़के मौसी के यहां क्या खावोगे बेटा खाते जावो तुम्हारा ही तो माल है। अध्यात्म ज्ञान की ओर यदि हमारे प्रमुख जन, नेता लोग आफीसर्स आदि बढ़ते चले तो भारतमें तो शांतिका विस्तार होना तो अनायास फल है स्वयंकी निधि प्राप्त हो स्वयं महान् है।

२९ अक्टूबर १९५६

ज्ञान तो पाया और उसके अनुसार नहीं चल पाते यह प्रश्न हर ए

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की जीभ पर नाचता रहता है। इसका उत्तर केवल इतना है कि जो ज्ञान पाया उसकी बार बार भावना नहीं करता। वस्तुका जो यथार्थ स्वरूप है वह दृष्टिमें जिसके नहीं रहता वह अनाकुलताका भाजन नहीं हो सकता।

आत्मा चैतन्यस्वरूप है, उसका जानने देखने रूप स्वच्छ स्वभाव है उसमें उसकी स्वच्छताके कारण उपाधि के निमित्तसे कुछ विपरीत परिणमन किन्तु सीमान्तर्गत, हो जाना प्राकृतिक बात है। विभाव विम्ब होजानेपर भी उपयोग सम्यग्ज्ञानोपयोगके बलके द्वारा उसमें न फसे तो ये औपाधिक आते तो हैं किन्तु यों ही चले जाते हैं। जीवका उद्धार सम्यग्ज्ञान ही कर सकता है। ज्ञानकी ही ऐसी अपूर्व महिमा है कि ज्ञानोपयोग में क्लेशका अनुभव नहीं रहता

हाय बड़ा क्लेश है, किस बातका क्लेश है, बात है नहीं क्या बताया जावे। मूल नहीं मत्ता नहीं, क्लेश है इस मूर्खताभरी बातको क्या कहा जाये? मूर्खता ही क्लेश है। मूर्खता याने मूढता, मूढता याने मोह, मोह याने संयोग बुद्धि, संयोग बुद्धि याने अज्ञान। लो सब दुःखोंकी जड़ अज्ञान निकली। पहाड़ खोदा, जूहा निकला।

३० अक्टूबर १९६६

नाथ! हम और तुम हैं तीसरेसे मुझे क्या प्रयोजन है। तीसरे का हम क्यों विकल्प करें। तीसरा बाधक ही होगा साधक नहीं होगा। सच कहता हूं, अन्तर की आवाज है तुम्हीं को ही सुनाना चाहता हूं। तीसरा जाने न जाने कोई कुछ माने या न माने। क्या प्रयोजन। मैं हूं, एक हूं, अकेला हूं, अकेला ही रहता है, अकेला ही परिणमूगा। आप तो प्रभु यो हो कि मेरे वीतराग भाव बननेके लिये विषय बनते हो। सोमेरी प्रकृष्ट होनहारके लिये होनेवाले प्रथम उद्यमके आप विषय याने निमित्त बनते हो।

प्रभो! मेरे लिये केवल आप ही रहें तो सर्व कल्याण है। अन्यथा अनेकोंका सहयोग, विषय तो मुझे कल्याण के दूर होनेकी प्रेरणा करायेगा।

प्रभो! जिस उपाय हो आप सिद्ध हुए हो वही उपाय हमें करना है। यदि हम करते हैं तो आपके सुपूत है, भक्त हैं। अन्यथा गल्पवादी है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नाथ तेरी सुध न भूलूं और भूलूं भी तो तेरेमें, तेरे जैसे स्वरूपमें अनन्य होकर भूल जाऊं।

सर्वसार यही है, प्रभुभक्ति, आत्मभक्ति। शारीरिक रोग क्षुधा आदि स्वाभाविकतया शान्त होजांयगे तब तो यह कल्याण मार्ग और विशद समझमें आवेगा। कुछ अध्यात्मतासे चले तो शारीरिक बाधायें शान्त होना भी प्रारम्भ होंगी।

३१ अक्टूबर १६५६

धर्मप्रभावनाकेलिये जो उद्यम किया जाता है, उसका लक्ष्य भी मनुष्य-जन्मको निष्फल बना देता है। धर्म प्रचारके प्रोग्राममें अपनेको रखना भी उत्तम नहीं, धार्मिक प्रचारमें रह जाना अनुत्तम नहीं।

दुःखका मूल संयोग है। मित्र बन्धुवोंका संयोग, जीव व देह का संयोग, जीव कर्मका संयोग, जीवके स्वभाव, विभावका संयोग, विभावमें स्वभावदृष्टिका आरोप ये सभी दुःखरूप हैं।

हाय कितना कष्ट है मोहका कि रातदिन दुःखी भी होते जाते हैं व परका संयोग भी नहीं छोड़ते। हाय कितना कष्ट है दुर्बुद्धिका कि बिगड़ते भी जाते दुर्बुद्धिवाले व सुखी भी अपनेको मानते जाते।

वह परिणमन धन्य है, वह काल धन्य है जहां कलुषताओंका अनुभव न हो, ज्ञानमात्रका अनुभव हो।

वह भाव धन्य है जिसका परिणमन स्वभावरूप हो।

वह संग धन्य है जहां रहकर परिणामोंकी निर्मलतामें उत्तरोत्तर विकास होता रहे।

वह दर्शन धन्य है जो निर्विकारताका पाठ दे दे।

१ नवम्बर १६५६

हमारा आचार हमारा रक्षक है, हमारा विश्वास हमारा पालक है और हमारा ज्ञान हमारा तारक है।

अन्य कोई मेरे लिये कुछ नहीं अतः अन्य की ओर उपयोग लगाना मूर्खता है। लक्ष्य निज तत्त्वपर ही रहना चाहिये।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हम देखते हैं, हमारे साथी श्री ब्र० चंपालाल जी ऐठी थे, उत्तम साथी थे। हमारी हितकामना उनके हृदयमें पूरी थी। कारणवश वियोग होगया और सदाके लिये वियोग होगया। दूसरे साथी ब्र० जीवानन्द जी वे भी हित-कामनामें अग्रणी थे। वियोग होगया और सदाके लिये वियोग हो गया। वियोग के समय भी वियोग था। दोनोंकी तीव्र इच्छा थी कि उनके देहवियोग के समय यह रहे। समयचक्रकी रीति किसी ने नहीं जानी। दोनोंके वियोगके समय मैं उपस्थित न था।

मैं भी बहुत विचारूं तो विचारका क्या उटता है। औरोंकी स्थितिसे अपना भी अंदाज लगा लेना चाहिये।

हाय बाहर देखता तो भ्रम होता। बाहर भीतर देखता तो कोई मेरा शरण नहीं। भीतर देखता तो यह मैं स्वयं शरण हूं।

हे निजनाथ अब उठो। यह उपयोग तुम्हें आदर से बुला रहा है। तुम्हारी इतनी रीस तो शोभा भी देती है कि यदि उपयोग तुम्हें आदृत न करे तो तुम रिसाने रहो। इससे अधिक रीस जरा भी शोभा नहीं देती।

२ नवम्बर १६५६

आज वर्षायोगका अंतिम दिन है, प्रभु महावीर भगवान के निर्वाणका स्थापित दिवस है, शोकवालोंको शोकसे फुरसत पाने के लिये सीमा दिवस है, वैरियों के कड़े वैरकी परीक्षाका परीक्ष्य दिवस है, भोगियोंके भोगकी आसक्तिका परिचय दिवस है, धंधे वालों के धन्धेका शकुनदिवस है, विरक्त-पुरुषोंकी निर्मलता का मंगलदिवस है, भक्तपुरुषोंकी भक्तिका प्रवाहक दिवस है।

वर्षायोग प्रतिक्रमण किया। सामान्यस्वरूप शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टि रहना सच्चा प्रतिक्रमण है। दोषोंकी शुद्धि स्वरूपावलंबनमें है। बाह्य प्रतिक्रमण मन समझाने और दृढ़ करने के लिये है। शल्य दूर करने सामर्थ्य बाह्य प्रतिक्रमण में है परन्तु मौलिक सामर्थ्य स्वभावावलम्बनमें है।

गृहस्थ लोग इस दिन बड़े खुश रहते हैं किन्तु करीब करीब उनकी खुशी मोहमूलक है। जिस तरह भगवान महावीर स्वामी मुक्त हुए हैं, उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मार्ग पर मेरा दृढ़ कदम हो, यह भाव होवे तो गृहस्थों को आत्मीय लाभ भी हो। गृहत्यागी हम लोगोंकी दशा तो ऊंट पाद जैसी है न गृहस्थ ही हैं न यथार्थ गृहत्यागी ही हैं। हमें एक बार इस पर गम्भीर विचार करना चाहिये।

३ नवम्बर १९५६

आत्मीय आनन्द ही आनन्द है वह आनन्द ज्ञानका अविनाभावी है, ज्ञान आनन्दका अविनाभावी है।

यद्यपि सर्वविध आनन्द आनन्द गुणका परिणमन है, तथापि जहां परकी दृष्टि रखकर आनन्दका विकास किया जाता है उसे आत्मीय आनन्द शब्द से व्यपदिष्ट नहीं करते। किन्तु जो आनन्द आत्मस्वभावके अवलम्बन से, आश्रयसे, दर्शनसे प्रकट होता है उसे आत्मीय आनन्द कहते हैं।

आनन्दमें आ नन्द है, आ-समन्तात् नन्दतीति आनन्द जो सर्व ओरसे समृद्धिशाली करे वह आनन्द है।

आनन्द गुण की पर्यायें तीन प्रकारकी है—१. आनन्द, २. सुख, ३. दुःख। जो आत्माको पूर्ण सत्य समृद्धिशाली बनावे उसे तो आनन्द कहते हैं यह अध्यात्मयोगियोंको एक देश और परमात्मावों को सर्वदेश प्रकट होता है। सु=सुहावना, ख=इन्द्रिय+जो इन्द्रियोंको सुहावना लगे उसे सुख कहते हैं और दुःख माने असुहावना, बुरा तथा ख माने इंद्रिय। जो इंद्रियोंको असुहावना, बुरा लगे उसे दुःख कहते हैं। सुख और दुःख दोनों आकुलतासे पूर्ण हैं। जो सुख दुःख दोनोंको समान, हेय समझकर आत्मविश्राम करते हैं। उनके आनन्द प्रकट होता है।

४ नवम्बर १९५६

ज्ञान, जान, थान, भान ये सब आत्मज्योतिके रूप हैं। मोहका संबंध हो तो शान बन जाती है व उत्साहका सम्बन्ध हो तो ठान भी बन जाती है। ज्ञान अपना ही कान मानता है आन का कान नहीं मानता है। ज्ञान स्वयं आनन्दकी खान है। ज्ञानका मान ही ज्ञानका यशगान है। ज्ञानकी पिछान आत्माकी पहिचान है। ज्ञान आत्मा की जान है। ज्ञानही आत्माका यान है जिसपर सवार होकर होता आत्माका प्रयाण है। आत्मा पर विज्ञानका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वितान हो तो ज्ञानका अपमान है। ज्ञानका साधन विज्ञान है किन्तु विज्ञानका वितान नहीं। ज्ञानका ज्ञान, संज्ञान है। ज्ञानका थान ज्ञान है, विज्ञान तो ज्ञानका महिमान है। ज्ञानका अनुभवन सत्य अमृतपान है। ध्यानकी हानसे आत्माकी हान है ज्ञानके ध्यानसे आत्माका ध्यान है। ज्ञानका दान सर्वोत्तम दान है, ज्ञानका निधान सर्वोत्तम निधान है।

आज गोटेगांवके प्रमुख बन्धुगण आये, गोटे गांव जानेका अनुरोध किया, स्वीकृति भी हो गई, तिस समाचार के बाद, भाई खूबचन्द जी ने एकान्त में समय मांगकर बड़ी भावुकताके साथ अपनी धार्मिक बात रखी, उनके अनुरोध से जो कल जानेका विचार बनाया, उसे कुछ दिनके लिये स्थगित किया किन्तु गोटेगांवका जाना निश्चित रखा। भाई खूबचन्द जी एक धार्मिक और विवेकी पुरुष हैं।

५ नवम्बर १९५६

परवाह मत रखो किसीप्रकार के आरामकी, परवाह रखो आचरण व चारित्रसुदृढ बनानेकी।

परवाह मत रखो भोजनकी परवाह रखो आत्माके दर्शनकर कर आत्मीय आनन्द पाने की।

परवाह मत रखो चर्मचक्षुओंसे किसी रूपके अवलोकन की, परवाह रखो ज्ञाननेत्रसे ज्ञानस्वरूप के अनुभव की।

परवाह मत रखो कानोंसे सुहावने शब्द सुननेकी, परवाह रखो उन विशिष्ट अन्तर्जल्पोंकी जिनसे आत्मा निर्विकल्प रहने की ओर उत्साहित हो।

भगवानकी पूजा पूजकके निर्मल भावसे ही होती है, जलय चन्दन आदि द्रव्योंसे नहीं। समताभाव, अमल भाव, सहजभाव, निर्मलभाव, अन्तरभाव के अवलम्बनसे प्रभुकी भक्ति होती है।

भक्ति वह है जहां प्रभु और पूजक आत्मा समीप होजायें अर्थात् पूजक के आत्मस्वभाव और प्रभुके विशद भाव का एकाधिकरण पूजक के उपयोगमें होजांय।

अय पुरुषों! तीव्र गतिसे यदि आत्मोद्धार करना है तो लौकिक जन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

संग व महिलासंग बिलकुल छोड़ दो।

जो लोग राष्ट्रीय बहाव के बहाव में धर्मपद्धति में भी महिला कृपा शीलता का भाव दिखलानेको महिलाओं के मन लगी जैसी धार्मिक बात कहते हैं उनकी स्थिति मात्र नेता तक की रह जाती है।

६ नवम्बर १९५६

धर्मके लिये करना क्या है? केवल स्वभावदृष्टि? धर्म के लिये जाना कहां है? अच्छा कहां जावोगे? तुम्हारे तो पैर भी नहीं है। हां उपयोगसे जावोगे। तो अच्छा सुनो—धर्मके लिये जाना कहां है? निजस्वभाव में। निजधर्म निजस्वभाव है। वस्तुधर्म वस्तुस्वभाव है। आत्मा भी एक वस्तु है। सर्वकल्पनायें छोड़कर एक चैतन्यस्वभावकी दृष्टि करो, सर्व कुछ तुम्हें प्राप्त होजायगा। यान किसी कुछ की भी तृष्णा व आकुलता न रहेगी।

किसका कहां कौन है? सर्व वस्तु स्वचतुष्टय मय है। एक अणुका दूसरा अणु कुछ लगता ही नहीं। किसका क्या होगा।

संसारभाव सभी दुःखमय है। परका संयोग ही सारा दुःख है किन्तु मोही संयोगसे ही सुख और हित मानते हैं। इसीसे वे घोर दुःखी हैं।

आत्मन् तुम चेतन हो, विशिष्ट नहीं, सब जैसे सामान्य हों, सो अब तुम्हारा नाम ही क्या रहेगा। तुम्हारे नाम तो इनमें हो सकते हैं—चेतन, आत्मा, जीव, ब्रह्म, ज्ञायक। सो देखलो—कहीं नाम लिखना खुदाना हो ये लिखो। सभी से यही कहना है क्योंकि सभी के ये नाम है। सांची बात मान लो। तुम्हें यह ख्याल होगा यदि कि इन नामों से तो हमारा नाम होता नहीं, तो तुम्हीं बतावो—जो तुम नाम बतावोगे, चाहे इन्हीं नामों में कुछ शब्द जोड़कर जैसे चेतनलाल, जीवानन्द आदि हो या अन्य प्रकारके नाम हों वे सब कुछ भी तुम्हारे नाम नहीं है वे अन्य जड़ पर्यायोके हैं। भिन्न पदार्थोंके नामों की प्रशंसा से तुम्हारी अटकी क्या है।

७ नवम्बर १९५६

करो परकी भी प्रशंसा करो, मगर पर को पर समझते हुए, परको प्रशंसा कर रहा हूं ऐसा सोचते हुए करो, हम तुम्हारे प्रतिकूल न कहेंगे।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किन्तु परकी प्रशंसाको आत्मप्रशंसा मान से हुह करोगे तो वह अच्छा नहीं है।

आज गोटे गांव वाले तिबारा आये और आये दृढ़संकल्प करके कि ले जांयगे या यहीं रहेंगे। उनके इस संकल्पके आगे मैं भी अन्य कुछ क्या कर सकता हूं। कल प्रातःकाल चलने का निर्णय हुआ आज जाना पहिले से स्थगित किया था। यदि न भी किया होता, तो भी जाना कठिन था। कारण आज अचानक ही १२ बजे दोपहर को कस्तूरी बाई जी जिसने कि गत वर्ष ही पञ्चकल्याणक किये थे। स्वःस्थ हो गई। बाई जी का परिणाम निर्मल था। उसकी अर्थी में यहां के बहुत जैन बन्धु जा रहे हैं। मरण उसका अच्छा हुआ, इसकी सर्वत्र प्रशंसा हो रही है। धन्य है उन आत्मावोंको जिनका मरण समाधिपूर्वक हो जाता है।

८ नवम्बर १९५६

आज ८ बजे प्रातः यहांसे चलकर ४ मील पर मढ़िया आये। राम लाल जी हनुमानताल वालोंके आहार हुआ। मढ़ियाका स्थान उत्तम है। किन्तु लोगोंकी दृष्टि प्रायः नाम खुदानेपर है अतः ज्ञान विचारेकी पूंछ ही नहीं सी है।

जीव का उद्धार, कल्याण मात्र आत्मज्ञान है क्योंकि उसकी प्रतीति, ज्ञप्ति, स्थिरता ही रत्नत्रय है यही मोक्षमार्ग है।

मनुष्य जन्म एक सुयोग अवसर है इसकी सफलता ज्ञानविकास में ही है। अन्यथा मरणके बाद कुगति होगई तब मनुष्यजन्मका क्या उठा व उठेगा, धेला जितना भी नहीं।

गोटेगांव वालोंकी अधिक लगन ही जबलपुरसे लेजाने में कारण बनी है उनका सामूहिक रूप में ५ दिन का बना रहता व यत्न करना प्रमाण को स्थिर कर सका है। क्योंकि जबलपुरके प्रमुखों के विचारित लम्बे प्रोग्राम और उसके लिये किये जाने वाले आग्रहका सामना हर एक कोई झेलनेमें असमर्थ था।

मढ़ियासे दुपहरको १ बजे सहजपुरके लिये चल दिये ९ मीलपर जाकर विश्राम हुआ। प्रो० लक्ष्मीचन्द जी भी जिनका कोमल और दिमागी जीवन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है साथ चले यह काम उनका उत्साह ही कर सका। इसी प्रकार खूबचन्द जी भी जिन्हें अपनी मढ़ियोंके कारण फुरसत भी किसीकी बात सुनने तक की भी नहीं साथ चले यह भी उनके किसी विचार से ही संपन्न हुआ। साथके सभी गृहस्थ थक गये थे किन्तु उत्साहित अधिक थे।

कोई प्राणी किसीका कुछ नहीं करता सब अपने अपने भावोंकी परिणति करते हैं। मोह में जीव संयोगबुद्धि कर लेता है। रात्रिको निवास स्थान पर आम प्रवचन हुआ। अजैन बन्धुवोंका उत्साह अन्यसे कम न था।

६ नवम्बर १६५६

आज प्रातः ६॥ बजे शहपुराके लिये चले ६ मील चल कर शहपुरा पहुंचे। लोगोंका उत्साह धर्मप्रेम का बता रहा था।

यहां सि० धनपतलालजी के आहार हुआ+आहारोपरान्त उन्होंने २५०) दानमें बोले जो शहपुराकी ही जैन पाठशालाको दिला दिये।

शहपुरासे दुपहरको २ बजे चले और शाम को ५ बजे करीब ८ मील पर विक्रमपुर पहुंचे।

कोई किसीका काम कुछ करता ही नहीं है प्रत्येक आत्मा केवल अपना ही भाव कर सकता है। जब आत्मा भाव ही कर सकता है और आत्मा भावका ही परिणाम भोग सकता है,+तब भावमें दरिद्रता करनेसे बढ़ कर और मूर्खता क्या हो सकती है। किसीका बुरा विचारना, विरोध रखना, द्वेष रखना, घृणा करना, विषयकी आसक्ति रखना आदि भावकी दरिद्रता है। भावकी दरिद्रता महापाप है। कुछ उस बिना अटका भी नहीं फिर भी मोहमें प्राणी को विपरीत ही सूझता है,+जैसे पीलिया रोगीको सफेद भी पीला सूझता है।

चाहते तो प्रायः विवेकी संज्ञी यह ही हैं कि क्रोध न आवें अन्य कषायें भी न हों, किन्तु इसके लिये कितना भी प्रयत्न कोई करले यदि आत्म-ज्ञानसम्बन्धक यत्न नहीं है तो उसमें सफलता असंभव है। कदाचित् कषायकी मन्दता आजावे तो भी वह मन्दता धोखेसे खाली नहीं है। वह स्थिति राखमें ढकी हुई अग्निकी स्थिति जैसी है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

१० नवम्बर १६५६

आज प्रातः ६। बजे से चलकर ६।। बजे गोटे गांव सभामंडप में पहुंचे। २।। घण्टेमें ८ मील चल लिये किन्तु गोटे गांवके बन्धुवों की उमंगोके कारण गोटेगांवका आधा मील ।।। घण्टेमें तय कर सके।

कोई पुरुष किसीका कुछ नहीं करता सर्वकेवल अपने भावका परिणमन करते।

यहां जैन अजैन समाजमें समान उत्साह दिखा। यदि हम त्यागियोंका भी आहारशुद्धि व ध्यानशुद्धि की पालना रखते हुए समान व्यवहार होजावे तो जैन अजैनमें सर्वत्र करीब करीब एकरूपता आ सकती है।

लोग वस्तुस्वरूपके ज्ञान बिना संयोगबुद्धि करते हैं, जिसके कारण उन्हें आकुलता ही हाथ रहती है।

वस्तुकी स्वतंत्रता ज्ञात होजाने पर आकुलता रहती ही नहीं है। क्योंकि दूसरेसे दूसरेका कुछ हो ही नहीं सकता। यह यथार्थता समझमें आचुकी।

जैसे कोई बीमार है वह जब तक बीमार पड़ा, विविध विकल्प और चिन्तायें होजाती हैं। मरण होजाने पर वे सब चिन्तायें गायब हो जाती है क्योंकि एक निश्चय हो चुका कि वह तो मर ही गया।

११ नवम्बर १६५६

शांति अध्यात्ममें ही प्राप्त होती है इस स्थितिके लिये अध्यात्मबोध चाहिये। अध्यातमबोधके लिये वस्तुस्वरूपका ज्ञान चाहिये। वस्तुस्वरूपके ज्ञानके लिये वीतराग ऋषियोंको वाणीका अध्ययन चाहिये। उस अध्ययनके लिये अपेक्षित गुरूसमागमके अतिरिक्त स्वयंका मौलिक सदाचार भी चाहिये। मौलिक सदाचार करने योग्य ये हैं—

१. मद्यत्याग— शराब आदि नशीली वस्तुओंका सेवन न हो। मद्यसेवन से बुद्धि मारी जाती है।
२. मांस त्याग—मांस खाने का त्याग। मांस सेवनसे हृदय की क्रूरता बनती है व भौतिकमें ही बुद्धि चल सकती है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

३. मधुत्याग—शहद खाने का त्याग हो मधु सेवनसे कामाशक्ति, मोह की प्रबलता होती है।

४. उदम्बरत्याग--काठ फोड़कर निकलनेवाले फलोंका त्याग। उदम्बर-सेवनसे, मांसभक्षण का दोष लगता है।

५. रात्रिभोजनत्याग--रात्रिको भोजन नहीं करना। रात्रि भोजनसे बुद्धि अध्यात्मके विरुद्ध होती है,+मासभक्षणका भी दोष लगता है। बुद्धि पैशाचिकी हो जाती है।

६. जीवदया—शिकार, प्राणिपीड़ा का त्याग करना। जिसे आत्मदया होती है वह परकी अदया का भाव नहीं करता।

७. देवदर्शन--प्रतिदिन परमात्माकी भक्ति करना। इससे आत्मकी साव-धानी दृढ़ होती है।

८. जलगालन—जल छानकर पीना। इससे बुद्धि और हृदयमें कोमलता होती है, कोमल हृदय अध्यात्म को झेलता है।

१२ नवम्बर १९५६

गोटेगांव एक भव्य ग्राम है। यहां चलता विरोध नजर नहीं आता। पं० रतनचन्द जी, ज्ञानचन्द जी, लोकमणि जी आदि विद्वान् योग्य पुरुष हैं। सि० मुन्नीलाल जी छक्कीलाल जी, लक्ष्मीचन्द जी, बाबूलाल जी, मानिकचन्द जी आदि सभी लोग उपस्थित हैं।

शास्त्र अनेकों बार प्रायः सभीके सुननेमें आते हैं किन्तु शास्त्र सुनकर पूरा अवधारण करनेकी क्षमता उसके ही होती है जो उस विद्या को विद्यार्थी की भांति कभी पढ़ चुका है। इस योग्यताका उपार्जन किये बिना वक्तावोंकी तिरस्कारपूर्ण बातें सुनने को ही मिलेंगी तथा उपदेश का आनन्द भी प्राप्त न होगा। अतः विविध प्रयत्नों के द्वारा समझने की योग्यता अवश्य उत्पन्न कर लेना चाहिये। यह एक वर्ष या ६ माह में ही साध्य हो सकता है। किन्तु इस योग्यता को साधे बिना बीसों वर्षोंके शास्त्र श्रावण द्वारा संतोष जनक प्रगति होना कठिन होगी।

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्। किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

१३ नवम्बर १९५६

सच्ची आत्मोन्नति चाहना है तब समस्त पर पदार्थका राग व संसर्ग छोड़ देना चाहिये। यदि इस शिक्षाकेविपरीत थोड़ा भी चले तब विपत्तिका ढंग व विपत्ति बन जावेगी।

आत्मन् ! अपनी शक्ति संभालो। करो पुरुषार्थ ऐसा कि परमाणु-मात्रसे भी परमाणु मात्र मोह न रह सके। अपना आखिर है तो कुछ है भी नही, अपना माननेका भ्रम करके क्यों क्लेश सह रहे हो। तुम अकेले ही हो तब अकेले खुदमें सन्तोष करो, अकेले खुद को ही सोचो। अन्य सबका चिन्तवन ही मिटा दो।

अनेक भवों में अनेक प्रसंग तो आये, अनेक समागम तो मिले अन्तमें अब परमाणु मात्र भी न रहा। इससे ही निश्चय करलो कि वर्तमानका भी कुछ साथ न जावेगा।

इस ही भवमें तो देख लो जो अब परिणाम कर रहे हो यह परिणाम अभी दूसरे समयमें नहीं रहनेका है, फिर इस वर्तमान परिणाममें विह्वल होकर क्यों अपना नाश कर रहे हो यह विह्वलता का परिणाम था जैसा भी विभाव परिणाम है वह रहनेका तो है नहीं, जो रहनेका तो है नहीं और उसका राग करते हो तो इससे बढ़कर अन्य कोई मूर्खता मानी जा सकती है ? बताओ।

१४ नवम्बर १९५६

हे निज प्रभो वह समय जल्दी पावो जहां तुम ही तुम रहो, विकल्पोंका बखेड़ा सब समाप्त हो जावे। अहा ! सर्व सम्पदा यहीं है, सर्व आनन्द यहीं है। छोड़ो समस्त विकल्प जाल। विचारो मत कुछ भी। अच्छा सोचो किसे सोचते जिसे भी सोचते, बतावो तुम्हारे साथ चलेगा ? बतावो तुम्हारी परिणतिसे परिणम जावेगा या वह अपनी परिणतिसे तुम्हें परिणमलेगा ? कुछ होना जाना नहीं है। सबको रहना है और रहना है अपने सत्त्वसे। सबको बने रहना और बने रहना है अपनी अपनी परिणति से परिणम परिणम कर। ओ हो ! मेरा मेरे प्रदेशों से बाहर कुछ भी नहीं है, कुछ भी नहीं होना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है। अतः कुछ भी मुझे इष्ट नहीं है। सब अपनी अपनी जगह रहो। मेरा भाव ही नहीं है कि कोई अपना स्थान छोड़ मेरे से रिश्ता लगाले और न यह भाव है कि मैं अपना निज स्थान छोड़ बाहर में किसी वस्तुसे रिश्ता लगाऊं ? क्योंकि वस्तु सर्व स्वतन्त्र है ऐसा पूर्व सम्यग्बोध हो गया। अब ताकत ही नहीं है कि किसी को अपना मान लूं।

१५ नवम्बर १९५६

विधेय—प्रोग्राम

प्रातः ४	से	५	आध्यात्मिक स्वाध्याय व स्तोत्रपाठ
५	,,	६	सामायिक
६	,,	७।	देवदर्शन, पर्यटन शौचनिवृत्ति
७।	,,	७॥	आसन श्रम
७॥	,,	८/१०	भजन, संगीत, भाषण श्रवण या इंगलिश शब्द पाठ
८/१०	,,	८/५०	प्रवचन
८/५०	,,	९/१०	भाषण श्रवण या सामाजिक वार्तालाप
९/१०	,,	९/४०	करणानुयोग स्वाध्याय
९/४०	,,	९/४५	शुद्धि
९/४५	,,	११॥	चर्या, विश्राम
११॥	,,	१२॥	सामायिक
१२॥	,,	१	डायरी लेखन
१	,,	२	इंग्लिश लेखन
२	,,	२॥	संस्कृत लेखन
२॥	,,	३	हिन्दी लेखन
३	,,	३॥	पत्र या अवशिष्ट लेखन
३॥	,,	४	पाठन
४	,,	४॥।	शंका समाधान
४॥।	,,	५।	विश्राम, पर्यटन, विशेष वैयावृत्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

५।	से	६।	सामायिक
६।	,,	७	आध्यात्मिक पाठ
७	,,	८	इंग्लिश अध्ययन
८	,,	८/२०	संगीत या भाषण
८/२०	,,	९	प्रवचन
९	,,	९॥	सामाजिक कार्य
९॥	,,	४	ध्यान, विश्राम, शयन।

१६ नवम्बर १९५६

गोटेगांव—आज मानिकचन्द जी के आहार हुआ, इन्होंने किसी प्रकार उपयोगकापता लगाकर आहारोपरान्त १७४) की इंगलिश डिक्शनरी दी। इनके पिता इस गांवके वयोवृद्ध धर्मात्मा हैं। यहांके नवयुवकोंका धर्मानुराग व स्वाभाविक संगठन अच्छा है।

वस्तुस्वातन्त्र्यके परिज्ञान बिना वांकी सब ज्ञान बिलकुल अधूरा है। कषायका परित्याग जो शांति का मूल आधार है, आत्मज्ञानबिना हो सकता नहीं। धर्म का प्रारम्भ आत्मज्ञानबिना हो सकता नहीं। वस्तु है तो स्वतन्त्र ही है, कोई भी आत्मा, कोई भी अणु किसी अन्यके आधीन नहीं है। जो पुरुष अपनेको पराधीन समझता है वह भी अपनी स्वतन्त्र परिणतिसे ही पराधीन मानता है। पुत्र अपना विचार मानता है पिताका कहना नहीं। स्त्री अपना विचार मानती है पति का कहना नहीं। पति अपना विचार मानता है स्त्रीका कहना नहीं। यह बात दूसरी है कि वही कहता है और वैसा ही विचार बने अथवा किसी स्वार्थवश या प्रतिष्ठा व कर्तव्यवश वैसा विचार बने। यह तो जीवों की बात है। अचेतन पदार्थोंमें भी किसी वस्तुका किसीमें असर नहीं पहुंचता। असर पहुंच का जो जीवोंको भ्रम है वह निमित्तनैमित्तिक भाव की वृत्ति से है। प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य क्षेत्रकाल भाव रूप है। वह पदार्थ इसी कारण है कि वह अपने ही चतुष्टयसे रहता है परके चतुष्टयका प्रसंग तीनकालमें भी नहीं हो सकता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

१७ नवम्बर १९५६

जब विशेषकी ओर दृष्टि डाली जाती है तो कुछ न कुछ क्षोभ और विकल्प उत्पन्न होता है। विशेषसे हट कर ज्यों ज्यों सामान्यकी ओर दृष्टि होती जाती है क्षोभ और विकल्प समाप्त होते जाते हैं।

लौकिक बड़े से बड़ा बन जानेपर भी वास्तविक बड़ा होना होता है जिसे वह पाये हुए विशेयोको छोड़कर सामान्यकी ओर आता है। आनन्दकी उत्कृष्ट स्थिति वह ही है जहां विकल्पका लेश नहीं रहता याने परम समाधि-दशा होती है।

सामान्य सदा है वह एक रूप है। विशेष अनेक रूप है अतः सदा नहीं रहता। एक समयकी स्थिति विशेषकी है। विशेषकेबाद विशेष होते चले जाते हैं किन्तु कोई भी विशेष दूसरे समयमें ठहरता नहीं है।

जो कल्याणका प्रमुख साधन है, कल्याणके लिये जिसका अवलम्बन आवश्यक है, कल्याण का जो स्रोत है वह सदा हममें ही राजमान है।

यह जगत्का हास्यास्पद बर्तन है कि जो सदा शान्त एकरूप सहज स्वयंमें है उसकी रुचि नहीं करता और जो क्षणिक, अशान्त, अनेकरूप सहेतुक है उसकी पकड़ कल्पनामें बनाये रहता है।

ज्ञान अज्ञान का इतना ही निर्देशक मर्म है ज्ञानीके सामान्यका अवलम्बन है। अज्ञानीके विशेषका अवलम्बन है।

१८ नवम्बर १९५६

वस्तुकी स्वतन्त्रताकी दृष्टि ही माता है, अम्बा है। स्यादस्ति स्यान्नास्ति की प्रतीति सम्यग्दर्शन है। परमात्मा व निजात्माके साम्यकी प्रतीति सम्यग्दर्शन है। प्रत्येकके उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ही प्रतीति सम्यग्दर्शन है। निजदर्शन ज्ञान चारित्राणिकी प्रतीति सम्यग्दर्शन है। निजको निजके द्वारा निजके लिये निजसे निजमें दर्श लेना सम्यग्दर्शन है। सम्यक् को सम्यक् के द्वारा सम्यक्के लिये सम्यक्से सम्यक्में दर्श लेना सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन ही एक मात्र वैभव अपना है। यह ही आनन्दका मूल है।

सांसारिक वार्ताओंका निमित्त कर्मका उदय है, मुक्त याने स्वतन्त्र

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होनेका निमित्त उक्तनिमित्त का अभाव है। विभाव परिणति सहेतुक है स्वभावपरिणति अहेतुक है। सत्य वह है जो सत् में ध्रुव है शेष असत्य है।

निजको निज परको पर जान। फिर दुःख का नहिं लेश निदान। जो निजकी ओर चलता है वह महात्मा है, अन्तरात्मा है, जो परकी ओर चलता है वह पुरात्मा है, वहिरात्मा है। जो चलता कहीं नहीं किन्तु जैसा स्वभावतः है वैसा ही रह जाता है वह परमात्मा, शुद्धात्मा, सिद्धात्मा, मुक्तात्मा है।

१६ नवम्बर १६५६

जीवकी अवस्थायें तीन हैं और उनमें रहनवाला वही जीव है। इस दृष्टि से उन उनके बारेमें कौन कौन नाम प्रसिद्ध है इस पद्धतिसे नाम कुछ इस प्रकार हैं—

वहिरात्मा	अन्तरात्मा	परमात्मा	आत्मा
दुरात्मा	महात्मा	शुद्धात्मा	सदाशिव
जागृति	सुषुप्ति	अन्तःप्रज्ञ	तुरीयपाद
तम	रज	सत्त्व	पुरुष
मन	जीवात्मा	मुक्तात्मा	ब्रह्म
माया	योग	मुक्ति	ईश्वर
अशुभविकार	शुभविकार	निर्विकार	अविकार
पाप	पुण्य	शुद्ध	शुद्धशुद्ध
विभावगति	स्वभावगति	स्वभाववृत्ति	स्वभाव
मिथ्यादृष्टि	सम्यग्दृष्टि	भगवान	निरञ्जन
अ	उ	म्	परात्मा
दासोऽहं	सोऽहं	अहं	अलख
द्विष्ठ	स्वस्थ	स्व	चेतन
अज्ञानी	ज्ञानी	ज्ञाता	ज्ञायक
अशुभोपयोग	शुभोपयोग	शुद्धोपयोग	चैतन्य

इन चार तत्त्वोंमें प्रथम तो हेय है द्वितीय तत्त्व तृतीय तत्त्व पानेका उपाय है। तृतीय तत्त्वके यथार्थ विकासके तुरीय तत्त्व का जानना सुगम है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तुरीय (चतुर्थनम्बरके) तत्त्व का प्रतिभास निर्विकल्प समाधिका कारण है। निर्विकल्प समाधि परम हित है।

२० नवम्बर १९५६

अध्यात्म की स्थिति में बाद नहीं है तथा बाद की स्थिति में अध्यात्म नहीं है, अध्यात्म वाद तो हो सकता है किन्तु अध्यात्म वाद नहीं है अतः अध्यात्मवाद व्यवहार है, अध्यात्म निश्चय है।

जैसे कोई नमककी पुतली सागरमें गोता लगायें किसीको कुछ कहना चाहे तो वह असत्य है क्योंकि गोतामें पुतली घुल गई सर्वांग सागर हो गया अब कैसे बोला जाय इसी प्रकार कोई अध्यात्ममें गोता लगाये हुए क्या बोले। वह तो अध्यात्ममें घुल गया है।

जब अध्यात्म स्थिति है वहां केवल बोल ही बन्द नहीं है इसके साथ पांचो इन्द्रियोंकी वृत्ति बन्द होजाती है। मनका व्यापार भी समाप्त हो जाता है। अध्यात्मका स्वाद तो अतुल है किन्तु है अवक्तव्य।

अध्यात्म का नाम इतना ऊंचा है कि प्रत्येक वक्ता को उनमेंसे चाहे कोई अध्यात्मकी गन्ध भी नहीं जानता हो तो भी अध्यात्मकी उपादेयतारूप वचन कहना ही पड़ते क्योंकि अन्यथा उनका भाषण सफल नहीं माना जाता।

जैसे मोहके कार्य विवाहादि प्रसंगों में समय समय पर मंदिरजाना पूजा करना आदि धार्मिक संग न रखा जावे तो वह उत्सवसा ही नहीं लगता वैसे ही लौकिक भाषणोंमें भी अध्यात्मवाद की कुछ बात नहीं रखी जावे तो वह भी भाषणसा नहीं लगता।

२१ नवम्बर १९५६

स्नेह का आदि वचन है, अधिक स्नेहके वचन, दूसरी ओरसे अधिक स्नेहके निकल सकते हैं तब वे वेधन के कारण हो सकते हैं, अतः अपनी ओरसे अधिक स्नेह के वचन या अधिक वचन नहीं कहना चाहिये।

जगतमें बन्धन मात्र स्नेह है। शरीरका स्नेह, प्रतिष्ठाका स्नेह, मित्र का स्नेह, परिवारका स्नेह, विषयका स्नेह, कषाय का स्नेह आदि सभी बन्धन है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्नेह मिटनेका उपाय सिवाय चैतन्यस्वभावकी दृष्टिके अन्य कुछ नहीं होता।

चैतन्य स्वभाव की दृष्टि से च्युत हुए तो स्नेह को आना ही पड़ता है। उस समय अपने आपसे द्वेष कर रहा है। किसीका द्वेष किसीके स्नेह रूप है, किसीका स्नेह किसीके द्वेषरूप है।

आत्माको सन्मार्गमें रखनेके समान उत्तम भवितव्य अन्य कुछ नहीं है।

आत्माको कुमार्गमें लेजानेके समान दुर्गमन अन्य कुछ नहीं है।

२२ नवम्बर १९५६

पुण्यका जिन जिनके उदय हुआ क्या हुआ सो पढ़ लो सीताजी का पुण्यथा बचपन से अन्त तक गृहस्थी में क्लेश ही क्लेश पाया। रामचन्द्रजी के पुण्य था बालपन से अन्त तक गृहस्थीमें क्लेश ही क्लेश पाया। हनुमानजी की मां अञ्जनाके पुण्यथा कितने भयंकर दुःख पाये। आजकल की भी बात देखलो महात्मा गांधीके पुण्य था अन्त तक दुःख ही दुःख रहा। यह बात आत्मबलकी है उक्त सभी आत्मा अन्तरंग में निराकुल और संतुष्ट थे। किन्तु पुण्यकी ओरकी बात देखो तो पुण्य दुःखका कारण बना। अनेकों दृष्टान्त इस प्रकार समझलें। पुण्यभी दुःखका हेतु है व पाप भी दुःखका हेतु है। कहो पापके उदयमें जीव समल जाय पुण्यके उदयमें जीव वह जाय। सप्तम नरकके नारकी के पापका उदय घना है, रहता है, रहो फिर भी अनेक नारकी सम्यक्त्वको जो कि शाश्वत आनन्दका मूल है, प्राप्त कर लेते हैं। सुकुमार मुनीश्वर, गजकुमार मुनीश्वर, सुकौशल मुनीश्वर आदि अनेक साधु महात्मावोंके जो उपसर्ग हुआ वह पापका ही उदय समझना, तिस पर भी वे आत्मबलके कारण अन्तरंग में अनाकुल और सत्य संतुष्ट थे। यह भी पाप की करामात नहीं किन्तु आत्मबल की करामात है। पाप पुण्य तो दोनों दुःखके हेतु हैं।

२३ नवम्बर १९५६

आत्माको करनेको कोई काम न रहे याने बेकार रहे तो अन्य प्रकार के विषय कषायकी बात सूझने लगती है अतः उपकारके कामोंकी खोज करना पड़ती है तथा उनका प्रारम्भ करना पड़ता है। किन्तु आत्मन् यदि तुझे उच्च

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उन्नति दशा पानी है तो इन बाह्य का अवलम्बन भी छोड़। यह न समझ कि मेरे लिये कोई काम करने को नहीं है। तुझे करनेको बहुत काम पड़ा है और वह यह है—कि किया कर आत्मस्वरूपका ध्यान और भजाकर परमेष्ठी का स्वरूप, विशेषतया अरहंत सिद्धका ध्यान।

बाह्य कार्य के प्रसंग में भी तो तू बाह्य कुछ नहीं करता है केवल अपने उपयोगका परिणमन करता है सो इस अपूर्व निज कार्यके प्रसंगमें भी तुझे अपने ही उपयोगका कार्य करना है। बाह्य प्रसंगवाले उपयोगके कार्य में तो उपयोगका वह कार्य कम दर्जेका और संसार वन सुगम है—अल्प है किन्तु निज प्रसंग वाले उपयोगके कार्यमें उपयोग का वह कार्य विशिष्ट दर्जेका और नव्य अपूर्व होनेसे विशिष्ट पुरुषार्थ साध्य है, बड़ा है। सो इसका ही लक्ष्य रख— कि सर्द अवलम्बन आश्रय वाला कार्य न करके निरपेक्ष, स्वतन्त्र निजभावना, शुद्धात्मभावना के कार्यमें निरन्तर जुटा रहूं।

२४ नवम्बर १९५६

परवस्तुका समागम कारण बन सकता तो विभावका। स्वभाववृत्तिके लिये परवस्तुके समागमकी आवश्यक्ता, प्रतीक्षा ही नहीं चाहिये।

आत्मन्! अपने को बना अत्यन्त निरपेक्ष। न बना पावेगा निरपेक्ष तो बड़ी भारी भूल होगी समझना। साथ उपयोग रहेगा, बाह्य वस्तु यहां ही रह जायेंगी। अतः निरपेक्ष बन, सर्व विकल्प छोड़।

प्रतिष्ठा, कीर्ति से न वर्तमानमें लाभ, न भविष्य में लाभ। यदि ज्ञानी है तो प्रतिष्ठा से उसका राग नहीं प्रतिष्ठासे लाभ उसे क्या। यदि अज्ञानी है और उसकी प्रतिष्ठा भी होती है तो उस प्रतिष्ठा से अज्ञानी लाभ तो क्या पाता उल्टा कर्मबन्ध व अध्यवसान से बन्ध जानेकी हानि ही भोगता है। भविष्यमें तो कुछ यहांका रहना ही नहीं है, भविष्यका लाभ ही क्या है।

अपने आपके स्वरूप को संभाल लेना महापुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थ वाले के सर्व अर्थ की सिद्धि है। सिद्धि वह कहलाती जहां इच्छाकी पूर्ति होजाती। इच्छाकी पूर्तिका अर्थ है इच्छा का न रहना। आत्मसावधानी के इच्छा है नहीं अतः उस के सर्व अर्थकी सिद्धि समझना चाहिये।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपना कार्य करलो, मनुष्य जन्मकी सफलता करलो।

२५ नवम्बर १९५६

ज्ञान तो प्रायः सबको होता है किन्तु प्रतीति न होने के कारण ज्ञान रह जाता है, काम नहीं आपाता है। सर्वोपदेशका सार इतना है—कि रागी कर्मको बांधता है, विरागी कर्म से छूट जाता है अतः रागी न होना चाहिये विरागी रहना चाहिये।

अब इसके करनेका मार्ग तभी प्राप्त होता है जब भीतर विरागता आनन्दका मूल है यह आस्वासन एक बार भी होजाय। इसे कहते हैं स्वानुभव।

स्वभावानुभव बिना आत्मोन्नति असंभव है। स्वभावानुभव के लिये स्वभावका ज्ञान आवश्यक है, स्वभावज्ञान परमशुद्धनिश्चयनय जैसे ज्ञान द्वारा साध्य है। परमशुद्धनिश्चयनयके बोधके लिये पहिले स्वपर्यायनिश्चयनय जानना आवश्यक है। स्वपर्यायनिश्चय २ प्रकारका है अशुद्धनिश्चयनय, शुद्धनिश्चय। अशुद्धनिश्चय तो इस प्रकरणमें जीव की अशुद्धपर्यायको जीवसे होना देखता है और शुद्धनिश्चय शुद्ध पर्यायको जीवसे होना देखता है। जब स्वपर्याय-निश्चयनयद्वारा एक ही आत्मा और उसके पर्याय की ही दृष्टि रहती है और रहती है दृष्टि इस प्रकार कि पर्याप गौण होजाती है व द्रव्य मुख्य हो जाता है उस समय द्रव्य ही ज्ञानमें रह जायगा। पश्चात् द्रव्यका भी विकल्प छूटकर स्वानुभवमें आ जावेगा।

२६ नवम्बर १९५६

आत्मा स्वतः आनन्दमय है, इसके आनन्द का घातक उपादान से मलिनता याने भावकर्म है और निमित्तिसे कर्म, नोकर्म है। जिस शरीरको जीव सुखका अनन्य कारण समझता है, दुःखका मूल वही शरीर है। आत्मा एक भिन्न पदार्थ है और शरीर भिन्न अनेक पदार्थ है। आत्मा अपनेमें उपयोगी रहे तो अत्यन्त अनाकुल, परमानन्दमय होता है। अपने उपयोगसे चिगा कि बाह्य का कुछ न कुछ ख्याल आ ही जाता है। उन बाह्योंमें सबसे अधिक सम्पर्क वाला बाह्य पदार्थ शरीर है। शरीरकी बुद्धि रख कर ही तो जगत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि से मलिन होता है और पतित होजाता है। भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, रोग आदि वेदनाओं का कारण यह शरीर ही तो है। सर्व आपत्तियों का कारण यह शरीर है। भावोंकी मलिनताका कारण यह शरीर है, बाह्य आपत्तियोंका कारण यह शरीर है। निन्दा, प्रशंसा, अपमान आदिके अनुभव शरीर के स्नेहसे ही होते हैं। माया, मिथ्या, निदान का कारण शरीर ही बनता है। इनके अतिरिक्त शरीर कोई पवित्र वस्तु भी तो नहीं है। नव द्वार मल के इसी में तो हैं। निरन्तर अपवित्रता इसीसे तो बढ़ती है। विष्टा, मूत्र, नाक, लार, कफ, थूंक, कीचड़, पसीना, कनेऊ आदि मल इसीसे तो झरते हैं। मांस, हड्डी, खून आदि घिनाववी वस्तुवों का यही तो पिन्ड है। यह शरीर अनुरागके लायक बिलकुल नहीं है। गले पड़े बजाये सरे की बात अन्य है।

२७ नवम्बर १९५६

प्रत्येक मानवको वह चाहे गृहस्थ हो या साधु या ब्रह्मचारी अथवा पंडित, मूर्ख, धनी या गरीब सभीको कोई न कोई ग्रन्थ विद्यार्थी की भांति पढ़ना चाहिये। पढ़नेके ध्येयसे, गुरुके पास जानेके भावसे पुस्तक हाथमें लेते ही पुरुष पर जादू सा असर होता है, विषय कषाय भाग जाते हैं बचपन जैसी निर्विकारता पास आने लगती है, मोह ममता के भार हटकर कुछ न कुछ हल्केपनका (निर्भार का) अनुभव मिलने लगता है।

यह तो कुछ दिन अनुभव करके भी देखा जा सकता है। अध्ययन हितकारी मार्ग है। बड़े बड़े आचार्य हम पूतों पर करुणा करके अपने पवित्र तपसे प्राप्त हुए अनुभव प्रकाशित कर गये हैं जो ग्रन्थोंमें भरे हैं। उनके पढ़नेकी ओर अपनी दृष्टि न जावे तो यह कितना अपने आप पर अपना अन्याय है।

विद्या ही एक आत्माकी विभूनि है। विद्या बिना आत्माकी कुछ शोभा नहीं है।

विद्या बिना मनुष्य जीवन बिलकुल बेकार है।

विद्याका फल अपनी आत्मामें देखना, बाहर में नहीं। यदि बाहरमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फल देखा तो उसका फल दुःख ही है क्योंकि वह विद्या नहीं, अविद्या है।

बाह्य विकल्प सभी एक दम छोड़दो, यह न सोचो कि ज्ञान छूट जावेगा। अनुपम अनन्तज्ञान इसी विधिसे प्रकट होता है। यह न सोचो कि आनन्द हट जावेगा। अनुपम अनन्त आनन्द इसी विधिसे होता है।

२८ नवम्बर १९५६

गोटे गांवमें निम्नलिखित ने व्रत ग्रहण किया —

श्री मूलचन्द जी जैन — आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत

श्रीमति सौ० धन्नी ध० प० मुलायमचन्द — दर्शनप्रतिमा

सोना बाई — वमोरया ,,

मंझली बाई ध० प० कस्तूरचन्द जी वमोरया व्रत प्रतिमा

—

नाथ ! लोग कहा करते, आजकल सचका जमाना नहीं है, सच बोलो तो धन्धा ही नहीं चल सकता। सो ऐसा लोग ही कहते थे, मैं तो इसे सच नहीं मानता। अब तो हम ही पर भुगतान आगया, मैं सच कह रहा हूं नाथ ! भीतर मेरा यही चाहता कि कुछ नहीं चाहिये मुझे। तुम ही सदा बिराजे रहो उरमें मेरे याने कुछ भी पर विकल्प न उखड़ो। किन्तु ऐसी सचाई की बात मनमें उठती है तो भी विकल्प पिशाच ऊधम मचा डालते हैं तुम्हारे ज्ञानमें उल्टा ही झलक रहा है कहो नाथ ! सचाई की यहां भी तुम कीमत न करोगे। प्रभो माफ करना। झुंझलाहट में कह आया ऐसा। अपराध तो सर्वत्र मेरा ही मेरा है मेरे कार्यमें। ऐसी सन्मति मेरे रहे सन्मतिनाथ ! अब भवभ्रमण शान्त होजाय। अनादि याने अनंतकाल तो बीत गया, अब और क्या कसर रही। बस बहुत हो गया। अब तो गड़बड़ी ! फिनिश, समाप्त ऐण्ड, खतम, इति।

२९ नवम्बर १९५६

दुःखका कारण अभ्यंतर में देखो अन्यथा जन्म व्यर्थ जायगा दुःखके कारणोंकी छाट आदिमें आकुलित रहोगे। यह दुनियां अन्धेर नगरी है, यहां जिसे जो कुछ पुण्योदयसे मिला उसे वह सस्ता जानकर उसमें आसक्तिसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भोगी बन रहा है परन्तु यह पता नहीं कि यह अन्धेरनगरी है इस सस्तेके लोभीको क्या क्या विपदायें आवेंगी। इस सस्तेके भोग का फल है आत्म-विनाश। भले ही अभी कुछ दिन विषय कषाय से अपने आपके पोषण की चाह करे किन्तु परिणाम इसका कटु ही है।

प्राणी मोहमें इतना बेशुध है कि सर्वत्र सर्वदा यह पाता तो है आत्मीय आनन्द गुण का आनन्द किन्तु मानता है विषयका। इस कारण मोहीको विषयोंमें रति हो जाती है। जिसके विषयरति होती है उसके दुःख बना रहना प्राकृतिक बात है। वह विषयरत अपने दुःखमें उपाधिको कारण माने यह उसका कोरा भ्रम है।

मुक्त आत्मा हो या संसारी आत्मा, सभी भोगते हैं अपना आनन्द। बस जो इस मर्मको पा लेते हैं वे अनन्त आनन्द भोगते हैं और जो इस मर्मको न जानने के कारण विषयोंमें आनन्दबुद्धि रखते हैं वे भोगते हैं संक्लेश।

वस्तु जैसा है वैसा मान लिया जाय, लो होगया झगड़ा साफ। यदि अज्ञानकी ही हट रखी जाय तो हो गया कल्याण माफ।

३० नवम्बर १९५६

जब जब भी जो जो भाव तुम्हारे उत्पन्न हो रहा हो उस भावमें विश्वास मत करो। उसे सामने रखकर यह कहो निकल जावो परिणाम! तू मेरे दिलरूप नहीं है। तू तो अभी नष्ट ही हो रहा है यदि तुझमें रुचि करूं तो संसार के महाक्लेश सहनेके लिये मैं संस्कृत बन जाऊंगा सो दुःखोंकी परम्परा मुझे सहना पड़ेगी।

हे विभाव! तुम मेरी स्वच्छता नहीं हो। मेरा तो स्वच्छता स्वरूप है। आये हो कर्मका उदय होने पर सो तुम औदयिक हो, बाह्य हो। मैं चैतन्यमात्र हूं। तुम्हारी रुचि मुझे नहीं है। मोहियोंके पास अड्डा जमावो। यहां आंख लगाकर क्या करोगे? क्या लाभ! तुम भी परेशान हो रहे, मुझे भी परेशान कर रहे। जहां तुम निर्भयता पूर्वक रह सको वहां जावो। किन्तु मैं यह ठेका नहीं दे सकता कि तुम किसी भी जगह निर्भयता पूर्वक रह ही लोगे। अच्छा तो यह ही है कि तुम अपनी कुटेव छोड़ ही दो अन्यथा जो भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव अपना घर जान जायेगा वही तुम्हारे कान पकड़ निकाल देगा। तुम्हारी दाल यों नहीं गलती कि तुम एक प्राण होकर ही तो नष्ट हो जाते हो। तुम्हारा धन्धा तो तुम्हारी बिरादरी वालोंके भरोसे पर है और वे बिरादरी वाले भी सब तुम जैसे बे घर बार के हैं। पहिले अपना ही स्वरूप तो वे व्यवस्थित बना लो, पीछे घरबार की बात कहेगा। मोह। जावो बेटा! तुम धोखे में पैदा होगये थे। अब अपने मामाके घर रहना। जहां तुम्हारा मामा इशारा करे उसके शिर पर चढ़ना। यदि अपने आप कहीं ऊधम मचावोगे तो तुम्हारा नाम निशान भी न रहेगा। जावो, बेटा! धीरे से निकल जावो। हमारे घर पैदा हुए थे इसलिये ग्रहवात से इतनी बात भी कर रहे। नहीं तो मुझे क्या जरूरत थी कि तुम्हारी ओर भी मैं कुछ ताफता। ॐ शुद्धं चिदस्मि, निर्ममत्वोऽहंम्, चिदानन्दोऽहं, सहजानन्दोहम्।

१ दिसम्बर १९५६

जो ध्रुव निज आत्मतत्त्वका परिचय पा लेता है वह धन्य है, उसके संसारके बन्धन नहीं रहते। ऐसा ज्ञानी पूर्वकृतकर्म के विपाक में गृहस्थीमें रहना पड़ता हो, विषय प्रसंगमें आना पड़ता हो और प्रेम पूर्वक हो भी रहा है तो भी अन्तरंग से उससे हटना चाहता है।

जैसे—तिजारी रोग वाला मनुष्य अत्यन्त कटु औषधि भी पीता है और प्रेमपूर्वक पीता है, समयपर औषधि न मिले तो वह झगड़ों को भी तैयार हो जाता है। इतना औषधिमें उसकाल प्रेम होनेपर भी वह अन्तरंग में यही चाहता है कि यह औषधि कब छूट जावे। देखो! यह वैराग्य और प्रेम संधान। अन्तरंग मर्म तक पहुंचने पर या खुद बीती बात होने पर यह संधान स्पष्ट हो जाता है।

वैसे विषय कषाय का उचित रोग वाला ज्ञानी गृहस्थ विपाक कटु भोग औषधिका सेवन करता है और प्रेम पूर्वक करता है। इतना भोगमें राग होनेपर भी वह अन्तरंगमें यही चाहता है कि यह भोगसंयोग कब छूट जावे। देखो। यह वैराग्य और प्रेम का संधान। अन्तरंग मर्म तक पहुंचने पर या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

खुद बीती बात होनेपर यह संधान स्पष्ट होजाता है।

२ दिसम्बर १९५६

प्रेमके साथ वैराग्य होनेके कारण ज्ञानी गृहस्थ के अन्याय में प्रवृत्ति नहीं होती है व प्रतिज्ञाके विरुद्ध प्रवृत्ति नहीं होती है।

मोही, अज्ञानी जीव की सब प्रवृत्तियां, मूलमें मोह विष होनेके कारण, आत्महननका कार्य करती है।

मोही और विवेकीमें मालिक मुनीम जैसा अन्तर है। ज्ञान का अतुल सामर्थ्य है। ज्ञान ही मात्र वैभव है अन्य कुछ वैभव ही नहीं जिससे यह कहा जाय कि ज्ञान सर्वोच्च वैभव है।

वस्तुतः प्रत्येक वस्तु का वैभव उस ही वस्तु का असाधारण भाव है। विशेषेण भवतीति विभवः विभवस्य अयं वैभवः। परिणमती हुई वस्तुका परिणमन व सामर्थ्य वस्तु का वैभव है।

मेरा वैभव मेरे साथ है उससे किसी दूसरेको लाभ नहीं। अन्यका वैभव उस ही अन्यके पास है उससे अन्य किसी को लाभ नहीं।

परका सम्पर्क ही आत्मा का वैरी हैं। प्रत्येक वस्तु में परिपूर्ण है। किसी वस्तुका अन्य कोई कुछ नहीं लगता। प्रत्येक द्रव्य की सत्ता केवल से तादात्म्यावच्छिन्न है।

३ दिसम्बर १९५६

जीवन वह व्यर्थ है जहां वीतरागताका भाव नहीं, उद्देश्य नहीं। जीवन वह सार्थ है जहां पर्यायबुद्धि नहीं व सर्वविविक्त आत्मतत्त्वकी अभीक्ष्ण दृष्टि है।

समयका सदुपयोग वस्तुस्वरूपविषयक ज्ञान का अर्जन है। यदि यह कृत्य नहीं तो समय व्यर्थ गया जानिये।

समय का दुरुपयोग तत्त्वचर्चा बिना परसम्पर्क रखना है व गप्पें लगाना है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ब्रह्मचर्यकी साधना परमसाधना है, परमतपस्या है। वीर्यबिन्दु शारीरिकशक्ति है, मानसिक शक्ति है, आध्यात्मिक विकास की शक्ति का हेतु है।

मन की गन्दगी व्यभिचार है। और वह गन्दगी जो वीर्यक्षरणका भी हेतु है महाव्यभिचार है।

व्यभिचारी के सदा पातक रहता है व्यभिचारी सदा पातकी होता है। इसका कारण यह है कि व्यभिचार महापातक है।

जैसे अध्यात्ममें सामान्य तत्त्व जो विशेषसे तिरोहित है उसकी दृष्टि सर्व शक्ति है। वैसे शरीरमें वीर्य जो सर्व धातुवों से तिरोहित है उसकी पालना सर्व शक्ति है।

४ दिसम्बर १९५६

लोकमें बाह्यका आदर है, बाह्यका अपमान है। अन्तरंगका परिचय नहीं सो आदर तो क्या करे, परिचय नहीं सो अपमान ही अपमान हो रहा है और वह हो रहा है अपमान अन जानेमें अतः यह बड़ी कठिनाई और विपत्ति की बात है।

हे आचार्य परमेष्ठियो! विराजो हृदयमें, बल दो मुझे आत्मतत्त्वका। तुम महापवित्र हृदय थे, ज्ञान, ध्यान और तपकी साधना की मूर्ति ही तुम थे। तुम्हारा साक्षात् दर्शन मंगलमय था क्योंकि अब भी तुम्हारा ध्यान मंगलमय है। हे वनवासी, उदार आत्मावो। जिसके हृदय तुम्हारा स्वरूप विराजता है वह भव भ्रमण से मुक्त होनेका लेसेन्स पा लेता है।

हे सूरीश्वरो! तुम्हारा एक एक क्षण ज्ञानवासनासे वासित है। तुम्हारे देहका एक एक कण वैराग्यवासनाका सूचक है। तुम्हारे मनके एक एक अणु ध्यानकी सुरभि से धन्य हो गये थे। तुम्हारे वचनके एक एक वर्ण वचनचातुरोंको अनुकरणीय होगये हैं। तुम्हारे रहनेका स्थान अहिंसासे मंडित होगया था। तुम्हारे अवतारका समय कमनीय अलंकृत होगया था। प्रभु धन्य हो! तुम सिंह थे, नरसिंह थे। अपने आचारोंका वीरतासे पालन किया था।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

५ दिसम्बर १९५६

स्वभाव और मुक्त ये दोनों उपास्य हैं। स्वभाव उपास्य निश्चयतः है और मुक्त उपास्य व्यवहारतः है।

इन दोनोंके पर्यायवाची नाम निम्नप्रकार हैं —

कारणपरमात्मा,	कार्य परमात्मा।
आत्मा,	परमात्मा।
सदाशिव,	मुक्तात्मा।
अनादिसिद्धपरमात्मा,	सादिपरमात्मा।
चैतन्य,	शुद्धोपयोग।
पुरुष,	ईश्वर।
तुरीयपाद,	अन्तःप्रज्ञ।
सहजसिद्ध,	कर्मक्षयसिद्ध।
परमपारिणामिक भाव,	स्वाभाविक भाव।
अविकार,	निर्विकार।
अपरिणामी,	शुद्ध परिणामी।
ब्रह्म,	सिद्ध।
सहजभाव,	निर्मल भाव।
निराकार,	पुरुषाकार।
मूलब्रह्म,	शुद्ध ब्रह्म।
द्रव्यशुद्ध,	पर्यायशुद्ध।
स्वभावसिद्ध,	चरमसिद्ध।
निजनाथ,	जिननाथ।
स्वयंसत्,	स्वयंभू।
असंसार,	निःसंसार।
सदामुक्त,	सादियुक्त।
सनातन,	चिरन्तर।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

६ दिसम्बर १९५६

प्रभुकी अनूठी भक्ति विषयकषायोंका विनाश कर देती है। कमजोरी होने पर कमजोरी बढ़ती चली जाती है। बल लगाने पर बल बढ़ता चला जाता है। मनको विषयकषायोंके अर्थ शिथिल कर देने पर शिथिलता बढ़ती चली जाती है, इसी कारण तो अति क्रम से व्यतिक्रम और व्यतिक्रम से अतीचार व अतीचारसे अनाचार तक कितने मूठोंके हो जाता है। मन को सवलभ बनानेपर वह पल प्रकट होता चला जाता है, तभी तो असंयम से विविध संयमासंयमोंमें व संयमासंयमसे विविध संयमों में प्रगति होती चली जाती है।

मनुष्य जन्म अति दुर्लभ है इसका सदुपयोग करते रहो, परिणामोंको निर्मलताकी ओर बढ़ाये चलो। जो आनन्द वैराग्यमें है, अकेलेमें है, सर्व कुछ विचार–विकल्प हटा देने में है वह अन्यत्र कहीं है ही नहीं।

पदार्थके स्वरूप को तो देखो—प्रत्येक पदार्थ अखंड, अपने ही चतुष्ट-रूप है फिर एक पदार्थ का दूसरा कुछ होता ही नहीं है, हो ही सकता नहीं है।

बस अपना कुछ मत मानो। मौलिक विजय तो यह है। पश्चात् अपने आपको देखो--जो तंरग–परिणमन–कषाय भाव हो रहे हैं वे औपाधिक हैं बिना उपाधि निमित्तके उठते नहीं है, अतः वे भी तुम्हारे कुछ नहीं है, हित नहीं है। उन सर्व विभावोंसे मुख मोड़े रहो द्वितीय विजय तुम्हारी यह है। इन दोनों पुरुषार्थों से तुम विश्वविजयी हो जावोगे।

७ दिसम्बर १९५६

जगत के ओर की दृष्टि समाप्त कर। धर्म अपने लिये किया जाता है। अपने हितके उद्देश्यसे धर्मक्रियायें धर्माचरण करते चले जावो। "जगत किसमें अच्छा कहता है और किसमें कबुरा कहता है" इस तर्कको होली कर दो बशर्ते कि स्वयं धर्म करते हुए चले जाना है।

पवित्र और दृढ़ भावोंसे अब अपना धर्म किये जा। तू ही तेरा साथी है तेरा किया हुआ तेरे आगे आवेगा। वह चाहे जगत की जानकारी में हो या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बेजानकारी में हो। परिणामोंकी निरन्तर संभाल रख। स्वभावदृष्टि की स्थिरता बढ़ाये जा।

तू तूही है, तू देह नहीं है। देह तो अग्निमें भस्मकर ही दिया जावेगा। यदि कहीं अनजानी जगहमें था किसी परिस्थिति विशेषमें देह छूट जावेगा तो संभव है, कहीं गाड़ दिया जाय या गीधों आदि के द्वारा चूंट खा लिया जाय। इसकी दुर्दशा निश्चित ही है। होवो, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता। तुम्हें तो चेतना चाहिये।

बढ़े चले आवो अपने आत्माकी ओर। प्रसन्न रहो निज एकान्तमें बसकर रहकर रमकर। जगत सब मायाजाल है, जगत तेरे विपदावोंका निमित्त है। मत देख किसी पर वस्तुकी ओर। निज वस्तुका चमत्कार देख। चैतन्यतत्त्वकी दृष्टि का कितना अचूक चमत्कार है इस निजनाथके दर्शनमात्रसे राग द्वेष मोह आदि विपदायें सब नष्ट होती जाती हैं।

हे चैतन्य महाप्रभो! जयवंत हो ओ।

८ दिसम्बर १९५६

आज १२॥ बजे दुपहरको गोटेगांव से करेली पहुंचने के उद्देश्यसे चले। प्रायः प्रत्येक पुरुष और महिलावोंका रुदन देखा। धर्ममार्ग और धर्मानुरागको अति में उचित समञ्जसता तो नहीं जचती। गोटेगांव समाजका धर्मानुराग प्रबल देखा। यहांकी समाज ने स्वयं प्रवचनप्रसारके लिये ७५१) प्रवचनप्रकाशिनी समिति मेरठ को भेजे जिससे सर्व संस्थावोंको अर्धमूल्य में मिल सकें। इनमें मुख्यनाम ये हैं— १११) श्री सि० वीरनलाल लखमीचन्द जी, १०१) श्री सि० मुन्नीलाल जी, १५१) श्री रतीलाल रामलाल जी।

गोटेगांवसे चलकर शामको करकवेल पहुंचे। यहांके भाई सिखरचन्द पिरपीचन्दजी ने साथ आये हुए श्रावकोंमें जो नं० २५ भाई ठहर गये थे उत्तम तत्कालिन भोजनव्यवस्था की।

शामको सभामें जैन अजैन सभी लोग एकत्रित हुए जीव स्वयं ज्ञान आनन्दमय है, जीवके आनन्दका पापवृत्तिके कारण है। जो जीव पाप करना छोड़ देता है उसके आनन्दका कोई अपहरण नहीं कर सकता। दुःख गरीबी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का नहीं हुआ करता किन्तु दुःख मात्र पापपरिणाम का होता है। जो जीव अनन्त ज्ञान अनन्त आनन्द के स्वभाववाला है वह अपने स्वभावको पहिचान जाय और भोजन को तरसे यह कभी नहीं हो सकता। अनशन एक तप है और साधुचर्या भी एक तप है। आज प्रातः १॥। बजे से चलकर जटसिंहपुरा करेली १०॥ पहुंचे।

जो जीव दुसरेके दिल दुःखाने वाले परिणाम करता है अथवा दूसरेके प्राण हरता है, उसे दुःख उसके परिणामके कारण है। यदि वह सबकी भलाई सोचे तो उसे स्वयं अद्भुत आनन्दका अनुभव हो, अन्यका उसके प्रति आकर्षण हो।

६ दिसम्बर १९५६

जो जीव चुगली निन्दा करता है, अहित वचन बोलना वह स्वयं के विपरीत अभिप्राय से दुःखी है, स्वयंका आत्मबल उसने नष्ट कर लिया इससे क्षोभ ही उसके हाथ है, जिसकी निन्दा चुगली की, झूठी बात कही उससे हानि पहुंचेगी इसकी शल्यसे वह दुःखी है। यदि सचाई का कोई व्यवहार रखे तो उसको क्षोभ नहीं हुआ करता।

जिसकी नियत व्यवहारसे परके अधिकृत वस्तु पर जाती है उस पर वस्तुके हथयाने की बात सोचता है वह अपनी इस तुच्छधारणाके कारण दुःखी है। गरीबी कोई संकट नहीं। व्यवहारके उत्सव कोई ठाठसे न कर सके तो यह उसकी निन्दाकी बात नहीं है। निन्दा आत्माके अवगुणसे है। पर वस्तु पर विमल न डालकर अपने आप के आत्माके गुणोंमें रुचि बढ़ानेवाला आत्मा स्वतः सुखी है।

कुशील जितनी बेवकूफी तो अन्य कुछ मानी नहीं जाती। परस्त्री व वेश्या आदि की दुर्वासना रखनेवाला सतत दुःखी रहता। लौकिक आपत्तियां भी अनेक बन जाती है, इस दुर्भावनाके त्यागनें आनन्द ही आनन्द है।

तृष्णा परिग्रह भी दुःखकी खान है। जो पुण्योदयसे, न्यायसे मिले उसमें संतोष रखना व यथाशक्ति उपकार सेवामें लगानेवाला आनन्दपथकी ओर बढ़ता है। फलितार्थ—जीव पापभावके कारण दुःखी रहता है। जिसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

दुःखी रहना दुःखी न हो वह पापपरिणामका त्याग करे।

१० दिसम्बर १९५६

आज़की गत रात्रि याने कल की रातमें एक जंगलमें ठहरे साथ में करीब १७–१८ श्रावक भी थे, सभीको व हमको उस वातावरणमें शान्ति प्रतीत हुई।

आज सुबह ८।। बजे करेली पहुंचे। लोकोंकी उमंगे धर्मानुरागको अधिक प्रकट कर रही थीं।

धन तो क्षेत्रसे क्षेत्रान्तरमें पड़ा होनेसे अधिक दूर है, किन्तु तन मन वचन तो साथ ही लगे हुए हैं। यद्यपि यह त्रितय भी आत्मासे भिन्न है तथापि क्षेत्रान्तरित वस्तुवोंकी अपेक्षा इन्हें संयुक्त कहा जासकता है। हे आत्मन्! ये तीनों भी समाप्त होजाने वाले हैं। जब तक ये तेरे पास हैं, इनका सदुपयोग कर ले।

तनसे तो जितना बन सके दूसरोंकी सेवा कर। मन से दूसरे प्राणियों की भलाई की बातें सोचा कर। वचन से हित मित प्रिय भाव व्यक्त कर।

अथवा तनमें रहते हुए भी तन से दृष्टि हटा। मनसे मनातीत निज-तत्त्वका ज्ञान प्रारम्भ कर मनका अवलम्ब छोड़। वचनोंसे उसकी ही चर्चा अन्तर्जल्पना कर जो वचनातीत है और फिर वचन के कष्टसे निवृत्त हो।

श्री सि–मुन्नीलालजी गोटेगांव का परिणाम अब विशेषतया आत्मोन्मुख चल रहा है। श्री सि० लखमीचन्दजी (राजकुमारके पिता) गोटेगांव भी शुद्ध जिज्ञासा का बहुत आदर करने लगे हैं।

गोटेगांवके अनेक युवक गोटेगांवसे चलकर करेली तक साथ आये। आये वे स्वयं के प्रेमसे, व्यवहार चिल्लाता है कि अमुककी भक्तिवश आये।

११ दिसम्बर १९५६

जो चीज अपनी नहीं उसे अपनी बनाना याने मानना सो चोरी है। लौकिक चोरी में भी तो यही होता है कि जो परके अधिकारमें चीज है उसे अपनी बना लेता है याने उठाकर अपने पास कर लेता है। तो वास्तविक स्वरूपनय की चोरीमें भी तो यही बात मोही करता है। एक निज आत्म-

http://sahjanandvarnishastra.org/

तत्त्वको छोड़कर बाकी सब पदार्थ पर हैं—शरीर, वस्त्र, मकान, धन, परिवार मित्र आदि सर्व पर है उनका स्वामी खुद का खुद ही है। प्रत्येक पदार्थ खुद ही खुद से अधिकृत है, किसी पर भी पदार्थको अपनाना, अपना बनाना, अपना मानना चोरी है। जो चोरी करता है उसे बन्धनकी शंका बनी रहती हैं और वह बन्धनमें पड़ता भी है। अज्ञानभाव में, मोहमें निरन्तर जीव चोरी करता है। यह आत्मा प्रभु है अज्ञान भावमें वह चोरी करता है और यही अपने आपको दन्ड दे देता है।

परद्रव्य को अपना मानना यही सबसे बड़ा प्रधान अपराध है, क्योंकि, इस मोहभाव में आत्मानुभूति रूपी राध, राधा इस आत्मामें आलिङ्गित नहीं है, जहां राधाका आदर नहीं है वही अपराध है। अपराध वाला जीव सशंकित और सम्बन्ध होता है। निरपराधी निःशंक रहता है।

यहां सर्व मोहका नाच है, जबर्दस्तीका ममत्वभाव है, फल कुछ नहीं निकलता और निकलता है तो विषफल। यहां दूसरेको कोई नहीं चाहता और न रहता है। सब स्वार्थ को ही चाहते हैं और स्वार्थ को ही रोते हैं।

१२ दिसम्बर १९५६

गोटेगांव

आज स्वर्गीय कस्तूरचन्द जी बड़कुर के सुपुत्रोंके यहां आहार हुआ। कस्तूरचन्द जी यहां के प्रेमी, प्रमुख एवं धार्मिक पुरुष थे इनका समस्त परिवार भी सहृदय है। कस्तूरचन्द जी की स्मृतिमें इनके भाइयोंनें व पुत्रोंने दस हजार आत्मकीर्तन प्रकाशित कर वितरण करना जाहिर किया है। इसमें करीब २५०) व्यय होंगे।

आत्मा अपनेको कुछ न कुछ अनुभवता रहता ही है। मोही अपनेको मनुष्य, स्त्री, पशु, धनी, पण्डित, मूर्ख, गरीब आदि रूपसे अनुभवता चला आया है, ये सब अशुद्ध अवस्थायें हैं। इन रूप के अनुभवसे आत्मा अपनेको अशुद्ध पाता है और अशुद्ध बनाता रहता है।

जो भव्य अपनेको शुद्ध एक चैतन्यमात्र अनुभव लेता है वह अपने को शुद्ध पाता है और शुद्ध बना लेता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लोकमें भी देख लो—किसीने अपने को यदि दद्दा हूं अमुकका, ऐसा अनुभव किया तो माने हुए बेटेकी खुशामद में अपने पुरुषार्थ को पतित करना पड़ो, इसी तरह अन्य अन्य सम्बन्धोंकी बास सो चला।

आत्मा मात्र भाव ही करता है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं कर सकता है। भावमें ही सम्बन्ध का ख्याल बना कर संसारमें भ्रमण करता है और भावमें ही निज चैतन्य स्वरूप का अनुभव कर समस्त दुःख, बन्धनोंसे छुटकारा पा लेता है। सर्व खेल भावका है अब क्या पसन्द है सो छूटनी करलो।

१३ दिसम्बर १९५६

जीव अकेला ही आया है और अकेला ही जावेगा, वीच के ये क्षण स्वप्नकी भांति है। स्वप्नका समय व्यतीत होते जैसे जाना नहीं जाता, शीघ्र व्यतीत हो जाता, इसी प्रकार स्वप्नके ये जागते दिन व्यतीत होने पर जाने जाते कि ये व्यतीत हो गये।

प्रत्येक मनुष्यको निम्नलिखित बातों पर दृढ संकल्प हो जाना चाहिये—

१. अपने जीवनके अन्तिम कुछ वर्ष गृह जालसे छुटकर सत्संगमें मात्र धर्म व्यतीत होवें, इसके कुछ अपने गुजर लायक आय रखकर शेष सर्व परिग्रह गृहके उत्तराधिकारीको समर्पित कर देवे।
२. एक वर्षमें करीब २—३ माह बरसात के दिनोंमें ज्ञानार्जन व धर्मपालन के अर्थ सत्संगमें व्यतीत करे।
३. ब्रह्मचर्यपालन, स्वाध्याय व शुद्धभोजनपर अधिक ध्यान देवे।

मनुष्योंका संसर्ग वही चाहता है जिसके राग हो। इसी कारण मनुष्यों का संसर्ग करनेवाला निरन्तर रागवश परोपयोगी रहता है। परोपयोगीको जीवन क्षण व्यर्थ हो जाते हैं।

वैराग्य हुआ है जिसे उसे प्रिय होता है एकान्त
राग सताता है जिसे, उसे सुहाता है शान्त।

आज करेली से १२॥ बजे दुपहरको चले १२ मीलपर घमतरा देहात में रात को ठहरे। यहां सभा हुई जिसमें कई अजैनों ने, जो मांस व शराब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का सेवन किया करते थे उसका त्याग किया।

१४ दिसम्बर १९५६

प्रातः खमतरासे चले नदी के रेलवेपुलपर १०–१५ गज दूर काम करते थे उनमेंसे कई पुरुषोंने मांस व शराब का त्याग दिया।

आज कल मांसभक्षी एवं मद्यपायी केवल शहरों में ही नहीं किन्तु देहातोंमें भी अधिकतया पाये जाते है। जिसके बल पर यदि यह कहा जाय कि हिन्दुस्तान में मांस भक्षी ८० परसेन्ट हैं तो यह सत्यही होगा बल्कि पाये तो इससे भी ज्यादह जाते होंगे। परिचित सर्व देशोंकी अपेक्षा तो ९० परसेन्ट से ज्यादह होंगे।

जीवका उत्थान धर्म बिना हो ही नहीं सकता धर्म तो वस्तुतः आत्म-बोधप्रतीतिचर्या है। किन्तु इसकी पात्रता उस आत्मामें होती ही नहीं है जो दयाहीन हृदयवाला हो। अतः दया पालना आवश्यक कर्तव्य है। मांसभक्षी व मद्यपायी दयापालनेके भी मात्र नहीं हो सकते। सो मांस व मद्यके सेवनका त्याग किये बिना इंच भी उद्धार नहीं हो सकता।

कुछ लोग मांस मद्यके त्यागमें बड़ी कठिनाई का अनुभव करते हैं, इस पर हे आत्मन् अचरज जरा भी मत कर, क्योंकि जिनका होनहार उत्तम है ही नहीं फिर भविष्यमें, उनका भाव नहीं हुआ करता धार्मिक। ऐसे जीव तिर्यञ्च रतिमें भी पाये जाते हैं। तिर्यञ्चोंको देखकर तुम इतने आतुर क्यों नहीं होते, जितना मांस भक्षी मनुष्यको देखकर होते।

—(०)—

१५ दिसम्बर १९५६

आज कर कपेलसे आहारोपरान्त चले व ५ मील पर माने गांवमें ठहरे। यहां रुद्र प्रतापसिंह अच्छे कांग्रेस वर्कर हुए हैं, उनके घर ठहरता हुआ, साथमें करेली वाले भाई भी १२–१३ जो करैली से पैदल चले आ रहे हैं ठहरे। यहां करैली वाले भाईयोंने सभी ने तमाखू बीड़ी का त्याग किया रातके अन्नका, जो खाते थे, त्यागकिया, छने पानी पीने का नियम लिया।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रातको सभा हुई, जिसमें कई अजैनोंने मांस व शराब का त्याग किया।

ता० १५ शनिवार—सुबह ६॥। बजे मानेगांवसे चले और गोटेगांव सुबह ६ बजे आगये। यहां लोकोंकी उमंगें उत्साहपूर्ण पहिले जैसी हो दिखीं।

अनेकों लोग धर्म पालन चाहते हैं, किन्तु खुदकी कमजोरी वश जैसा दिल चाहता है उस तरह उतर नहीं पाते। गोटेगांवके सज्जनोंका भी चातुर्मास के लिये बड़ा अनुरोध रहा। यह मैं आत्मा केवल ज्ञातमात्र अपने आप को करता हूं व अपने आपको भोगता हूं, अनुभवता हूं। इसके आगे न कुछ मैं करता हूं, न कुछ मैं भोगता हूं।

यह मैं आत्मा ही इस मुझ आत्माका हूं इसके आगे अन्य कुछ भी नहीं है मेरा। कितना ही कुछ सोच डालूं वहां भी मैं कर रहा हूं अपने आपको। परको न मैं कभी कुछ कर सका और न मैं कभी कुछ भोग सका। परको न अभी किञ्चिन्मात्र भी कर रहा हूं न भोग रहा हूं; कर भी नहीं सकता, भोग भी नहीं सकता, क्योंकि एक द्रव्यका दूसरा द्रव्य न स्वामी है न कर्ता है।

१६ दिसम्बर १९५९

आज २ बजे जबलपुर के लिये चले, लोगोंका धर्मानुराग अतिमहान था।

प्रत्येक पदार्थ अपने ही चतुष्टयसे है। एक परमाणु भी दूसरे परमाणु का कुछ कर सकता नहीं है। क्योंकि प्रत्येक अणु स्वतन्त्र सत् है। लोहे जैसे घन स्कन्ध में भी एक परमाणुका दूसरा परमाणु जो पास ही ठसा है कुछ नहीं है न कुछ करता है। प्रत्येक द्रव्यका परस्पर में अत्यन्ताभाव है।

आत्मन्! अब बता, तेरा जगत में क्या है? किसके परिवर्द्धनसे तेरा परिवर्द्धन होगा? किसके सुधारने से तेरा सुधार होगा।

पर्याय भी तो तू नहीं है, लोगोंने पर्यायका नाम रख रखा या तुझ द्रव्यका, बता। नाम इस लिये रखा जाता है कि अनेकों में से एक को छांट

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लिया जाय, बुला लिया जाय, संकेतित कर लिया जाय। किन्तु तुझ द्रव्यका तो ऐसा स्वरूप है जैसा कि प्रत्येक आत्मा का। परिणमन की अपेक्षा से वह भिन्न नहीं है। आत्म द्रव्य तो एकसा ज्ञानदर्शनसामान्यस्वरूप है! फिर इसकी छटनी कैसी होगी, विशिष्ट आत्मा को कैसे संकेतित किया जा सकता है। लोगों ने जो नाम रखे है वह पर्यायके ही नाम रखे हैं। सो पर्याय के नामसे तुझे क्या मिलेगा? बल्कि पर्यायके नाम की गृह होनेसे दुर्गति ही मिलेगी। मरने के बाद यह नाम भी धरा रह जावेगा।

१७ दिसम्बर १९५६

आज रविवार शाम को पिपरिया पहुंचे यहां १ घरके ३ घर हैं, इनका धर्ममें बहुत उत्साह है, ५० आदमियोंका प्रीति भोज किया। प्रातः आहारोपरान्त चलकर २॥ मीलपर नर्मदा तीर पर सामायिक की।

प्राभृत—किसी विषयक प्रमाणका याने ज्ञानका धारण पालन जहां हो उसे प्राभृत कहते हैं।

प्रकृष्ट आत्मावोंके द्वारा जो व्याख्यान किया गया हो वह प्राभृत है।

आज शाम सहजपुर आगये। सहजपुर तो निज आत्मा है। इस सहज नगरमें बसनेवाला सहज आनन्द पाता है। सहजभावसे दूर भगनेवाला आत्मा असहज—औपाधिक भावमें पतित होजाता है।

जिस जिस परिणामका तुम्हें ख्याल रहे, विकल्प रहे उस उस परिणाम्म को आगे रखकर कहो—यह वर्तमान परिणाम मैं नहीं, यह तो उपाधिका प्रतिबिम्ब है। जावो, निकलो मैं तो सुरक्षित ध्रुव चेतन हूं।

आत्माका स्वभाव चैतन्य है। चैतन्यका कार्य प्रतिभासना है। प्रतिभासना २ प्रकारका है—१. अन्तरङ्ग, २. बहिरङ्ग,। अन्तरङ्ग प्रतिभास दर्शन है और बहिरङ्ग प्रतिभास ज्ञान है। सबका भाव यह हुआ कि आत्मा का कार्य देखना जानना है। आत्मा तो देखता जानता है। यदि कोई मोहभाव से देखता जानता है तो मोहसे उपरक्त होजाता है। यदि कोई रागभावसे कुछ देखता जानता है तो रागसे उपरक्त हो जाता है। यदि कोई द्वेषभावसे कुछ देखता जानता है तो वह द्वेषभाव से, उपरक्त हो जाता है। यही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रङ्गीलापन जीवका बन्धन है। इस बन्धनसे छुटकारा पानेका उपाय स्वभाव दृष्टि है।

१८ दिसम्बर १९५६

आज आहारोपरान्त ११ बजे जबलपुर को चले। ११॥ बजे से जंगलमें सामायिकके लिये बैठे। सामायिकमें चित्त विशेष नहीं लगा।

ज्यौं ज्यौं जबलपुर शहरके समीप पहुंचना हो रहा, चित्तसे प्रसन्नता भाग रही है। कस्बों का रहना त्यागियों के भाववृद्धिका बाह्यसाधन जैसा है वैसा चतुराईपूर्ण शहरका निकट नहीं है।

जबलपुर के कार्यकर्तावोंका उत्साह तो यद्यपि पर्याप्त दिख रहा है। पुनरपि प्राकृतिक अनुरागकी मन साक्षी नहीं देता।

करीब ३॥ मीलसे वेण्डवाले लगातार अपना काम करते चले जा रहे थे। मैंने कहा भी कि भाई बहुत दूर है इन्हें परेशान न करो, बिना बजाये इन्हें चलने दो। किन्तु बातकी उपेक्षा कर दी।

जैसे कोई गृहस्थ गायको गिरमासे बांध देता है तो वहां बन्धन तीन प्रकारसे दिखते हैं — १. गायका बन्ध, २. गिरमाका बंध, ३. गाय गिरमा दोनोंका बन्ध।

गायकी स्वतन्त्रताकी हानि गायका बन्ध है। गिरमा के एक छोरसे गिरमा का दूसरा छोड़ जकड़ दिया है यह गिरमा का बन्ध है। गाय और गिरमाका परस्पर निमित्तनैमित्तिक बंध दोनोंका बन्ध है।

इस ही प्रकार जीव, कर्म में भी बन्ध ३ प्रकार का है— १. जीवबंध, २. कर्मबन्ध, ३. उभयबन्ध। जीवका राग व रागमें उपयोग होना जीवबंध है कर्म परमाणुवोंमें कर्म परमाणुवोंका बन्ध होना कर्मबंध है।

१९ दिसम्बर १९५६

जीवका व कर्म परमाणुवोंका निमित्तनैमित्तिक पारतन्त्र्य व एक क्षेत्रावगाह होना उभयबन्ध है।

जीवकी सबसे महती विपत्ति परोपयोगता है। परपदार्थसम्बन्धी विकल्प याने फोकटके कामसे ही जीव बदनाम है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीवका निजस्वरूप जीवका घातक नहीं, जीव से बाहरका अर्थ जीवका घातक नहीं।

जीवका विभाव जो कि न जीवका निजस्वरूप है और न जीव से बाह्य तत्त्व है वह जीवके गुणों का घातक है, विकारक है।

संसार दुःखका सागर है, संसार भाव स्वयं दुःखरूप है। वह संसार मलिन आत्मा ही तो है।

मोक्ष आनन्द का सागर है, मोक्षभाव याने केवलानुभव स्वयं आनन्द-रूप है। वह मोक्ष निर्मल आत्मा ही तो है।

चाह की दाह है, क्लेशमय राह है। संसारका इसमें अवगाह है। शांतिसे इसकी डाह है। इसकी कहीं न थाह है। दुनियां में इसकी ही वाह वाह है। चाहके नाशक ही सच्चे शाह हैं।

आत्मन्! तू तो अपने चतुष्टयका ही स्वामी रह सकता है, स्वचतुष्टय के बाहर तो तू शून्य है, असत् है, रंच भी तो सम्बन्ध नहीं फिर किसी को अपने पेटमें रखना उन्मत्तपने। नहीं तो और क्या है।

२० दिसम्बर १९५६

प्राणियों की देह में हितबुद्धि हो रही है यह ही महती विपत्ति है। यद्यपि देह का व आत्माका संसार अवस्थामें निमित्तनैमित्तिकरूप बन्ध व एक क्षेत्रावगाह है तथापि देहके सर्व अणुवोंका आत्मा में अत्यन्ताभाव है, आत्मा का सर्व अणुवोंमें अत्यन्ताभाव है।

हे आत्मन्! करले सुबुद्धि। निजको निज परको पर जानले। विकल्प को छोड़ निर्विकल्प निज स्वभावमें विश्राम ले। अन्यथा क्लेशोंका तांता लगा रहेगा।

हित! प्रिय! आनन्द! मानले अपने को ऐसा ही। तू तेरेको सर्वस्व है। तुझमें तेरी कोई कमी नहीं है। तुझसे ही तेरे सारे काम चलते हैं। सर्व आशा तज। सर्व तृष्णा तज। दुर्मति समाप्तकर। पर्याय बुद्धि की होलीकर। अनादि से अब तक बड़ा दुःख सहा है अज्ञानमें। अब अपने अमूर्त शुद्धजी-वास्तिकायको देख। अब अपने शुद्धजीव पदार्थको देख। अब अपने शुद्ध जीव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्रव्य को देख। अब अपने शुद्ध जीव तत्त्वको देख।

देख देख खुद को इस स्थिरतासे कि अन्य अन्य कुछ प्रतिबिम्बित हों तुम्हारे राग बिना, उद्यम बिना।

वीतराग भावका अनुभविता ही उत्तम होनहार वाला है।

२१ दिसम्बर १९५६

रे स्वयं ! अब रंच भी न भटक अपने से बाहर।

रे स्वयं ! अब रंच भी न विचल अपने से बाहर।

रे स्वयं ! अब रंच भी न भोग अपने से बाहर।

रे स्वयं ! अब रंच भी न सोच अयने से बाहर।

रे स्वयं ! अब रंच भी न समझ अपने से बाहर।

रे स्वयं ! अब रंच भी न जान अपने से बाहर।

प्रिय हित आत्मन् ! यह तेरा स्वभाव ही है कि यदि अपनेसे बाहरको उन्मुख हुआ तो क्षुब्ध होता है और अपनेसे बाहरको उन्मुख नहीं होता तो शान्त रहता है। जैसे समुद्र अपने निष्कम्प समतलसे बाहर हो तो क्षुब्ध होता है, तरङ्गित होता है, न बाहर हो तो सम अक्षुब्ध व्यवस्थित रहता है।

मायाचार बहुत विकट शल्य है। कुछ उन्नति कर जाने पर जो आत्मा गिर जाते हैं उनके पतन का कारण मायाचार है। यह पतन चाहे अन्य लोकों की समझमें आवे चाहे न आवे।

पतन पतन ही है। वह क्लेशका कारण ही है। जब शरीर तू नहीं है फिर शरीरमें रहनेकी इच्छा छोड़। शरीरमें रहकर भी जो शरीर की इच्छा नहीं करते वे शरीर परिग्रह से रहित हैं। रही शरीर आत्माके एक क्षेत्राव-गाहकी बात; सो वह पदार्थोंके साइंसकी, निमित्तनैमित्तक भावकी बात है। इच्छा नष्ट हुई कि सब गलती समाप्त हुई।

२२ दिसम्बर १९५६

इच्छा रहित पुरुष निरपराध है। इच्छा ही सर्वकषायोंकी जननी है। यद्यपि इच्छा लोभ कषायका ही अंश है तथापि एक अंशका सर्व अंशोंके मुका-बिले विवक्षावश भेद है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इच्छाके अनुकूल बाह्य परिणमन न होनेपर व खुदका भी परिणमन न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है। बाह्य तो बाह्य है। बाह्य का परिणमन उस ही बाह्य द्रव्यके आधीन है, उसकी ही वह दशा है। इस भेदविज्ञानरूप सम्यग्ज्ञानके बिना बाह्यके परिणमाने की इच्छा नष्ट नहीं हो सकती और इच्छाके विनाश बिना क्रोधके प्रसंग समाप्त नहीं हो सकते।

जिनकी जैसी इच्छायें है उन इच्छाओंमें से कुछ इच्छायें बाह्य परिणमनके अनुकूल मिल जायें तो उनको वहां मानकषाय उत्पन्न हो जाता है और उस मानकषायके आवेगमें इतना मानमें बढ़ जाता है अन होते परिणमन भी करा लेना चाहता है। फल यह होता है कि बाह्य परिणमन कुछ इसके आधीन तो है नहीं, कुछ तो अचानक समानता मिल गई थी, किन्तु वह प्रासंगिक पूर्वके भ्रममें रहता है सो इच्छा पूर्तिके अभाव में अपना महान् अपमान समझने लगता है।

२३ दिसम्बर १९५६

आज सि० मुन्नीलालजी गोटेगांववालोंको गृहकार्यवश गोटेगांव जाना पड़ा। यह भव्यमूर्ति है। आत्म ध्यानसे इन्हें बड़ा अनुराग है। इनके जानेके आधा घण्टा पश्चात् सि० लक्ष्मीचन्द्रजी सुपुत्र सि० वीरनलालजी गोटेगांव वाले आये। यह शुद्ध विचारका मानव है। धर्मकी ओर अनुराग इनका अधिक हो रहा है।

धर्म आत्माका स्वभाव है और अधर्म आत्माका विभाव है। अधर्म से तात्पर्य कुधर्मका है। जिन जीवोंको बाह्य पदार्थ रुचिकर होते हैं उसका अर्थ यह समझना कि उन जीवोंको खुद का कुधर्म रुचिकर हो रहा है। इसका कारण यह है कि कोई द्रव्य किसी द्रव्यका कुछ कर्ता भोक्ता नहीं है। जो जीव जो करता है वह उसका अपना ही परिणमन है। तब रुचि भी जीव अपने स्वात्मासे बाहरमें कर सकता नहीं है।

इसी प्रकार जिन जीवोंको विशिष्ट धर्मी महात्मा व परमात्मस्वरूप रुचता है उसका अर्थ यह समझना कि उन्हें अपना धर्म रुचता है।

कोई आत्मा धर्ममें ठहरा है तो कोई कुधर्ममें ठहरा है। इसके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अतिरिक्त अन्य किसी में ठहर ही नहीं सकता कोई भी ।

उपयोग में अन्य पदार्थ स्थान न पावे तो ध्यान को उत्तम होना ही पड़ता है। अतः उत्तम ध्यान में जाता चाहनेवालोंका कर्तव्य है कि ऐसा उपयोग बनावें कि वहां अन्य पदार्थके स्मरणका अवकाश ही न मिले। वह पुरुषार्थ है स्वभावदृष्टि ।

२४ दिसम्बर १९५६

अपने देहकी ओर संकेत करते हुए कहे, सोचे कि यह पर्याय मैं नहीं हूं यह सूरत मैं नहीं हूं, यह रंग, ढंग, क्रिया मेरी नहीं है। मैं वह हूं जो सर्व-समान है, सर्व समान सर्व में अन्तर्निहित और विलीन होती है सो सर्वसमान का यश ही क्या है। जिसके हृदयमें एक साथ सर्वका एक यश है उसीमें मेरा शामिल है। वह सामिल ही क्या जो सा मिल=मिल सा गया है। नाम तो वहां होता है जहां अन्यसे विशिष्टता मालूम पड़े।

अपने विभाव की ओर संकेत करते हुए सोचे कि यह राग द्वेष आदि मैं नहीं हूं, यह आवेग, यह क्षोभ, मैं नहीं हूं। मैं वह भाव हूं जो सर्वसमान है—चैतन्यभाव, जो सर्व में अन्तर्निहित और विलीन है। सर्वसमान की कीर्ति क्या है। जिसके उपयोग अपने स्वभाव की कीर्ति है वही सर्व की कीर्ति है उसीमें मैं सामिल हूं। वह सामिल ही क्या ? जो सा मिल=मिलसा गया है। यह स्वभाव ही सबका मूल कर्ता है। सर्वका स्वभाव सर्वका सृष्टिकर्ता है। सर्वरूप स्वभाव सबका ईश्वर है। वह स्वभाव आवान्तर सत्ता से अनेक है और महासत्तासे एक है। ॐ चिद् ब्रह्म अस्मि।

तत्त्व साल्लदादिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्ध तस्मादनादिनिधनं स्वसहायं निर्विकल्पं च ।

२५ दिसम्बर १९५६

एकान्तावास के आनन्दको मौन परिवर्द्धित कर देता है। जितना बाह्यसंसर्ग कम होगा यदि ज्ञानी है तो उसकी आत्मरुचि बढ़ती जावेगी।

वास्तविक आनन्द आत्मोन्मुखतामें हैं। यह सत्य है या नहीं यदि इसका निर्णय करना हो तो यथाविधि चलकर आत्मोन्मुख हो लो, वहां आनन्द न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मिले तो फिर तर्क करना।

आत्मोन्मुख हुए बिना उस स्थिति के आनन्दके विरुद्ध जीभ हिलानेका अधिकार ही नहीं है अधिकारीको ही बात करना उचित है।

अनात्मोन्मुखतामें तो प्रत्येक क्षण विपदा ही है। विपदा कुछ अन्य नहीं है, केवल विकल्प ही है। दुनियांके लोग और कर ही रहे क्या? यही याने मात्र विकल्प। परका तो प्रत्येक में अत्यन्ताभाव है।

विकल्पमें क्षोभका होना प्राकृतिक है। क्षोभ ही विपदा है। सो समस्त क्षोभका अभाव चाहनेवालोंको निर्विकल्पका उपयोग रखना चाहिये। निर्विकल्प के उपयोगमें उपयोग भी निर्विकल्प हो सकता है। निर्विकल्प परमात्मा व निर्विकल्प उपयोग भी कथंचित् सविकल्प है और कथंचित् निर्विकल्प है, किन्तु सामान्यदर्शनज्ञानात्मक सामान्य आत्मा, परम चैतन्य स्वभाव, परमपारिणामिक भाव, कारण परमात्मा आदि शब्दों द्वारा संकेतिक अर्थ निर्विकल्प ही है वही ब्रह्म, निराकार, निर्गुण आदि शब्दों द्वारा से केलित है, उसका ध्यान करो और करो परमशुद्ध निश्चय नयकी विधिसे।

२६ दिसम्बर १९५६

ब्रह्मचर्यकी साधना तपों में उत्तम तप है, और स्वभावदृष्टिकी साधना समाधियोंमें उत्तम समाधि है।

भूख प्यास आदिका दुःख मिटाकर दूसरों के संक्लेश कम कर देना लौकिक परोपकार है और आत्मा व अनात्माके भेद व स्वरूपके उपदेश द्वारा आत्मावों के उनके निजके स्वभावकी दृष्टि होने देना अलौकिक परोपकार है।

किसी भी समय दुर्भाव न हो सके ज्ञानावलम्बन द्वारा यह दृष्टि फलीभूत करना महा पुरुषार्थ है।

पर्याय क्षणिक है उसका मोह अनेक पर्यायोंका संतान बना देता है।

पर्याय मैं नहीं हूं, पर्याय क्षणिक है मैं ध्रुव हूं। पर्याय मैं नहीं हूं, पर्याय नैमित्तिक है मैं अनैमित्तिक हूं।

पर्यायकी दृष्टि अपूर्णकी दृष्टि है, द्रव्यकी दृष्टि पूर्णकी दृष्टि है।

रे आत्मन्! [illegible] तू है? तेरा है?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वर्तमान भाव जो हो रहे हैं क्या ये दूसरे क्षण भी साथ रह सकते हैं ?

अरे प्यारे प्रभु ! तू तो मात्र चैतन्यस्वभाव है जिसकी दृष्टि होने पर तेरा व्यक्तित्व तेरे उपयोग में न रहेगा। हां स्वभावानुभूति जरूर होगी किन्तु अनुभव आनन्द का रहेगा विकल्प का सत्त्व न रहेगा।

२७ दिसम्बर १९५६

आत्मा का उद्धार जल्दी करो। विभाव बड़ा धोका है। विभाव जब होता है तो प्रायः यह ही लगता है कि विभाव ही हित है, विभावसे ही सुख है। किन्तु यह धोके का कुवां है।

प्यारे चैतन्य प्रभो ! मेरे चैतन्य नाथ ! सतत उपयोग में रहो। हे प्रियतम ! हे हितत्तम ! तेरे उपयोगमें न रहनेसे कितनी विभाव विपत्तियां आ गिरती हैं। तुम्हें अपने पुत्रको अपनी छत्रछायामें रखना चाहिये।

भले ही मैं कुपूत निकला, सही बात, अपराध है; किन्तु यह तो बताओ निकला तो तुमही से हूं हे चैतन्य महाप्रभो !

हे सच्चिदानन्द ! तुम्हारी महिमा अपार है। चाहे, तुम्हारी महिमा पर ली जावे किन्तु कहीं तो कभी जा ही नहीं सकती।

समय पहाडी नदीके वेगकी तरह बह रहा है। पर्याय भी इसी प्रकार बह रही है। इसकी क्या परवाह यह तो वस्तुका स्वभाव है। किन्तु क्लेश तो इस बात का है कि यदि स्वभावदृष्टिकी पर्याय न बही तो दुःखपूर्ण पर्यायोंका तांता लगा रहेगा।

स्वभावदृष्टि रूप पर्यायके प्रवाह होजाने की योग्यता प्राप्त है। इस योग्यतासे लाभ न उठा पाया तो बड़ी ही क्षतिकी बात है।

२८ दिसम्बर १९५६

पर पदार्थ की बात मत सोचो — जो सोच रहे हो वह पर पदार्थकी बात है। पर पदार्थकी सत्ता तुमसे अत्यन्त पृथक् है। पर पदार्थमें तुम्हारा कुछ वश चल ही नहीं सकता है और न तुममें किसी पर पदार्थका कुछ वश चल सकता।

तुम अपने ही भाव बनाते हो परका कुछ भी नहीं। एक द्रव्य दूसरे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्रव्यका कुछ भी नहीं कर सकता। कैसे कुछ करे आखिर सबकी सत्ता सबके स्वयंके एक एकमें है। प्रत्येक का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उस ही एक में रहता है, तन्मय है।

कुछ भी कोई सोच ले बस! विचारकी पर्यायका अध्रुव संग तो होगया इससे आगे और कुछ नहीं होता।

मैं अपने को ही कर रहा हूं, बाह्य का कुछ भी नहीं कर रहा हूं। अपनेको जिसरूप बनाता हूं वैसा ही फल तत्काल पालेता हूं और निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध की दृष्टिसे जो कार्माण वर्गणावोंका संचय हो जाता है उसके उदयकालमें भविष्यमें उस अनुरूप और भी फल पाऊंगा जो कि वास्तवमें उस ही भविष्यके परिणामका तात्कालिक फल होगा।

हे नाथ! हे जिननाथ! हे निजनाथ! प्रसीद, प्रसीद, प्रसीद।

२६ दिसम्बर १९५६

जिसका ध्यान सर्वोच्चध्यान है, जिसकी मग्नता परमसमाधि है, जिसकी दृष्टि परम तपस्या है, जिसके आश्रयसे कर्म रुकते हैं तथा कर्म करते हैं वह कारण परमात्मा तुमही तो हो। हां वह कारण परमात्मा दिखेगा, मिलेगा दिखने मिलनेकी ही विधिसे।

जिसकी सतत साधना करना योग है, जिसके चर्चाकी परम्परामें ब्रह्माद्वैत, ज्ञानाद्वैत, सृष्टिकर्तृत्व आदि अभिप्राय पुष्ट हुए हैं, जिसके लिये अनेक प्रकारसे ईश्वरकी कल्पनावोंका श्रम किया जाता है वह ईश्वरीय ऐश्वर्य तुमही तो हो। हां उसका पता व अनुभव होगा पते व अनुभव की विधिसे।

हे आत्मन्! तुम ज्ञान और आनन्दसे भरपूर हो। कहीं भटकनेकी आवश्यकता नहीं। भटकने से कहीं कुछ मिलेगा ही नहीं, प्रत्युत जैसे ही भटकावोगे उपयोगको वैसे ही ज्ञान व आनन्द दूर होता चला जावेगा।

तुम ही कर्ता हो, तुमही करण हो, तुम ही कार्य हो और तुम ही कार्य-फल हो। तुम्हारी दुनियां तुम ही हो। तुम्हारा कार्य तुम्हारे ही प्रश्नमें है। तुम्हारा किसीसे रंच भी सम्बन्ध नहीं है। कैसे हो तुम्हारी सत्ता सबसे पृथक् है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

३० दिसम्बर १९५६

एक पदार्थ दूसरे पदार्थके परिणमनसे नहीं परिणम सकता है यदि असम्भव भी कल्पना कर ली जाय तो पदार्थ सब मिट जायगा, शून्य हो जायगा। किन्तु शून्य तो प्रतीत हो नहीं रहा। है सब है यही तो प्रमाण है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का न कुछ कर सका, न कुछ कर रहा है न कुछ कर सकेगा।

आत्मन्! मस्त रहो अपने आपमें, छूट जांयगी सब व्याधियां अपने आप।

आत्मन्! मात्र आत्मस्वरूपका विचार करो, छूट जांयगे अहंकार ममकार अपने आप।

आत्मन्! देखते रहो अन्तरमें अन्तर्ज्ञान द्वारा अपने आपको, छूट जायगी संगव्यथा अपने आप।

हे प्रियतम! हे प्राणवल्लभ! हे हिततम! अब तो दुःखका अन्त आ ही जाना चाहिये। तुम्हारी चर्चा करनेवालेकी विपत्तियां समाप्त हो जाती हैं फिर तो रटन लगानेवाले की विपत्तियां दूर न हो यह कैसे न होगा, तुम्हारी ओर ही दृष्टि किये रहने वालेको परम आनन्द प्राप्त न हो यह कैसे हो सकता।

हे आत्मन्! दृढ़ रहो इस ही अपने आप की ओर बने रहने पर। सर्व अन्य काम विफल सी रहेंगे, किन्तु यह आत्म साधना का उपाय विफल कभी हो ही नहीं सकता।

३१ दिसम्बर १९५६

आज वह वर्षका सुअंतिम दिन पूर्ण हो रहा है। इस वर्षमें जो असफलता रही जो विभावतति रही उसका खेद है। समय तो गुजर गया किन्तु यदि मात्र निजसाधना के सद्भावोंमें समय गुजरता तो आज तुम्हारे पास कुछ आत्मीय वैभव रहता भी। विभावोंकी पर्यायसे गुजरनेपर कुछ भी हाथ न रहा और रहा हाथ तो न्यग्रताकी योग्यता।

कुछ न कर सका किन्तु क्या करना है इसका ध्यान बना रहे यही भी

Version 1